३६

श्रीसूरदासजी रचित

# अनुराग-पदावली

सरल भावार्थ सहित

अनुवादक
सुदर्शनसिंह

श्रीसूरदासजी रचित
अनुराग-पदावली
सरल भावार्थ सहित
अनुवादक
सुदर्शनसिंह

मुद्रक तथा प्रकाशक
हनुमानप्रसाद पोद्दार
गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० २०१५ प्रथम संस्करण १०,०००

मूल्य १) एक रुपया
(सजिल्द १।=) एक रुपया छः आना

पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस ( गोरखपुर )

# नम्र निवेदन

सूर-पदावलीका यह पाँचवाँ संग्रह 'अनुराग-पदावली' के नामसे सूर-काव्यके प्रेमियोंकी सेवामें प्रस्तुत किया जा रहा है। जैसा कि इसके नामसे ही प्रकट है, इस संग्रहमें केवल ऐसे पदोंका चयन किया गया है, जिनमें श्रीगोपाङ्गनाओंके श्रीकृष्ण-विषयक अनुरागकी चर्चा की गयी है। इनमेंसे अधिकांश पदोंमें तो उन कृष्णानुरागिणी व्रजललनाओंके अनूठे प्रेमोद्गार ही सूरकी हृदयस्पर्शिनी वाणीसे प्रवाहित हुए हैं। एक-से-एक सरस एवं मार्मिक उक्तियाँ हैं, जिनका स्वाद उन्हें पढ़नेपर ही मिलता है। उनमें सूरदासजीने मानो उन व्रज-ललनाओंका हृदय ही खोल-कर रख दिया है। कुल साढ़े तीन सौसे कुछ ही कम पद हैं। इनमेंसे लगभग आधे पद तो गोपियोंके उन बड़भागी नेत्रोंको

लक्ष्य करके कहे गये हैं, जो श्यामसुन्दरकी त्रिभुवनमोहन रूप-माधुरीपर न्यौछावर हो गये हैं और रसलोभी भ्रमरकी भाँति सदा उसीपर मँडराते रहते हैं, एक क्षणके लिये भी वहाँसे हटते नहीं।

व्रजाङ्गनाओंका कृष्ण-प्रेम अनुपमेय है, उसकी जगत्में कहीं तुलना नहीं है। उसे शब्दोंद्वारा चित्रित करके सूरदासजीने अपनी वाणीको अमर बना दिया है। विद्वान् अनुवादकने सरल भाषामें उसके मर्मको समझानेकी भरसक चेष्टा की है, जिससे पाठक-पाठिकाओंको उसे हृदयङ्गम करनेमें यथेष्ट सहायता मिलेगी। फिर भी सूरकी भाषा अटपटी और भाव गूढ़ होनेके कारण अनुवादमें सम्भव है बहुत-सी भूलें रह गयी हों, जिनके लिये सहृदय पाठक हमें क्षमा करेंगे। कोई सज्जन उन भूलोंको बतानेकी यदि कृपा करेंगे तो अगले संस्करणमें उन्हें सुधारा जा सकता है। पाठ तथा अनुवादको ठीक करनेमें हमें व्रज-साहित्यके सुविख्यात मर्मज्ञ पं० श्रीजवाहरलालजी चतुर्वेदीसे पर्याप्त सहायता मिली है। इससे पूर्वप्रकाशित संग्रहोंमें भी श्रीचतुर्वेदीजीने बड़ी सहायता की है, जिसके लिये हम उनके हृदयसे आभारी हैं। अन्तमें हम अपने इस क्षुद्र प्रयासको भगवान् नन्दनन्दनके पादपद्मोंमें अर्पित करते हैं, जिनकी अहैतुकी कृपासे ही हम सूर-साहित्यको यत्किंचित् प्रकाशमें लानेमें समर्थ हो सके हैं। किमधिकं विज्ञेषु।

श्रावण शुक्ला ११, सं० २०१५ वि०

विनीत—

प्रकाशक

श्रीहरिः

# वर्णानुक्रमणिका

| पद | पद-संख्या |
|---|---|
| नैना निपट बिकट छबि अटके ··· | ··· २६० |
| नैना नीकें उनहिं रए ··· | १७१ |
| नैना नैनन माँझ समाने ··· | २३५ |
| नैन परे बहु लूटि मैं ··· | १८१ |
| नैना बहुत भाँति हटके ··· | ३२७ |
| नैना बाँधे दोऊ मेरे ··· | २१७ |
| नैना भरे घर के चोर ··· | २०७ |
| नैना भए पराए चेरे ··· | ३३३ |
| नैना भए प्रगटहीं चेरे ··· | २१४ |
| नैना भए बजाइ गुलाम | १७७ |
| नैना मानत नाहिन बरज्यौ | २८५ |
| नैना मानऽपमान सह्यौ | २५२ |
| नैना मारेहू पै मारत ··· | २३९ |
| नैना मेरे अटके री माई | २२२ |
| नैना मेरे मिलि चले ··· | २५६ |
| नैना मोकौं नाहिं पत्याहिं | २९४ |
| नैना रहैं न मेरे हटकें ··· | २५९ |
| नैना लुब्धे रूप कौं ··· | १९१ |
| नैना लौनहरामी ये ··· | २२३ |
| नैना लोभै लोभ भरे ··· | २३७ |
| नैना हरि अंग रूप लुब्धे ··· | १७५ |
| नैना हाथ न मेरे आली ··· | १८८ |
| नैना ऐसे हैं बिसवासी ··· | २१३ |
| नैना हैं री ये बटपारी ··· | २२८ |
| नंद के द्वार नँद गेह बूझै ··· | ३९ |
| नंद कें लाल हरयौ मन मोर | १०६ |
| नंदनँदन बिन कल न परै | १४१ |
| नंदलाल सौं मेरौ मन मान्यौ | ५३ |
| **प** | |
| परी मेरे नैनन ऐसी बानि | २८७ |
| पलक ओट नहिं होत कन्हाई | २७ |
| पावै कौन लिखे बिन भाल | ७६ |
| पिय जिन रोकै, जान दै ··· | ५ |
| प्राननाथ हो, मेरी सुरति किन करौ | १५० |
| प्रेमसहित हरि तेरें आए ··· | ११२ |
| **ब** | |
| बहुत भाँति नैना समझाए | ३२८ |
| बार बार मोहिं कहा सुनावति | ४२ |
| बिकानी हरि मुख की मुसकानि | ४६ |
| बिधना चूक परी मैं जानी ··· | ७४ |
| बिधनाँ यह संगति मोहिं दीन्ही | १४३ |
| बिमुख जनन कौ संग न कीजै | १४४ |
| बीच कियौ कुल लज्जा आइ | १४६ |
| बेचति ही दधि ब्रज की खोरी | ३६ |
| बैठि गई मटकी सब धरि कैं ··· | २० |
| ब्रज की खोरिहिं ठाढ़ौ साँवरौ | १३९ |
| ब्रज बसि काके बोल सहौं ··· | ६६ |
| ब्रजहिं बसें आपुहिं बिसरायौ | ६७ |
| **भ** | |
| भई गई ये नैन न जानत ··· | २४८ |
| भई मन माधौ की अवसेर ··· | ६५ |
| भली करी उन्ह स्याम बँधाए | २०८ |

| पद | पद-संख्या |
|---|---|

| पद | पद-संख्या |
|---|---|

श्रीमुरली मनोहर

श्रीहरिः

# अनुराग-पदावली

राग बिलावल

[ १ ]

जानि देहु गोपाल बुलाई।
उर की प्रीति प्रान कें लालच नाहिन परति दुराई ॥ १ ॥
राखौ रोकि बाँधि दृढ़ बंधन, कैसै हूँ करि त्रास।
यह हठ अब कैसें छूटत है, जब लगि है उर सास ॥ २ ॥
साँच कहौ मन बचन, करम करि अपने मन की बात।
तन तजि जाइ मिलौंगी हरि सौं, कत रोकत तहँ जात ॥ ३ ॥
औसर गएँ बहुरि सुनि सूरज, कह कीजैगी देह।
बिछुरत हंस बिरह कें सूलन, झूँठे सबै सनेह ॥ ४ ॥

( एक ब्राह्मण-पत्नी अपने पतिसे कह रही है— ) ( मुझे ) गोपालने बुलाया है, जाने दो; प्राणोंके लोभसे हृदयकी प्रीति अब छिपायी नहीं जा सकती। ( तुम ) चाहे किसी भी प्रकारका भय ( मुझे ) दो और दृढ़ बन्धनोंमें बाँधकर रोक रखो, किंतु जबतक फेंफड़ेसे श्वास आता-जाता है, ( तबतक ) यह ( श्यामसे प्रेमका ) हठ अब ( भला ) कैसे छूट सकता है। मन, वचन तथा क्रियाके द्वारा अपने मनकी सच्ची बात कहती हूँ कि ( रोके जानेपर भी मैं ) शरीर त्यागकर हरिसे जा मिलूँगी, ( अतः ) वहाँ ( उनके पास ) जानेसे ( मुझे ) क्यों रोकते हो ! सूरदासजी कहते हैं—सुनो, ( प्रभुसे

मिलनेका ) अवसर बीत जानेपर फिर यह शरीर ( रहकर भी ) क्या करे, ( मोहनके ) वियोग-दुःखसे प्राणोंके निकल जानेपर ( इस शरीरके ) सभी स्नेह ( बन्धन ) झूठे हैं।

राग सारंग

[ २ ]

देखन दै पिय, मदनगुपालै।
हा हा हो पिय! पाँइ परति हौं,
जाइ सुनन दै बेनु रसालै ॥ १ ॥
लकुट लिऐं काहैं तन त्रासत,
पति बिनु मति बिरहिनि बेहालै।
अति आतुर आरूढ़ अधिक छबि,
ताहि कहा डर है जम कालै ॥ २ ॥
मन तौ पिय! पहिलैंहीं पहुँच्यौ,
प्रान तहीं चाहत चित चालै।
कहि धौं तू अपने स्वारथ कौं,
रोकि कहा करिहै खल खालै ॥ ३ ॥
लेहु सम्हारि सु खेह देह की,
को राखै इतने जंजालै।
सूर सकल सखियनि तैं आगैं,
अबहीं मूढ़ मिलौं नँदलालै ॥ ४ ॥

( कोई विप्र-पत्नी कह रही है—) 'प्रियतम! मदनगोपालको देख लेने दो। प्यारे! (मैं) हा-हा खाकर ( तुम्हारे पैरों ) पड़ती हूँ, जाकर उनकी रसमयी वंशी सुनने दो। अरे निर्बुद्धि पति! मुझ ( हरि-दर्शनके लिये ) व्याकुल वियोगिनीके शरीरको डंडा लेकर क्यों त्रास देते हो? ( भला, जो उस ) अत्यन्त शोभामय ( को पाने ) के लिये अत्यधिक उतावली है, उसके हृदयमें यमराज एवं मृत्युका क्या भय! प्रियतम! ( मेरा )

मन तो (वहाँ) पहिले ही पहुँच गया है और अब प्राण भी वहीं चलनेकी बात चित्तसे चाह रहे हैं। (किंतु) तुम यह तो बताओ कि अपने मतलबके लिये तुम (मुझे) रोककर इस दूषित (प्राणहीन) चमड़ेका क्या करोगे ? (अब तुम) इस शरीरकी मिट्टीको सम्हालो, इतने जंजालको कौन रखे! सूरदास! (मैं तो देह त्यागकर) सब सखियोंसे आगे श्रीनन्द-लालसे अरे मूढ! अभी मिलती हूँ।

[ २ ]

देखन दै बृंदावन चंदै।
हा हा कंत! मानि बिनती यह,
कुल अभिमान छाँड़ि मतिमंदै ॥ १ ॥
कहि क्यौं भूलि धरत जिय औरै,
जानत नहिं पावन नँदनंदै।
दरसन पाइ आइहौं अबहीं,
करन सकल तेरे दुख दंदै ॥ २ ॥
सठ समझाएहुँ समझत नाहीं,
खोलत नाहिं कपट के फंदै।
देह छाँड़ि प्रानन भइ प्रापत,
सूर सु प्रभु आनँद निधि कंदै ॥ ३ ॥

(एक विप्र-पत्नी कह रही है—प्रियतम! मुझे) 'श्रीवृन्दावनचन्द्रको देख लेने दो। हा-हा पतिदेव! यह मेरी प्रार्थना मान लो और अरे मन्दबुद्धि! (इस) उच्च कुलके अभिमानको छोड़ दो। (बताओ तो, तुम) भूलसे (भ्रमवश) अपने मनमें दूसरी (पापकी) बात क्यों सोचते हो ? जानते नहीं कि श्रीनन्दनन्दन परम पवित्र हैं ? उनका दर्शन पाकर तुम्हारे सब दुःख-द्वन्द्व झेलने (गृहस्थीके जंजाल उठाने) अभी आ जाऊँगी। अरे मूर्ख स्वामी! (तुम) समझानेसे भी समझते नहीं और (इन) कपटके फंदों (बन्धनों) को

खोलते नहीं !' सूरदासजी कहते हैं कि वह (विप्र-पत्नी) (इस प्रकार व्याकुल होकर) शरीर त्याग प्राणोंके द्वारा उन आनन्दनिधिकी मूर्ति प्रभुको (सदाके लिये) प्राप्त हो गयी—उनसे मिल गयी।

राग कल्याण

[ ४ ]

रति बाढ़ी गोपाल सौं।
हा हा हरि लौं जान देहु प्रभु, पद परसति हौं भाल सौं ॥ १ ॥
सँग की सखीं स्याम सनमुख भइँ, मोहि परी पसुपाल सौं।
परबस देह, नेह अंतरगत, क्यौं मिलौं नैन बिसाल सौं ॥ २ ॥
सठ ! हठ करि तूही पछितैहै, यहै भेंट तोहिं बाल सौं।
सूरदास गोपी तनु तजि कैं, तनमय भइ नँदलाल सौं ॥ ३ ॥

(एक ब्राह्मण-पत्नी कह रही है—प्रियतम !) 'गोपालसे मेरा प्रेम बढ़ गया है। स्वामी ! हा-हा खाकर (मैं) तुम्हारे चरणोंको मस्तकसे छूती हूँ, (मुझे उन) श्रीहरिके समीप जाने दो। मेरे साथकी सखियाँ (तो) श्यामसुन्दरके सम्मुख (पहुँच) गयीं; (किंतु) मेरा (तुम-जैसे) पशुपाल (चरवाहे, मूर्ख) से पाला पड़ा है। (ओह !) शरीर दूसरेके वशमें और हृदयमें प्रेम है; (ऐसी दशामें उन) विशाल नेत्रों-वाले (श्यामसुन्दर) से कैसे मिलूँ ? अरे मूर्ख ! (अन्तमें) हठ करके तुम्हीं पश्चात्ताप करोगे; (समझ लो कि) अपनी तरुणी भार्यासे तुम्हारी यही (अन्तिम) भेंट है।' सूरदासजी कहते हैं कि शरीर छोड़कर (वह) गोपी (विप्र-पत्नी) नन्दलालमें तन्मय (एकाकार) हो गयी।

राग सारंग

[ ५ ]

पिय ! जिन रोकै, जान दै।
हौं हरि बिरह जरी जाँचति हौं, इती बात मोहि दान दै ॥ १ ॥

बैन सुनौं, बिहरत बन देखौं, इहिं सुख हृदै सिरान दै।
पाछैं जो भावै सो कीजौ, साँच कहति हौं आन दै॥ २॥
जौ कछु कपट किएँ जाँचति हौं, सुनौ कथा यह कॉन दै।
मन क्रम वचन सूर अपनौ प्रन राखौंगी तन प्रान दै॥ ३॥

(एक विप्र-पत्नी कह रही है—) 'प्रियतम! (मुझे) रोको मत, (श्रीकृष्णके पास) जाने दो। श्रीहरिके वियोग (की ज्वाला) में जलती हुई मैं (तुमसे यह) याचना कर (भीख माँग) रही हूँ; इतनी बात मुझे दान (में) दे दो। मैं (मोहनके) वचन सुनूँ और (उन्हें) वनमें क्रीड़ा करते देखूँ। इस आनन्दसे (अपने) हृदयको शीतल कर लेने दो; मैं शपथपूर्वक सच कहती हूँ—पीछे जो तुम्हें अच्छा लगे, वह करना। यदि (समझते हो कि) मैं कुछ छल करके (मनमें कोई कपट या छिपाव रखकर तुमसे यह) याचना करती हूँ तो कान देकर (ध्यानसे) यह बात सुनो। सूरदासजीके शब्दोंमें ऋषिपत्नी कहती है—मन, वचन, कर्मसे प्राण देकर (भी मैं श्यामसुन्दरसे मिलनेका) अपना प्रण रखूँगी।'

[ ६ ]

हरि देखन की साध भरी।
जान न दई स्यामसुंदर पै
सुनि साँई! तैं पोच करी॥ १॥
कुल अभिमान हटकि हठि राखी,
तैं जिय मैं कछु और धरी।
जग्यपुरुष तजि करत जग्यविधि,
तातैं कहि का चाड़ सरी?॥ २॥
कहँ लगि समझाऊँ सूरज सुनि,
जाति मिलन की औधि टरी।
लेहु सम्हारि देह पिय! अपनी,
बिन प्रानन सब सौंज धरी॥ ३॥

(एक विप्र-पत्नी कह रही है—प्रियतम! मुझे) श्रीहरिके दर्शनकी पूर्ण लालसा है। स्वामी! सुनो, तुमने यह बुरा किया कि (मुझे) श्याम-

सुन्दरके पास नहीं जाने दिया। अपने उच्च कुलके अभिमानसे हठ(बल) पूर्वक मुझे रोक रखा और तुमने ( अपने ) मनमें कुछ और ( पापकी बात ) सोची। (उन )यज्ञपुरुष ( सम्पूर्ण यज्ञोंके भोक्ता एवं फलदाता पुरुषोत्तम ) को छोड़कर ( तुम ) जो यज्ञकी विधियाँ पूरी कर रहे हो, उससे बताओ तो कि कौन-सा स्वार्थ सिद्ध हुआ ? सूरदासजीके शब्दोंमें यज्ञपत्नी कहती है—सुनो, ( तुम्हें मैं ) कहाँतक समझाऊँ, ( मेरा मोहनसे ) मिलनेका समय बीता जा रहा है; ( अतः ) पतिदेव ! (अब यह) अपनी देह सम्हाल लो, बिना प्राणोंके ( शेष ) सब सामग्री ( यह ) रखी है।

[ ७ ]

हरिहिं मिलत काहे कौं घेरी।
दरस देखि आवौं श्रीपति कौ, जान देहु, हौं होति हौं चेरी ॥१॥
पा लागौं छाँड़ौ अब अंचल, बार-बार बिनती करौं तेरी।
तिरछौ करम भयौ पूरब कौ, प्रीतम भयौ पाइ की बेरी ॥२॥
यह लै देह, मार सिर अपनें, जासौं कहत कंत तू मेरी।
सूरदास सो गई अगमनै, सब सखियन सौं हरि मुख हेरी ॥३॥

( एक विप्र-पत्नी कह रही है—प्रियतम ! ) श्रीहरिसे मिलनेके लिये जाती हुई मुझको ( तुमने ) क्यों घेर ( रोक ) रखा है ? ( मैं ) उन श्रीपतिका दर्शन कर आऊँ, मुझे जाने दो; ( मैं ) तुम्हारी दासी बनती हूँ। ( तुम्हारे ) पैरों पड़ती हूँ, बार-बार तुमसे प्रार्थना करती हूँ, अब ( मेरा ) अञ्चल छोड़ दो। ( हाय ! ) पूर्वजन्मका (मेरा) कर्म ही प्रतिकूल हो गया है, जिससे प्रिय पति ही ( मेरे ) पैरकी बेड़ी बन गया है। ( अच्छा, ) स्वामी ! जिसे तुम अपना कहते हो, वह शरीर यह लो और उसे अपने सिरपर दे मारो। सूरदासजी कहते हैं कि वह ( विप्र-पत्नी यह कहती हुई देह त्यागकर ) सब सखियोंसे आगे ही चली गयी और उसने श्रीहरिके मुखका दर्शन ( सबसे प्रथम ) किया।

[ ८ ]

जान दै स्यामसुँदर लौं आज।
सुनि हो कंत ! लोक-लज्जा तैं बिगरत है सब काज ॥ १ ॥

राखौ रोकि पाँइ बंधन कै, अरु रोकौ जल नाज।
हौं तौ तुरत मिलौंगी हरि सौं, तू घर बैठौ गाज ॥ २ ॥
चितवति हुती झरोखें ठाढ़ी, किएँ मिलन कौ साज।
सूरदास तन त्यागि छिनक मैं, तज्यौ कंत कौ राज ॥ ३ ॥

( एक विप्र-पत्नी कह रही है— ) आज ( मुझे ) श्यामसुन्दरके पास जाने दो। प्रियतम ! सुनो, ( कभी-कभी ) लोक-लज्जासे सारा कार्य बिगड़ जाता है। ( तुम भले ही ) पैरोंमें बन्धन डाल ( पैर बाँध ) कर रोक रखो और ( भले ही मुझे पीने-खानेको ) जल-अनाज न दो; ( फिर भी ) मैं तुरंत (शीघ्र) हरिसे मिलूँगी, तुम (इस) घरमें बैठे गरजा (क्रोध किया) करो। सूरदासजी कहते हैं कि ( वह विप्र-पत्नी ) मिलनेकी तैयारी किये खिड़कीमें खड़ी ( जानेका मार्ग ) देख रही थी, ( सो ) एक क्षणमें देह त्यागकर ( उसने ) पतिका राज्य छोड़ दिया ( और श्रीकृष्णचन्द्रसे जा मिली )।

राग गौड़

[ ९ ]

कान्ह माखन खाहु, हम सु देखैं।
सद्य दधि दूध ल्याईं औटि अबहि हम,
खाहु तुम, सफल करि जनम लेखैं ॥ १ ॥
सखा सब बोलि, बैठारि हरि मंडली,
बनहि के पात दोना लगाए।
देति दधि परसि ब्रजनारि, जेंवत कान्ह,
ग्वाल सँग बैठि अति रुचि बढ़ाए ॥ २ ॥
धन्य दधि, धन्य माखन, धन्य गोपिका,
धन्य राधा बस्य हैं मुरारी।
सूर प्रभु के चरित देखि सुर गन थकित,
कृष्न सँग सुख करति घोष नारी ॥ ३ ॥

(ब्राह्मण-पत्नियाँ कह रही हैं—) 'कन्हैया ! तुम मक्खन खाओ और हम (तुम्हारी) वह छटा देखें। हम (सब) ताजा दही, तुरंतका औटा हुआ दूध लायी हैं, तुम खाओ और (तुम्हें खाते देखकर) हम अपना जन्म सफल मानें।' (यह सुनकर) श्यामसुन्दरने सब सखाओंको बुलाकर मण्डल (गोलाकार)में बैठा दिया और वनके पत्तोंके दोने लगा (बाँट) दिये। व्रजनारियाँ (उनमें) दही परोसकर दे रही हैं और कन्हैया गोपकुमारों-के साथ बैठे अत्यन्त रुचिपूर्वक भोजन कर रहे हैं। अतः वह दही धन्य है, वह मक्खन धन्य है, वे गोपियाँ (विप्र-पत्नियाँ) धन्य हैं और वे श्रीराधा धन्य हैं, जिनके वशमें श्रीमुरारि हैं। व्रजकी नारियाँ श्रीकृष्णचन्द्रके साथ आनन्द मना रही हैं, सूरदासजीके स्वामीका यह चरित देखकर देववृन्द मोहित हो रहे हैं।

राग जैतश्री

[ १० ]

माखन दधि हरि खात ग्वाल सँग।
पातन के दोना सब लै लै, पतुखिनि मुख मेलत रँग ॥ १ ॥
मटकिनि नैं लै लै परसति हैं हरष भरी ब्रजनारी।
यह सुख तिहूँ भुवन कहुँ नाहीं, दधि जेंवत वनवारी ॥ २ ॥
गोपी धन्य कहति आपुन कौं, धन्य दूध दधि माखन।
जाकौं कान्ह लेत मुख मेलत, सबन कियौ संभाषन ॥ ३ ॥
जौ हम साध करति अपनैं मन, सो सुख पायौ नीकैं।
सूर स्याम पै तन मन वारति, आनँद जी सबही कैं ॥ ४ ॥

श्रीहरि गोपकुमारोंके साथ दही-मक्खन खा रहे हैं, सभी पत्तोंके दोने ले-लेकर और (एक पत्तेके बने) छोटे दोनोंको उमंगपूर्वक मुखमें (रखकर उनका दही, सिखरन, खीर आदि) सुड़क रहे हैं। हर्षमें भरी व्रजनारियाँ (अपनी-अपनी) मटकियोंसे ले-लेकर दही परस रही हैं और श्रीवनमाली उसे आरोग रहे हैं; यह आनन्द तीनों लोकोंमें कहीं नहीं है। गोपियाँ (ब्राह्मण-पत्नियाँ) अपनेको धन्य कह (मान)

रही हैं और उन दूध, दही और मक्खनकी भी बड़ाई कर रही हैं, जिन्हें कन्हैया लेकर अपने मुखमें रख रहे हैं। (यह देखकर) सब (परस्पर) बातें कर रही हैं कि 'हम अपने मनमें जिस सुखकी लालसा करती थीं, वह हमने भली प्रकार पा लिया।' सूरदासजी कहते हैं कि उन सभीके चित्तमें आनन्द है और (वे) श्यामसुन्दरपर तन-मन न्यौछावर कर रही हैं।

राग देवगंधार

[ ११ ]

**गोपिका अति आनंद भरी।**
**माखन दधि हरि खात प्रेम सौं, निरखति नारि खरी॥ १॥**
**कर लै लै मुख परस करावत, उपमा बढ़ी सुभाइ।**
**मानौं कंज मिलत ससि कौं लै सुधा कौर कर आइ॥ २॥**
**जा कारन सिव ध्यान लगावत, सेस सहस मुख गावत।**
**सोई सूर प्रगट ब्रज भीतर, राधा मनै चुरावत॥ ३॥**

गोपी अत्यन्त आनन्दसे पूर्ण हो रही है, (क्योंकि) श्यामसुन्दर (उसका) प्रेमपूर्वक दही-मक्खन खा रहे हैं और (वह) नारी खड़ी (उनकी शोभा) निहार रही है। (श्यामसुन्दर) हाथमें (दही-मक्खन) ले-लेकर मुखसे स्पर्श कराते हैं। उस समय उनकी शोभा स्वाभाविक रूपसे ऐसी बढ़ जाती है, मानो हाथमें अमृतका ग्रास लिये कमल चन्द्रमासे मिलने आया हो। जिसके (दर्शनके) लिये शंकरजी ध्यान (समाधि) लगाया करते हैं और हजार मुखोंसे शेषनाग (जिनका सुयश) गाते रहते हैं, सूरदासजी कहते हैं कि वे ही व्रजमें प्रकट होकर श्रीराधाके चित्तको चुराते (मोहित करते) हैं।

राग रामकली

[ १२ ]

**मेरे दधि कौ हरि! स्वाद न पायौ।**
**जानत इन्ह गुजरिनि कौ सौ है,**
**लयौ छिड़ाइ मिलि ग्वालन खायौ॥ १॥**

धौरी धेनु दुहाइ, छानि पय,
मधुर आँचि मैं औटि सिरायौ।
नई दोहनी पौंछि पखारी,
धरि निरधूम खिरनि पै तायौ ॥ २ ॥
तामैं सुचि मिस्रित मिसिरी करि,
दै कपूर पुट जावन नायौ।
सुभग ढकनियाँ ढाँकि, बाँधि पट,
जतन राखि छीकें समुदायौ ॥ ३ ॥
हौं तुम्ह कारन लै आई गृह,
मारग मैं न कहूँ दरसायौ।
सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि
कियौ कान्ह ग्वालिनि मन भायौ ॥ ४ ॥

( एक गोपी कह रही है—) हरि ( श्यामसुन्दर ! ) तुमने मेरे दही-का स्वाद नहीं पाया ( उसे चखा नहीं ); ( क्योंकि तुम ) समझते हो कि ( वह दही ) इन गोपियोंके दही-जैसा ही है, ( जिसे तुमने उनसे ) छीन गोपकुमारों-के साथ मिलकर खाया है। ( किंतु मैंने तो ) धौरी ( सफेद ) गायका दूध दुहवाकर तथा ( उसे ) छानकर मंद-मंद अग्निपर औटा ( गाढ़ा ) कर (फिर) ठंढा किया। ( इसके अनन्तर एक ) नयी दहेड़ीको धो-पोंछकर धूएँरहित अंगारोंपर तपाया। उस (दहेड़ी) में ( उस औटे हुए दूधको ) सुन्दर स्वच्छ मिश्री मिला और कपूरका पुट दे जावन डाला, ( फिर उसे ) बड़े यत्नपूर्वक सुन्दर ढकनसे ढँक और वस्त्रसे बाँध ( ऊँचे ) छीकेपर रख दिया था। मैं (वही दही) तुम्हारे लिये घरसे लायी हूँ, मार्ग-में किसीको दिखाया तक नहीं। सूरदासजी कहते हैं—( तब मेरे ) रसिक-शिरोमणि स्वामी ( श्यामसुन्दर ) ने ( उस ) गोपीके मनकी इच्छा पूर्ण की ( और अतिप्रेमपूर्वक उसका दही खाया )।

राग नट

[ १३ ]

गोपिनि हेत माखन खात।
प्रेम के बस नंदनंदन नेक नाहिं अघात ॥ १ ॥
सबै मटुकीं भरीं वैसैंहिं, प्रेम नाहिं सिरात।
भाव हिरदै जानि मोहन खात माखन जात ॥ २ ॥
एक कर दधि दूध लीन्हें एक कर दधिजात।
सूर प्रभु कौं निरखि गोपीं मनै मनहि सिहात ॥ ३ ॥

प्रेमाधीन श्रीनन्दनन्दन गोपियोंके प्रेमके कारण मक्खन खाते हुए तनिक भी तृप्तिका अनुभव नहीं करते। सबकी मटकियाँ वैसी ही ( ज्यों-की-त्यों ) भरी हैं, ( उनके ) प्रेम ( की शक्ति ) के कारण वे खाली नहीं होतीं और उनके हृदयका भाव समझकर मनमोहन मक्खन खाते ( ही ) जा रहे हैं। ( वे ) एक हाथमें दही और दूध लिये हैं तो एक हाथमें मक्खन लिये हैं, वे गोपियाँ सूरदासके स्वामीको ( इस प्रकार ) देखकर मन-ही मन मुग्ध हो रही हैं।

राग बिहागरौ

[ १४ ]

गोपी कहति धन्य हम नारी।
धन्य दूध, धनि दधि, धनि माखन,
हम परसति जेंवत गिरिधारी ॥ १ ॥
धन्य घोष, धनि दिन, धनि निसि वह
धनि गोकुल प्रगटे बनवारी।
धन्य सुकृत पाछिलौ, धन्य धनि
नंद, धन्य जसुमति महतारी ॥ २ ॥

धनि, धनि ग्वाल, धन्य बृंदाबन,
धन्य भूमि यह अति सुखकारी।
धन्य दान, धनि कान्ह मँगैया,
धन्य सूर त्रिन द्रुम बन डारी ॥ ३ ॥

गोपियाँ कह रही हैं—'हम व्रजनारियाँ धन्य हैं; यह दूध धन्य, दही धन्य और मक्खन धन्य है, जिसे हम परसती हैं और श्रीगिरिधरलाल आरोगते हैं। यह व्रज धन्य, वे दिन और रात्रि धन्य और (ये) गोकुलमें प्रकट होनेवाले वनमाली धन्य हैं, (हम सबके) पूर्वजन्मके पुण्य धन्य, श्रीनन्दजी धन्य तथा माता यशोदा धन्य हैं। (ये) गोपाल अत्यन्त धन्य, वृन्दावन धन्य और यह अत्यन्त सुखदायिनी भूमि धन्य है, यह (दधि)-दान धन्य और उसे माँगनेवाले ये श्यामसुन्दर धन्य।' सूरदासजी कहते हैं—यहाँके तृण, वन, वृक्ष एवं उनकी शाखा—(सभी) धन्य हैं।

राग नट

[ १५ ]

गन गंधर्व देखि सिहात।
धन्य व्रज ललनान कर तैं, ब्रह्म माखन खात ॥ १ ॥
नाहिं रेख न रूप, नहिं तन बरन, नहिं अनुहारि।
मात-पित नहिं दोउ जाकें, हरत मरत न जारि ॥ २ ॥
आप करता, आप हरता, आप त्रिभुवन नाथ।
आपुहीं सब घट कौ व्यापी, निगम गावत गाथ ॥ ३ ॥
अंग प्रति प्रति रोम जाकें, कोटि-कोटि ब्रह्मंड।
कीट ब्रह्म प्रजंत जल थल, इनहि तैं यह मंड ॥ ४ ॥
एइ बिस्वंभरन नायक, ग्वाल संग बिलास।
सोइ प्रभु दधि दान माँगत, धन्य सूरजदास ॥ ५ ॥

गन्धर्वगण यह देखकर सिहाते ( ईर्ष्या करते ) हैं और कहते हैं कि ( ये ) व्रजनारियाँ धन्य हैं, जिनके हाथसे साक्षात् परम ब्रह्म मक्खन खा रहे हैं—वे परब्रह्म, जिनकी कोई रूप-रेखा नहीं, शरीर नहीं, रंग नहीं, कोई समतातक नहीं, जिनके माता-पिता दोनों नहीं, जिन्हें कोई हरण नहीं कर सकता, जो मरते नहीं और जिन्हें कोई जला नहीं सकता, ( जो ) स्वयं सृष्टिकर्ता एवं स्वयं ही संहारकर्ता हैं तथा स्वयं त्रिभुवनके स्वामी ( पालनकर्ता भी ) हैं, ( जो ) स्वयं सब रूपोंमें व्यापक हैं और वेद जिनकी महिमा गाते हैं, जिनके शरीरके रोम-रोममें करोड़ों-करोड़ों ब्रह्माण्ड स्थित हैं। कीटसे लेकर ब्रह्मातक समस्त जीवराशि तथा जल-स्थलरूप यह सम्पूर्ण सृष्टि इन्हीं ( श्रीकृष्ण ) से शोभित है। ये ही सबके स्वामी विश्वम्भर हैं, जो गोपकुमारोंके साथ क्रीड़ा कर रहे हैं। सूरदासजी कहते हैं—वे ही प्रभु ( गोपियोंसे ) दहीका दान माँगते हैं। धन्य हैं वे।

राग बिलावल अलहिया

[ १६ ]

रीती मटकी सीस लै चलिं घोषकुमारीं।
एक एक की सुधि नहीं, को कैसी नारी ॥ १ ॥
बनही मैं बेचति फिरैं, घर की सुधि डारी।
लोक लाज, कुल कानि की मरजादा हारी ॥ २ ॥
लेहु लेहु दधि कहति हैं, बन सोर पसारी।
द्रुम सब घर करि जानहीं, तिन्ह कौं दै गारी ॥ ३ ॥
दूध दह्यौ नहिं लेहु री, कहि कहि पचि हारी।
कहत सूर घर कोउ नहीं, कहँ गइ दइमारी ॥ ४ ॥

खाली मटकियोंको मस्तकपर लेकर व्रजकी कुमारियाँ चल पड़ीं, ( उन्हें ). एक-दूसरीकी ( भी ) सुधि नहीं है कि कौन-सी स्त्री कैसी है ( वह उनके विषयमें क्या सोचेगी )। ( वे ) घरकी सुधि भुलाकर वनमें

ही (दही) बेचती घूमती हैं। लोककी लज्जा, कुलके सम्मान आदिकी मर्यादा ( वे ) छोड़ चुकी हैं। वनमें पुकार-पुकारकर 'दही लो! दही लो!' कहती हैं और वृक्षोंको घर समझकर उन्हें गाली दे कहती हैं 'कोई दूध-दही नहीं लेती हो! ( हम तो ) पुकारते-पुकारते थक गयीं।' सूरदासजीके शब्दोंमें वे ( प्रेममग्न हो वनको ही घर समझकर ) कहती हैं—'अरे ( क्या ) घरमें कोई नहीं ? ( ये ) हतभाग्या ( सब-की-सब ) कहाँ ( चली ) गयीं ?'

राग टोड़ी

[ १७ ]

या घर मैं कोउ है कै नाहीं।
बार बार बूझति बृच्छन सौं, गोरस लेहु कि जाहीं ॥ १ ॥
आपुहिं कहति लेति नाहीं दधि, और द्रुमन तर जाति।
मिलति परसपर बिबस देखि तिहि, कहति कहा इतराति ॥ २ ॥
ताकौं कहति, आपु सुधि नाहीं, सो पुनि जानति नाहीं।
सूर स्याम रस भरी गोपिका, बन मैं यौं बितताहीं ॥ ३ ॥

'इस घरमें कोई है या नहीं?' ( इस प्रकार गोपियाँ ) बार-बार वृक्षोंसे पूछती हैं। 'गोरस लोगी या ( हम चली ) जायँ ?' ( फिर स्वयं ही कहती हैं—'ये तो दही नहीं लेते' और ( यह कहते हुए ) दूसरे वृक्षोंके नीचे चली जाती हैं और जब परस्पर मिलती हैं, तब उसे ( अपनेसे मिलनेवालीको ) विवश ( व्याकुल ) देखकर कहती हैं—'तू इतराती क्यों है ( गर्वमें वृक्षोंको क्यों दही बेच रही है ) ?' वह उसे ( कहनेवालीको ) कहती है—'तुझे ( भी तो ) अपनी सुधि नहीं है ( तू भी तो यही कर रही है ); किंतु ( वह ) फिर भी समझ नहीं पाती। सूरदासजी कहते हैं कि श्यामसुन्दरके प्रेममें निमग्न गोपियाँ इसी प्रकार वनमें व्याकुल हो ( इधर-उधर ) डोल रही हैं।

राग बिलावल

[ १८ ]

रीती मटकी सीस धरैं।
बन की, घर की सुरति न काहू,
लेहु दही, यह कहति फिरैं॥ १॥
कबहुँक जाति कुंज भीतर कौं,
तहाँ स्याम की सुरति करैं।
चौंकि परतिं, कछु तन सुधि आवति,
जहाँ तहाँ सखि सुनति ररैं॥ २॥
तब यह कहतिं, कहौं मैं इन सौं,
भ्रमि भ्रमि बन मैं वृथा मरैं।
सूर स्याम कैं रस पुनि छाकतिं,
वैसेहीं ढँग बहुरि ढरैं॥ ३॥

( गोपकुमारियाँ ) खाली ( ही ) मटकी सिरपर रखे हैं। ( उनमें ) किसीको वन या घरका ( हम वनमें हैं या घरके सम्मुख ) कुछ स्मरण नहीं है; ( केवल ) 'दही लो, दही लो !' यह कहती फिर रही हैं। कभी ( किसी ) कुञ्जके भीतर ( चली ) जाती हैं और वहाँ श्यामसुन्दरका स्मरण करती हैं। ( जब ) शरीरकी कुछ सुधि आती है, तब चौंक पड़ती हैं और सुनती हैं कि सखियाँ जहाँ-तहाँ ( दही लो ! दही लो ) पुकार रही हैं। तब यह कहती हैं—'मैं इनसे कहूँ कि ( ये ) वनमें व्यर्थ भटक-भटककर ( क्यों ) मर रही हैं।' सूरदासजी कहते हैं कि ( वे ) फिर श्यामसुन्दरके प्रेममें छक होकर ( सखियोंको समझाना भूलकर स्वयं फिर ) उसी प्रकारके ( दही लो ! दही लो ! कहकर भटकनेकी ओर) ढुलक जाती हैं।

राग रामकली

[ १९ ]

गोरस लेहु री कोउ आइ।
द्रुमनि सौं यह कहति डोलतिं, कोउ न लेइ बुलाइ ॥ १ ॥
कबहुँ जमुना तीर कौं सब जाति हैं अकुलाइ।
कबहुँ बंसीबट निकट जुरि होतिं ठाढ़ी धाइ ॥ २ ॥
लेहु गोरस दान मोहन, कहाँ रहे छपाइ।
डरनि तुम्हरैं जातिं नाहीं, लेत दह्यौ छिड़ाइ ॥ ३ ॥
माँगि लीजै दान अपनौ, कहति हैं समझाइ।
आइ पुनि रिस करत हौ हरि, दह्यौ देत बहाइ ॥ ४ ॥
एक एकै बात बूझति, कहाँ गए कन्हाइ।
सूर प्रभु कैं रंग राँची, जिय गयौ भरमाइ ॥ ५ ॥

'अरी! कोई आकर गोरस लो!' ( गोपकुमारियाँ ) वृक्षोंसे यह कहती फिरती हैं, ( किंतु ) कोई हमें ( आज ) बुलाकर इसे लेता नहीं! कभी सब अधीर होकर यमुना-किनारे जाती हैं, कभी शीघ्रतासे ( सब ) एकत्र होकर वंशीवटके पास खड़ी होती हैं और ( कहती हैं— ) 'मोहन! आकर ( अपना ) गोरसका दान लो, ( अरे ) कहाँ छिपे हो? तुम्हारे ( इस ) भयसे कि तुम सब दही छीन लोगे, इसीलिये ( बिना दान दिये हम आगे ) नहीं जा रही हैं। ( फिर ) सब समझाकर कहती हैं—( श्यामसुन्दर! ) अपना दान ( आकर ) माँग लो, ( नहीं तो ) फिर तुम आकर क्रोध करके सब दही ढुलका ( गिरा ) देते हो।' एक दूसरीसे ( यह ) बात पूछती हैं कि 'कन्हैया कहाँ ( चले ) गये?' सूरदासजी कहते हैं कि हमारे स्वामीके प्रेममें ( वे ) निमग्न हैं, ( इससे उनका ) चित्त भ्रमित हो गया है।

राग जैतश्री

[ २० ]

बैठि गईं मटकी सब धरि कैं।
यह जानतिं अबहीं हैं आवत, ग्वाल सखा सँग हरि कैं ॥ १ ॥

अंचल सौं दधि माट दुरावतिं, दीठि गई तहँ परि कैं।
सबनि मटकिया रीती देखीं, तरुनीं गईं भभरि कैं ॥ २ ॥
कहि कहि उठीं जहाँ तहँ सब मिलि, गोरस गयौ कहुँ ढरि कैं।
कोउ कोउ कहैं स्याम ढरकायौ, जान देहु री जरि कैं ॥ ३ ॥
इहिं मारग कोऊ जिन आवै, रिस करि चलीं डगरि कैं।
सूर सुरति तन की कछु आई, उतरत काम लहरि कैं ॥ ४ ॥

सब ( गोपकुमारियाँ भूमिपर अपनी-अपनी ) मटकी रखकर बैठ गयीं। वे यह समझती हैं कि श्यामसुन्दरके साथ गोपसखा अभी आते (ही) हैं। ( इससे सब अपने-अपने ) अञ्चलसे दहीकी मटकी छिपाने लगीं। ( इतनेमें ) उनकी दृष्टि वहाँ ( मटकीपर ) पड़ गयी, ( तो ) सबोंने ( अपनी-अपनी ) मटकी खाली देखी; अतः सभी व्रजयुवतियाँ हड़बड़ा गयीं। जहाँ-तहाँ एकत्र होकर (वे) सब बार-बार बोल उठीं—'गोरस (तो) कहीं गिर गया ( जान पड़ता है )।' कोई-कोई कहने लगी—'श्यामसुन्दरने ही उसे गिराया है, सखी! उस (दही)को जल ( नष्ट हो ) जाने दो। ( अब आगे ) कोई ( भी ) इस मार्गसे मत आना।' (इस प्रकार कहती हुई वे ) रुष्ट होकर लौट चलीं। सूरदासजी कहते हैं कि कामकी लहर (प्रेमकी उमंग ) कुछ उतर (शिथिल पड़) जानेपर उन्हें शरीरका कुछ ध्यान आया।

राग नट

[ २१ ]

चकित भईं घोष कुमारि।
हम नहीं घर गईं तब तैं रहिं बिचारि बिचारि ॥ १ ॥
घरहि तैं हम प्रात आईं, सकुचि बदन निहारि।
कछु हँसतिं कछु डरतिं, गुरुजन देत ह्वैहैं गारि ॥ २ ॥
जो भई सो भई हम कहँ, रहीं इतनी नारि।
सखा सँग मिलि खाइ दधि, तबहीं गए बनवारि ॥ ३ ॥
इहाँ लौं की बात जानतिं, यह अचंभौ भारि।
यहै जानसि सूर के प्रभु सिर गए कछु डारि ॥ ४ ॥

व्रजकी कुमारियाँ आश्चर्यमें पड़ गयीं और बार-बार ( परस्पर ) विचार करने लगीं कि 'हम तभी ( कब ) से घर नहीं गयीं। घरसे तो हम सवेरे ही आ गयी थीं।' ( इसीसे ) संकोचपूर्वक ( वे एक-दूसरीका ) मुख देखने लगीं। कुछ हँसती और कुछ डरती हैं कि गुरुजन ( घरके बड़े लोग ) गाली दे रहे होंगे। 'हमारे साथ जो हुआ सो ( तो ) हुआ; ( कोई एक नहीं ) हम इतनी स्त्रियाँ थीं और सखाओंके साथ मिलकर श्रीवनमाली तो तभी ( बहुत पहिले ) दही खाकर चले गये थे। यहाँतककी बात हम जानती हैं। ( आगे हमारी क्या दशा हुई, इसका स्वयं हमको ही पता नहीं, ) यह बड़े आश्चर्यकी बात है।' वे यही समझती हैं कि सूरदासजी कहते हैं प्रभु हमारे सिरपर कुछ ( जादू-टोना करके ) डाल गये।

राग धनाश्री

[ २२ ]

स्याम बिना यह कौन करै।
चितवतहीं मोहिनी लगावै,
नैक हँसनि पै मनहि हरै॥ १॥
रोंकि रह्यौ प्रातहिं गहि मारग,
लेखौ करि दधि दान लियौ।
तन की सुधि तबही तैं भूली,
कछु पढ़ि कैं सिर नाइ दियौ॥ २॥
मन के करत मनोरथ पूरन,
चतुर नारि इहिं भाँति कहैं।
सूर स्याम मन हर्‌यौ हमारौ,
तिहि बिन कहि कैसैं निबहैं॥ ३॥

( गोपकुमारियाँ कह रही हैं—सखियो! ) श्यामसुन्दरके बिना यह ( कार्य ) कौन कर सकता है? ( वे ) देखते ही ( कुछ ) मोहिनी डाल देते ( मोहित कर लेते ) हैं और तनिक-सी ( अपनी ) हँसीसे ( किंचित् मुसकराकर )

चित्त चुरा लेते हैं । ( उन्होंने ) सवेरे ही मार्गमें पकड़कर हमें रोक लिया और हिसाब ( गणना ) करके ( जिसमें कोई मटकी छूट न जाय ) दहीका दान लिया । अतः तभीसे ( हम सब अपने ) शरीरकी सुधि भूल गयीं; ( जान पड़ता है ) कुछ ( मन्त्र ) पढ़कर ( उन्होंने ) हमारे सिर डाल दिया ।' सूरदासजीके शब्दोंमें ( कुछ ) चतुर स्त्रियाँ इस प्रकार कहने लगीं—'वे तो हमारे मनकी इच्छा पूर्ण करते हैं। ( उन ) श्यामसुन्दरने हमारा मन हर लिया है; अब उनके बिना बताओ ( तो ) हम कैसे रह सकेंगी ।'

[ २३ ]

**मन हरि सौं, तन घरहिं चलावति ।**
**ज्यौं गज मत्त लाज अंकुस करि घर गुरुजन सुधि आवति ॥ १ ॥**
**हरि रस रूप यहै मद आवत डर डार्‌यौ जु महावत ।**
**गेह नेह बंधन पग तोर्‌यौ प्रेम सरोवर धावत ॥ २ ॥**
**रोमावली सूँड़, बिवि कुच मनु कुंभस्थल छबि पावत ।**
**सूर स्याम केहरि सुनि कैं ज्यौं बन गज दरप नवावत ॥ ३ ॥**

( गोप-कुमारीका ) मन श्यामसुन्दरके साथ ( उलझा है ) और शरीरको वह घरकी ओर घसीट ले जा रही है । घर तथा गुरुजनोंका स्मरण आनेपर ( उसकी दशा ) लज्जासे ( ऐसी ) हो जाती है, जैसे मतवाले हाथीकी अङ्कुशसे पीड़ित होनेपर होती है। ( इस मदमाती हथिनीरूप गोपीने ) श्यामसुन्दरके प्रेमका मद चढ़नेपर ( घर-गुरुजनोंके ) डर ( रूप ) महावतको पटक दिया, ( साथ-ही ) प्रेम-सरोवरकी ओर दौड़ते समय घरका स्नेह-बन्धन जो ( उसके ) पैरोंमें था, उसे ( भी इसने ) तोड़ दिया । ( उसकी ) रोमावली सूँड़ और ( उसके ) दोनों वक्षःस्थल ( हथिनीके ) कुम्भस्थलके समान शोभा पा रहे थे। सूरदासजी कहते हैं—जैसे वन(जंगल)के हाथीका दर्प ( अभिमान ) सिंह ( अपना शब्द ) सुनाकर नवा ( झुका ) देता है, ( उसी प्रकार ) श्यामसुन्दरने ( इसे ) झुका दिया है—अपनी ओर आकर्षित कर लिया है ।

[ २४ ]

जुबति गई, घर नैंक न भावत।
मात पिता गुरुजन पूछत कछु, औरै और बतावत ॥ १ ॥
गारी देत सुनति नहिं नैकौ, स्रवन सब्द हरि पूरे।
नैन नाहिं देखत काहू कौं, ज्यौं कहुँ होंहिं अधूरे ॥ २ ॥
वचन कहति हरि ही के गुन कौं, उतहीं चरन चलावै।
सूर स्याम बिन और न भावै, कोउ कितनौ समुझावै ॥ ३ ॥

ग्वालिन घर चली तो गयी; ( किंतु ) उसे ( वहाँ ) तनिक भी अच्छा नहीं लगता। माता, पिता तथा दूसरे गुरुजन उससे पूछते तो कुछ हैं, ( पर वह ) उत्तर और-का-और (सर्वथा भिन्न) देती है। वे गालियाँ देते हैं, (उन्हें) यह तनिक ( भी ) सुनती नहीं; (क्योंकि) इसके कान (तो) श्यामसुन्दर-के शब्दोंसे भरे हैं। ( उसके ) नेत्र किसीको देखते नहीं, जैसे ( वे ) कहीं अधूरे हों ( उनके देखनेकी शक्तिमें कोई दोष आ गया हो )। ( वह ) श्रीहरिके गुण ही ( अपनी ) वाणीसे कहती है और उधर (श्यामके समीप) ही चरणोंको चलाती ( वहीं जानेकी इच्छा करती ) है। सूरदासजी कहते हैं कि चाहे कोई उसे कितना भी समझावे, ( पर ) उसे तो श्यामसुन्दरको छोड़कर दूसरा ( कोई ) अच्छा लगता ( ही ) नहीं।

राग सोरठ

[ २५ ]

लोक सकुच कुल कानि तजी।
जैसैं नदी सिंधु कौं धावै, वैसेंहि स्याम भजी ॥ १ ॥
मात पिता बहु त्रास दिखायौ, नैंक न डरी, लजी।
हारि मानि बैठे, नहिं लागति, बहुतै बुद्धि सजी ॥ २ ॥
मानति नाहिं लोक मरजादा, हरि के रंग मजी।
सूर स्याम कौं मिलि चूनौ हरदी ज्यौं रंग रँजी ॥ ३ ॥

( गोपीने ) लोगोंका संकोच तथा कुलकी मर्यादा छोड़ दी है। जैसे नदी ( पूरे वेगसे ) समुद्रकी ओर दौड़ती है, वैसे ही वह श्यामसुन्दरकी ओर आकर्षित हो रही है। ( उसे उसके ) माता-पिताने बहुत भय दिखलाया; ( किंतु उससे ) वह न तो तनिक ( भी ) डरी और न लज्जित हुई। ( वे ही लोग ) हार मान ( निराश हो )कर बैठ गये। उन्होंने अनेक युक्तियाँ ( इसको समझानेकी ) किये; ( किंतु ) कोई-सी भी नहीं लगी ( सफल नहीं हुई )। वह श्रीहरिके प्रेममें मग्न होनेके कारण लोक ( समाज )की मर्यादा मानती ही नहीं। सूरदासजी कहते हैं कि जैसे चूना हल्दीमें मिलकर रंगीन ( लाल ) हो जाता है, वैसे ही वह श्यामसुन्दरसे मिलकर अनुरागमयी हो गयी है।

राग सारंग

[ २६ ]

नैक नाहिं घर सौं मन लागत।
पिता मात गुरुजन परबोधत,
नीके बचन बान सम लागत ॥ १ ॥
तिन कौं धिक धिक कहति मनै मन,
इन कौं बनै भलैहीं त्यागत।
स्याम बिमुख नर नारि बृथा सब,
कैसैं मन इन सौं अनुरागत ॥ २ ॥
इन कौ बदन प्रात दरसै जिनि,
बार बार बिधि सौं यह माँगत।
यह तन सूर स्याम कौं अरप्यौ,
नैक टरत नहिं सोवत जागत ॥ ३ ॥

( गोपीका ) मन घरमें तनिक भी नहीं लगता। माता-पिता तथा बड़े लोग ( उसे ) समझाते हैं, ( किंतु ) उनकी ( वे ) अच्छी बातें ( भी उसे ) बाणके समान ( बेधक ) लगती हैं। मन-ही-मन उनको धिक्कार

देती हुई कहती है—'इनको त्याग देनेमें ही भला है; श्यामसुन्दरसे विमुख स्त्री-पुरुष सारे-के-सारे व्यर्थ जीवन धारण करते हैं, इनसे मन कैसे प्रेम करे।' ( अतः वे ) बार-बार विधातासे यही माँगती हैं—'इन ( श्याम-विमुख ) लोगोंका मुख सवेरे न दिखायी पड़े। यह शरीर तो ( हमने ) सूरदासजीके स्वामी श्यामसुन्दरको समर्पित कर दिया है; सोते-जागते कभी वे ( हमारे हृदयसे ) तनिक भी हटते नहीं।'

राग धनाश्री

[ २७ ]

पलक ओट नहिं होत कन्हाई।
घर गुरजन बहुतै बिधि त्रासत,
लाज करावत, लाज न आई॥ १॥
नैन जहाँ दरसन हरि अटके,
स्रवन थके सुनि बचन सुहाई।
रसना और नाहिं कछु भाषति,
स्याम स्याम रट इहै लगाई॥ २॥
चित चंचल संगै सँग डोलत,
लोक लाज मरजाद मिटाई।
मन हरि लियौ सूर प्रभु अबहीं,
तन बपुरे की कहा बसाई॥ ३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कहती है—'श्यामसुन्दर ( हमारी ) पलकोंकी ओट ( क्षणमात्रको भी ) नहीं होते ( सदा सम्मुख ही रहते हैं )। घरके बड़े लोग अनेक प्रकारसे भय दिखलाते, लज्जाशील बननेको कहते हैं; किंतु ( हम क्या करें, हमें ) लज्जा आती ही नहीं। ( हमारे ) नेत्र ( तो ) जहाँ श्यामसुन्दर दिखायी पड़ते हैं, वहीं लगे रहते हैं और ( हमारे ) कान ( उनकी ) मनोहर वाणी सुनकर मुग्ध हो गये हैं, हमारी जीभ और कुछ नहीं कहती—( सदा ) 'श्याम! श्याम!' यही रट लगाये रहती है।

( यह हमारा ) चञ्चल चित्त लोक ( समाज )की लाज और मर्यादा मिटाकर उनके साथ-ही-साथ घूमता ( रहता ) है, स्वामीने तभी ( पहिले दर्शनमें ही हमारा ) मन हर लिया, ( तब ) बेचारे ( इस ) शरीरका क्या जोर चल सकता है।'

राग बिलावल

[ २८ ]

चली प्रातहीं गोपिका मटकिनि लै गोरस।
नैन स्रवन मन बुद्धि चित्त, ये नहिं काहू बस॥ १॥
तन लीन्हें डोलति फिरैं, रसनाँ अटक्यौ जस।
गोरस नाम न आवई, कोउ लैहै हरि रस॥ २॥
जीव पर्‌यौ या ख्याल मैं, अरु गयौ दसा दस।
बझै जाइ खगबृंद ज्यौं, प्रिय छबि लटकनि लस॥ ३॥
छाड़ेहुँ दिएँ उड़ात नहिं कीन्हौ पावै तस।
सूरदास प्रभु भौंह की मोरन फाँसी गँस॥ ४॥

गोपी सबेरे ही मटकियोंमें गोरस ( दूध-दही आदि ) लेकर चली; उसके नेत्र, कान, मन, बुद्धि और चित्त ( अपने ) वशमें नहीं हैं। केवल शरीर लिये घूमती-फिरती है और ( उसकी ) जिह्वामें ( मोहनका ) सुयश-( गान ) स्थिर हो गया है। ( उसके मुखसे ) गोरसका नाम नहीं निकलता; वह तो यही कहती है—'कोई हरि-रस ( श्रीकृष्ण-प्रेम ) लेगा?' ( उसका ) जीव ( भी ) इसी (श्रीकृष्ण-रसके) चिन्तनमें निमग्न होनेके कारण ( विरहकी लालसा आदि ) दसों दशाओंको पार कर चुका है। जैसे पक्षी-दल लासेदार लटकनमें फँस जाय, उसी प्रकार वह प्रियतमकी त्रिभङ्गीशोभाके जालमें फँस गयी है। ( गोंदसे पंख चिपके रहनेके कारण जैसे पक्षी ) छोड़ देनेपर उड़ नहीं पाता और अपने कर्मका फल भोगता है, उसी प्रकार सूरदासजी कहते हैं कि मेरे स्वामीने अपनी भौंहोंकी मरोड़रूप फाँसीकी गाँठसे इसे बाँध रखा है।

राग कान्हरौ

[ ७९ ]

दधि बेचति ब्रज गलिनि फिरै।
गोरस लैन बुलावत कोऊ, ताकी सुधि नैकौ न करै ॥ १ ॥
उन की बात सुनति नहिं स्रवनन, कहति कहा ए घरनि जरे।
दूध दह्यौ ह्याँ लेत न कोऊ, प्रातहि तैं सिर लिएँ ररै ॥ २ ॥
बोलि उठति पुनि लेहु गुपालै, घर घर लोक लाज निदरै।
सूर स्याम कौ रूप महारस, जाकें बल काहू न डरै ॥ ३ ॥

( गोपी ) दही बेचती व्रजकी गलियोंमें घूम रही है; कोई गोरस ( दूध-दही ) लेनेको ( उसे ) बुलाता है तो ( वह उसकी ) पुकारपर तनिक भी ध्यान नहीं देती, ( वह ) उनकी बातें ( तो ) कानोंसे सुनती नहीं और कहती है—'क्या ये सब घरवाले जल गये हैं ? ( इनमें कोई लेने-वाला रहता नहीं ? ) ( मैं ) सवेरेसे मस्तकपर रखे चिल्ला रही हूँ, पर यहाँ कोई दूध-दही लेता ही नहीं।' ( वह ) घर-घर घूमती हुई लोक-लज्जाका निरादर करके फिर बोल उठती है—( कोई ) 'गोपालको लो !' सूरदासजी कहते हैं कि श्यामसुन्दरका रूप महान् आनन्दमय है, जिसके बलपर ( जिसमें निमग्न होनेके कारण वह ) किसीसे डरती नहीं।

[ ८० ]

गोरस कौ निज नाम भुलायौ।
लेहु लेहु कोऊ गोपालै,
गलिन गलिन यह सोर लगायौ ॥ १ ॥
कोउ कहै स्याम, कृष्ण कहै कोऊ,
आज दरस नाहीं हम पायौ।
जाकें सुधि तन की कछु आवति,
लेहु दही कहि तिन्है सुनायौ ॥ २ ॥

इक कहि उठति दान माँगत हरि,
कहूँ भई कै तुम्हीं चलायौ।
सुनैं सूर तरुनी जोबन मद,
तापै स्याम महारस पायौ ॥ ३ ॥

( व्रजकी गोपीने ) गोरसका अपना नाम तो भुला दिया; 'कोई गोपाल लो, गोपाल लो !' यह पुकार गली-गलीमें करनी प्रारम्भ कर दी। कोई कहती है—'श्याम लो !' ( तो ) कोई कहती है—'कृष्ण लो !' ( और कोई कहती है—) 'आज मुझे दर्शन नहीं मिला।' जिसे अपने शरीरका कुछ ज्ञान हो आता है, वह लोगोंको 'दही लो !' की टेर सुनाने लगती है। एक ( कोई प्रेमावेशमें भरकर ) कह उठती है—'श्याम ! तुम जो दान माँगते हो, यह ( बात पहले थी ) कहीं हुई है या तुमने ही ( यह नयी प्रथा ) चलायी है ? सूरदासजी कहते हैं—सुनो, एक तो वह गोपी तरुणी होनेके कारण यौवनके मदसे मतवाली हो रही है, उसपर ( यह ) श्यामसुन्दरका महान् प्रेम ( उसने ) पा लिया है। ( अतः उसका यह प्रेमोन्माद धन्य है। )

[ ३१ ]

ग्वालिन फिरत बिहाल सौं।
दधि मटकी सिर लीन्हें डोलति,
रसना रटति गोपाल सौं ॥ १ ॥
गेह नेह सुधि देह बिसारें,
जीव पर्‌यौ हरि ख्याल सौं।
स्याम धाम निज बास रच्यौ,
रचि रहित भई जंजाल सौं ॥ २ ॥
छलकत तक्र उफनि अँग आवत,
नहिं जानति तिहि काल सौं।
सूरदास चित ठौर नहीं कहुँ,
मन लाग्यौ नँदलाल सौं ॥ ३ ॥

गोपी व्याकुल हुई घूम रही है; वह सिरपर दहीकी मटकी लिये घूमती है, ( किंतु ) वाणीसे गोपालका नाम रट रही है। घर(वालों)का प्रेम और शरीरका स्मरण भूलकर ( उसका ) जीव श्रीहरिके स्मरणमें निमग्न हैं, ( वह ) श्यामसुन्दरके भवन (नन्दालय)को ( ही ) अच्छी तरह अपना निवास बनाकर ( भगवत्-प्राप्ति करके ) जंजाल ( संसारके माया-मोह )से छूट गयी है। ( सिरपर रखा ) मट्ठा छलकनेके कारण उफनकर ( उसके ) शरीरपर गिर रहा है, ( किंतु वह ) उस समय ( भावावेशके कारण उसे ) जान नहीं पाती। सूरदासजी कहते हैं कि उसके चित्तमें कहीं स्थान नहीं ( बचा ) है ( कि और कोई बात आ सके, उसका ) मन तो नन्दलालमें ही ( पूर्णतः ) लग गया है।

राग मलार

[ ३२ ]

कोउ माई लैहै री गोपालै।
दधि कौ नाम स्यामसुंदर रस बिसरि गयौ व्रजबालै ॥ १ ॥
मटकी सीस फिरति व्रज-बीथिनि, बोलति बचन रसालै।
उफनत तक्र चहूँ दिसि चितवत, चित लाग्यौ नँदलालै ॥ २ ॥
हँसति रिसाति बुलावति बरजति देखौ इनकी चालै।
सूर स्याम बिन और न भावै या बिरहिन बेहालै ॥ ३ ॥

( कोई गोपी पुकारती है—) 'अरी माई ! कोई गोपालको लेगी ?' श्यामसुन्दरके प्रेममें ( उस ) व्रजबालाको दहीका नाम ही भूल गया है। सिरपर मटकी रखे वह व्रजकी गलियोंमें घूमती हुई रसमय ( प्रेमभरी ) वाणी बोल रही है। मट्ठा उफन ( छलक ) कर ( गिर ) रहा है; ( किंतु ) वह चारों ओर देख रही है; ( क्योंकि उसका ) चित्त नन्दलालमें लगा है। वह ( कभी ) हँसती, ( कभी ) क्रोध करती, ( कभी ) किसीको बुलाती है और ( कभी ) रोकती है, ( और कहती है ) 'इनकी चाल तो देखो !' सूरदासजी कहते हैं कि इस व्याकुल विरहिणीको श्यामसुन्दरके बिना और कुछ अच्छा नहीं लगता।

राग गौड़ मलार

[ ३३ ]

ग्वालिनी प्रगट्यौ पूरन नेहु ।
दधि भाजन सिर पै धरें कहति गोपालै लेहु ॥ १ ॥
बाट घाट निज पुर गली, जहाँ तहाँ हरि नाउँ ।
समझाएँ समझै नहीं, (वाहि) सिख दै बिथक्यौ गाउँ ॥ २ ॥
कौन सुनै, कासौं कहौं, काकै सुरत सँकोच ।
काकौं डर पथ अपथ कौ, को उत्तम, को पोच ॥ ३ ॥
पान किएँ जस बारुनी, मुख झलकति तन न सम्हार ।
पग डगमग जित तित धरै, बिथुरीं अलक लिलार ॥ ४ ॥
दीपक ज्यौं मंदिर बरै, बाहिर लखै न कोइ ।
तृन परसत प्रज्वलित भयौ, गुप्त कौन विधि होइ ॥ ५ ॥
लज्जा तरल तरंगिनी, गुरुजन गहरी धार ।
दोउ कुल कूल परमिति नहीं,(ताहि)तरत न लागी बार ॥ ६ ॥
सरिता निकट तड़ाग कें, दीनौ कूल बिदारि ।
नाम मिट्यौ सरिता भई, कौन निवेरै बारि ॥ ७ ॥
विधि भाजन ओछौ रच्यौ, लीला सिंधु अपार ।
उलटि मगन तामें भयौ, ( अब ) कौन निकासनहार ॥ ८ ॥
चित आकर्ष्यौ नंद कें मुरली मधुर बजाइ ।
जिहिं लज्जा जग लाजयौ ( सो ) लज्जा गई लजाइ ॥ ९ ॥
प्रेम मगन ग्वालिन भई सूरदास प्रभु संग ।
स्रवन नयन मुख नासिका ( ज्यौं ) कंचुकि तजत भुजंग ॥ १० ॥

गोपी (के चित्त)में पूर्ण प्रेम प्रकट हो गया है; ( वह ) सिरपर दहीका बर्तन रखे हुए कहती है (कोई) 'गोपाल लो !' राजमार्गपर, (यमुनाजीके)घाटों-पर और अपने (गोकुल) गाँवकी गलियोंमें जहाँ-तहाँ ( सर्वत्र ) श्रीहरिका नाम (ही) लेती है;पूरा गाँव उसे शिक्षा देकर थक गया,(किंतु वह किसीके)समझानेपर

(भी) समझती नहीं है। (सच तो यह है कि अपने मनकी बात) वह किससे कहे और कौन (उसकी बात) सुने? शरीरकी स्मृति किसे है, जिसके कारण (मनमें) संकोच (लज्जाका अनुभव) हो? किसे मार्ग-कुमार्गका डर है? कौन श्रेष्ठ है और कौन नीच? (इसका ज्ञान किसे है?)। उसका मुँह (प्रेमके आवेश-से) चमक रहा है, शरीरकी सम्हाल भी है नहीं, ऐसा लगता है मानो वह मदिरा पीकर मतवाली हो रही है। डगमगाते (लड़खड़ाते हुए) पैर जहाँ-तहाँ धरती है और ललाटपर अलकें बिखरी हैं। (जैसे) मन्दिरमें (फूस-की झोपड़ीके भीतर) जलते हुए दीपकको बाहर कोई नहीं देख पाता; (किंतु मढ़ैयाके किसी एक) तिनकेसे छू जानेपर (आग लग जानेपर, वह जब जल उठता है, तब भला, कैसे छिपा रह सकता है, (ऐसे ही उसके हृदयका गुप्त प्रेम अब प्रकट हो गया है)। लज्जा नदीके समान है और गुरुजनों (का संकोच उसकी) गम्भीर धारा। दोनों कुल (पितृकुल और पतिकुल) उसके दोनों किनारे हैं, जिनकी कोई सीमा नहीं है; (फिर भी उस अपार लज्जा-नदीको उसे) पार करनेमें देर नहीं लगी। (जैसे) सरोवरके पासकी नदी अपने वेगसे यदि तालाबकी सीमाको तोड़कर तालाबमेंसे होकर बहने लगे तो (उस सरोवरका) नाम मिटकर वह भी नदी हो जाता है। (अब भला, दोनोंके) जलका पृथक्करण कौन कर सकता है? (इसी प्रकार वह श्यामसे एकाकार हो गयी है, अब कोई उसे अलग नहीं कर सकता।) ब्रह्माने (चित्तरूपी) बर्तन बहुत छोटा (छिछला) बनाया और (मोहन-की) लीला अपार सागर (के समान)। (फलतः) उलटकर (वह) उसी (लीलासागर) में मग्न हो (डूब) गया, (अब भला; उसे) निकालने-वाला कौन है? श्रीनन्दनन्दनने मधुर वंशी बजाकर उसका चित्त आकर्षित कर लिया; (फल यह हुआ कि) जिस लज्जासे संसार लज्जित हुआ करता है, (वह) लज्जा स्वयं (उस गोपीके प्रेमके आगे) लज्जित हो गयी। सूरदासजी कहते हैं कि गोपिका मेरे स्वामीके साथ प्रेममें निमग्न हो गयी। उसके कान, नेत्र, मुख और नाक (आदि इन्द्रियगोलक) उसी प्रकार निकम्मे हो गये, जैसे साँपके केंचुली छोड़ देनेपर उसमें बने हुए नेत्र आदिके चिह्न निकम्मे होते हैं।

राग सुघरई

[ ३४ ]

छोटी मटकी मधुर चाल चलि गोरस बेचति ग्वालि रसाल ।
हरबराइ उठि चली प्रातहीं बिथुरे कच कुम्हिलानी माल ॥ १ ॥
गेह नेह सुधि नैक न आवति, मोहि रही तजि भवन जँजाल ।
और कहति औरै कहि आवत, मन मोहन के परी जु ख्याल ॥ २ ॥
जोइ जोइ पूछन हैं का यामैं, कहति फिरति कोउ लेहु गुपाल ।
सूरदास प्रभु के रस बस ह्वै, चतुर ग्वालिनी भई बिहाल ॥ ३ ॥

प्रेममयी गोपी छोटी-सी मटकी लिये मधुर ( मनोहर ) चाल चलती हुई गोरस बेचने चल पड़ी । सबेरे ही हड़बड़ाकर ( शीघ्रतासे ) उठकर चल पड़नेसे ( उसके ) बाल बिखरे हैं और माला कुम्हिला (मुरझा) गयी है । घरका तथा घरवालोंके स्नेहका उसे तनिक भी स्मरण नहीं है । ( वह ) भवनका सब जंजाल छोड़कर ( श्यामसुन्दरपर ) मोहित हो रही है । ( वह ) कहना कुछ चाहती है, कहा कुछ और ही जाता है; (क्योंकि) वह मन-मोहनके ही ध्यानमें मग्न है । जो कोई ( उसे ) पूछते हैं कि '(तुम्हारी) इस ( मटकी ) में क्या है ?' ( उनसे यही ) कहती फिरती है—'कोई गोपाल लो !' सूरदासजी कहते हैं—मेरे स्वामीके प्रेमके वश होकर यह चतुर गोपिका व्याकुल हो गयी है ।

राग कान्हरौ

[ ३५ ]

दधि मटकी सिर लिएँ ग्वालिनी काँन्ह काँन्ह करि डोलै री ।
बिबस भई तन सुधि न सम्हारै आप बिकी बिन मोलै री ॥
जोइ जोइ पूछै यामैं है का लेहु लेहु कहि बोलै री ।
सूरदास प्रभु रस बस ग्वालिन बिरहभरी फिरै ढोलै री ॥

( कोई ) गोपिका दहीकी मटकी सिरपर लिये 'कन्हैया ! कन्हैया !' कहती घूम रही है, वह प्रेममें विह्वल हो गयी है, जिसके कारण उसे शरीरका स्मरण एवं सम्हाल भी नहीं रह गयी है; ( क्योंकि ) वह स्वयं ही बिना मूल्य ( श्यामसुन्दरके हाथ ) बिक गयी है। जो कोई (उसे) पूछता है—'इस ( तेरी मटकी )में क्या है ?' उसे वह ( केवल ) 'लो ! लो !' कहकर बोलती है। सूरदासजी कहते हैं—( इस प्रकार वह ) गोपिका मेरे स्वामीके प्रेमके वश होकर वियोग-व्यथासे भरी एकसे दूसरे मुहल्लेमें घूम रही है।

राग धनाश्री

[ ३६ ]

बेचति ही दधि ब्रज की खोरी।
सिर कौ भार सुरति नहिं आवत, स्याम, स्याम टेरत भइ भोरी ॥
घर घर फिरत गुपालै बेचत, मगन भई मन ग्वारि किसोरी।
सुंदर बदन निहारन कारन अंतर लगी सुरति की डोरी ॥
ठाढ़ी रही बिथकि मारग मैं, हाट माँझ मटकी सो फोरी।
सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि, चित चिंतामनि लियौ अँजोरी ॥

कोई गोपिका व्रजकी गलियोंमें (घूम-घूमकर) दही बेच रही थी; (किंतु उस गोपकुमारीको यह ) स्मरण नहीं आ रहा था कि (उसके) मस्तकपर किस वस्तुका भार ( वह क्या लिये ) है; ( केवल ) 'श्याम ! श्याम !' पुकारती हुई बहक रही है। ( वह ) किशोर अवस्थाकी गोपी मनमें मग्न ( होती ) हुई घर-घर गोपालको बेचती फिरती है, ( उन श्यामसुन्दरके ) सुन्दर मुखको देखनेके लिये ( उसके ) चित्तमें स्मरणकी डोरी ( निरन्तर स्मरण-की धारा ) लगी है। मार्गमें ही विमुग्ध होकर खड़ी रह गयी और भरे बाजारमें उसने ( अपनी ) मटकी फोड़ दी। सूरदासजी कहते हैं कि रसिक-शिरोमणि स्वामीने उसका चित्तरूपी चिन्तामणि जबरदस्ती छीन लिया है।

राग बिलावल

[ ३७ ]

नर नारी सब बूझत धाइ।
दही मही मटकी सिर लीन्हें बोलति हौ गोपाल सुनाइ ॥

हमैं कहौ तुम्ह करति कहा यह, फिरति प्रातही तैं ह्वौ आइ।
गृह द्वारौ कहुँ है कै नाहीं, पिता मात पति बंधु न भाइ ॥
इत तैं उत, उत तैं आवति इत, विधि मरजादा सबै मिटाइ।
सूर स्याम मन हरथ्यौ तुम्हारौ, हम जानी यह बात बनाइ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें ( उस गोपीसे ) सभी स्त्री-पुरुष दौड़कर पूछते हैं—'सिरपर मट्ठेकी और दहीकी मटकी लिये गोपाल ( श्यामसुन्दर )को सुनाकर ( जिससे वे तुम्हारा बोल सुन लें ) 'गोपाल'की रट लगा रही हो! हमसे तो कहो कि यह तुम क्या करती हो, जो सबेरेसे आकर ( यहाँ ) चक्कर लगा रही हो ? कहीं तुम्हारा घर-द्वार है या नहीं ? और क्या तुम्हारे पिता, माता, पति, भाई-बन्धु ( भी ) कोई नहीं हैं ? सारे नियम एवं मर्यादाको मिटाकर इधर-से-उधर और उधर-से-इधर आ-जा रही हो ! हमने यह बात भली प्रकार जान ली कि तुम्हारा मन श्यामसुन्दरने चुरा लिया है।'

राग धनाश्री

[ ३८ ]

कहति नंद घर मोहि बतावौ।
द्वाहि माँझ बात यह बूझति, बार बार कहि कहाँ दिखावौ ॥ १ ॥
याहीं गाउँ किधौं औरैं कहुँ, जहाँ महर कौ गेहु।
बहुत दूरि तैं मैं आई हौं, कहि काहें न जस लेहु ॥ २ ॥
अतिहीं संभ्रम भई ग्वालिनी, द्वारेही पै ठाढ़ी।
सूरदास स्वामी सौं अटकी प्रीति प्रगट अति बाढ़ी ॥ ३ ॥

( कोई ) गोपी कहती है—( सखी ! ) 'मुझे नन्द-भवन बतला दो !' ( वह नन्दभवनके ) द्वारपर ही यह बात पूछती हुई बार-बार कहती है—'( नन्दभवन ) कहाँ है ? दिखा दो ! जहाँ व्रजराजका भवन है, वह स्थान इसी ग्राममें है या और कहीं ? मैं बहुत दूरसे आयी हूँ, ( मुझे उसका पता ) बताकर ( आप सब ) सुयश क्यों नहीं लेते ?' ( वह ) गोपी ( नन्दरायके )

द्वारपर ही अत्यन्त बौखलायी हुई खड़ी है । सूरदासजी कहते हैं—उसका चित्त मेरे स्वामीमें लगा है, स्पष्ट ही उसका प्रेम ( श्यामसुन्दरके प्रति ) अत्यन्त बढ़ गया है ।

राग गौड़ मलार

[ ३९ ]

नंद के द्वार नँद गेह बूझै ।
इतै तैं जाति उत, उतै तैं फिरै इत,
निकट ह्वै जाति नहिं नैक सूझै ॥ १ ॥
भई बेहाल ब्रजबाल, नँदलाल हित,
अरपि तन मन सबै तिन्है दीन्हौ ।
लोकलज्जा तजी, लाज देखत लजी,
स्याम कौं भजी, कछु डर न कीन्हौ ॥ २ ॥
भूलि गयौ दधि नाम, कहति लै हो स्याम,
नहीं सुधि धाम कहुँ है कि नाहीं ।
सूर प्रभु कौं मिली, मेटि भलि अनभली,
चून हरदी रंग देह छाहीं ॥ ३ ॥

गोपी श्रीनन्दजीके द्वारपर ही ( खड़ी ) उनका घर पूछ रही है । ( वह ) इधर-से-उधर जाती है, ( और ) फिर उधर-से-इधर आती है; वह नन्दालयके पाससे ही गुजरती है । ( किंतु नन्द-भवन) उसे बिल्कुल नहीं दीखता । श्रीनन्दनन्दन ( को पाने )के लिये ( वह ) व्रजबाला अत्यन्त व्याकुल हो रही है, उन्हें ( उसने ) अपना तन-मन—सब कुछ समर्पित कर दिया है, लोकलज्जा छोड़ दी है, ( बल्कि सच तो यह है कि ) लज्जा इसे देखकर स्वयं लज्जित हो गयी है; ( अतएव ) श्यामसुन्दरसे प्रेम करनेमें ( इसने ) कोई भय नहीं किया । दहीका नाम ( तो इसे ) भूल गया है; ( बदलेमें ) कहती है—'श्याम लो ।' ( उसे ) यह भी स्मरण नहीं कि कहीं मेरा घर ( भी ) है या नहीं । सूरदासजी कहते हैं कि ( जैसे ) चूना और

हल्दीका रंग मिलकर एक ( लाल ) हो जाते हैं अथवा जैसे शरीरके साथ छाया मिली रहती है ( कभी संग नहीं छोड़ती ), वैसे ही यह भले-बुरेकी मर्यादा मिटा मेरे स्वामी ( श्रीकृष्ण )से मिल गयी है।

राग नट

[ ४० ]

सुनि री ग्वारि मुग्ध गँवारि।
स्याम सौं हित भलैं कीन्हौ, दियौ ताहि उघारि ॥ १ ॥
कृष्ण धन का प्रगट कीजै, राखि सकै उबारि ?।
अजौं काहैं न समझि देखति, कह्यौ सुनि री नारि ॥ २ ॥
ओछि बुधि तैं करी सजनी, लाज दीन्ही डारि।
लाज आवति मोहि सुनि री, तोहि कहत गँवारि ॥ ३ ॥
ज्वाब नाहिन आवई मुख, कहति हौं जु पुकारि।
सूर प्रभु कौं पाइ कै यह, ग्यान हृदै बिचारि ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें दूसरी गोपी कहती है—'अरी भोली नासमझ गोपी ! सुन। श्यामसुन्दरसे ( तूने ) प्रेम किया यह तो ठीक; किंतु उसे प्रकट क्यों कर दिया। अरे, कृष्णरूपी धनको क्या प्रकट करना चाहिये ? ( प्रकट कर देनेपर अब क्या ) उसे बचाकर रखा जा सकता है ? अरी नारी ! कहना सुन, अब भी समझकर क्यों नहीं देखती ? सखी ! तूने यह ओछी ( छोटी ) बुद्धिकी बात की, जो लज्जाको त्याग दिया। अरी ! सुन, तुझे मूर्ख कहते मुझे लज्जा आती है। ( तेरे ) मुखसे उत्तर नहीं निकलता ? मैं पुकारकर ( तुझसे ) कहती हूँ कि स्वामी ( श्रीकृष्ण )को पाकर इस ज्ञान ( उपदेश )का ( कि उनका प्रेम गुप्त रखना चाहिये ) हृदयमें विचार कर।'

राग कान्हरौ

[ ४१ ]

कहा कहति तू मोहि री माई !

नँदनँदन मन हरि लियो मेरौ,
तब तैं मोकौं कछु न सुहाई ॥ १ ॥
अब लौं नहिं जानति मैं को ही,
कब तैं तू मेरे ढिंग आई ।
कहाँ गेह, कहँ मात पिता हैं,
कहाँ सजन गुरुजन, कहँ भाई ॥ २ ॥
कैसी लाज, कानि है कैसी,
कहा कहति ह्वै ह्वै रिसहाई ?।
अब तौ सूर भजी नँदलालै,
कै लघुता कै होइ बड़ाई ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें ( यह सुनकर ) वह गोपी कह रही है—'सखी ! तू मुझे क्या कह रही है ? ( जबसे ) श्रीनन्दनन्दनने मेरा मन चुरा लिया है, तभीसे मुझे कुछ ( भी ) अच्छा नहीं लगता । अबतक मैं नहीं जानती थी कि मैं कौन थी और तू कबसे मेरे पास आयी है, मेरा घर कहाँ है, माता-पिता कहाँ हैं, कहाँ पति, कहाँ गुरुजन हैं और कहाँ भाई हैं, लज्जा कैसी, मर्यादा कैसी और तू रुष्ट हो-होकर कहती क्या है । अब तो ( मैंने ) श्रीनन्दलालसे प्रेम किया है, फिर मेरी चाहे हेठी हो या प्रशंसा हो ।'

राग धनाश्री

[ ४२ ]

बार बार मोहि कहा सुनावति ।
नैकौ नाहिं टरत हिरदै तैं, बहुत भाँति समझावति ॥ १ ॥
दोबल कहा देति मोहि सजनी, तू तौ बड़ी सुजान ।
अपनी सी मैं बहुतै कीन्ही, रहति न तेरी आन ॥ २ ॥
लोचन और न देखत काहू, और सुनत नहिं कान ।
सूर स्याम कौं वेगि मिलावै, कहत रहत घट प्रान ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें वह गोपी फिर कह रही है—( 'सखी ! )बार-बार मुझे क्या सुनाती ( उपदेश करती ) है, मैं स्वयं अपनेको अनेक प्रकार-से समझाती हूँ; किंतु वह मूर्ति तो मेरे हृदयसे तनिक भी हटती (ही) नहीं। सखी ! तू तो बड़ी समझदार है, फिर मुझे दोष क्यों दे रही है ? अपने अनुरूप मैंने बहुत चेष्टा की; ( किंतु ) तेरा दबाव टिकता नहीं। ( क्या करूँ, मेरे ) नेत्र और किसीको देखते ( ही ) नहीं और कान किसी औरकी बात सुनते नहीं। अब तो ( मेरे ) शरीरमें प्राण ( यही ) कहते रहते हैं कि श्यामसुन्दरसे मुझे शीघ्र मिला दो।'

[ ४३ ]

सबै हिरानी हरि मुख हेरें।
घूँघट ओट पट ओट करैं सखि, हाथ न हाथन मेरें ॥ १ ॥
काकी लाज कौन कौ डर है, कहा कहें भयौ तेरें।
को अब सुनै, स्रवन हैं काकें, निपट निगम के टेरें ॥ २ ॥
मेरे नैन न हौं नैननि की, जौ पै जानति फेरें।
सूरदास हरि चेरी कीन्ही मन मनसिज के चेरें ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—'( सखी ! ) श्रीहरिका मुख देखते ही ( मेरा ) सब कुछ खो गया;( वे ) मेरे हाथ-ही-हाथमें ( मेरे वशमें ) नहीं रहे, जो घूँघटकी आड़ या वस्त्र ( अंचल ) की आड़ करते। ( अब ) किसकी लज्जा, किसका भय और तेरे कहने ( उपदेश ) से भी क्या हुआ ? अब (उसे) कौन सुने ? कान ही किसके हैं तथा निरे (एक स्वरके) टेरने ( सदुपदेश करने ) से भी ( अब ) क्या होना है ? न ( तो ) मेरे नेत्र हैं और न मैं नेत्रोंकी हूँ, जिन्हें (तू) बदला हुआ समझती है। कामदेवके दास मनने ( मुझे ) श्यामसुन्दरकी दासी बना दिया है ( अतः अब मैं स्वतन्त्र कहाँ हूँ )।'

राग नट

[ ४४ ]

मेरे कहे मैं कोउ नाहिं।
कहा कहौं कछु कहि नहिं आवै, नैकहूँ न डराहिं ॥ १ ॥
नैन ये हरि दरस लोभी, स्रवन सब्द रसाल।
प्रथमहीं मन गयौ तन तजि, तब भई बेहाल ॥ २ ॥
इंद्रियन पै भूप मन है, सबन लियौ बुलाइ।
सूर प्रभु कौं मिले सब ये, मोहि करि गए बाइ ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें वह गोपी फिर कह रही है—'(सखी !) मेरे कहनेमें कोई नहीं है। क्या कहूँ; कुछ कहा नहीं जाता; (ये) तनिक भी डरते नहीं हैं। (मेरे) ये नेत्र श्यामसुन्दरके दर्शनके और कान (उनकी) रसमयी वाणी (सुनने) के लोभी हैं और मन तो पहिले ही शरीर छोड़कर (उनके पास) चला गया; तभी (से) व्याकुल हुई हूँ। इन्द्रियोंका राजा (शासक) तो मन है, (सो) उसने सबको बुला लिया; ये सब (मन-इन्द्रियादि) स्वामी (श्रीकृष्ण)से मिल गये और मुझे पगली बना गये।'

राग गौरी

[ ४५ ]

कहा करौं, मन हाथ नहीं।
तू मो सौं यह कहति भली री,
अपनौ चित मोहि देति नहीं।
नैन रूप अटके नहिं आवत,
स्रवन रहे सुनि बात तहीं ॥ १ ॥
इंद्रीं धाइ मिलीं सब उन कौं,
तनमैं जीव रह्यौ सँगहीं।
मेरें हाथ नहीं ये कोई,
घट लीन्हें इक रही मही।

सूर स्याम सँग तैं न टरत कहुँ,
आनि देहि जौ मोहि तुहीं ॥ २ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—‘( सखी ! ) मैं क्या करूँ ! मन मेरे वशमें नहीं है। तू मुझसे बात तो यह अच्छी कहती है, ( किंतु ) अपना ( अपने समान समझदार ) चित्त मुझे नहीं देती ( जिससे तेरे ये उपदेश सुन-समझ सकूँ )। ( क्या करूँ, मेरे ) नेत्र ( श्यामसुन्दरके ) रूपमें फँस गये, ( वे वहाँसे ) लौटते नहीं और कान उनकी बात ( वाणी ) सुनकर वहीं रह गये। सब इन्द्रियाँ दौड़कर उनसे मिल गयीं और जीव भी उनमें तन्मय ( निमग्न ) होकर उनके साथ ही ( वहाँ ) रह गया। ( अब ) मेरे-साथ इनमेंसे कोई-सा ( भी ) नहीं है, एक घड़ा मठा लिये मैं ही ( मेरा शरीर ही ) अकेली बची हूँ, ( ये ) सब तो सूरदासके श्यामसुन्दरके साथसे कहीं हटते ही नहीं; ( बड़ी कृपा हो ) यदि तू ही ( इन्हें ) लाकर मुझे दे दे।’

राग सारंग

[ ४६ ]

बिकानी हरि मुख की मुसकानि।
परबस भई फिरति सँग निसि दिन, सहज परी यह बानि।
नैनन निरखि बसीठी कीन्ही, मन मिलयौ पै पानि।
गहि रतिनाथ लाज निज उर तैं, हरि कौं सौंपी आनि॥
सुनि री सखी, स्यामसुंदरकी दासी सब जग जानि।
जोइ जोइ कहत सोई सोई कृत आयसु माथें लीन्ही मानि॥
तजि कुल लाज लोक मरजादा पति परिजन पहिचानि।
सूर सिंधु सरिता मिलि जैसैं मनसा बूँद हिरानि॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! ) श्रीहरिके मुखकी मुस्कराहटपर मैं बिक गयी; फलतः ( अब ) परवश हुई रात-दिन उनके साथ घूमती हूँ, यह ( मेरा ) सहज स्वभाव-सा बन गया है। नेत्रोंने ( उन्हें ) देखकर दूतका काम किया और मनको उनसे इस प्रकार मिला दिया, जैसे

दूधमें पानी ( मिल जाता है ); ( इधर ) कामदेवने हमारे हृदयसे लज्जाको पकड़ ले जाकर श्रीहरिको सौंप दिया। ( अतः ) सखी ! सुन, ( अब तो ) सारा संसार मुझे श्यामसुन्दरकी दासी जान गया, ( वे ) जो-जो कहते हैं, ( उनकी ) आज्ञा मस्तकपर धारणकर ( मैं ) वही-वही करती हूँ। कुलकी लज्जा, लोककी मर्यादा, पति तथा कुटुम्बियोंका परिचय त्यागकर जैसे नदी समुद्रमें मिलती है, ( वैसे ही मेरी ) बुद्धिकी बूँद उन ( श्यामसुन्दर ) में खो ( विलीन हो ) गयी है।

राग गौरी

[ ४७ ]

अब तौ प्रगट भई जग जानी।
वा मोहन सौं प्रीति निरंतर क्यौंऽब रहैगी छानी॥ १॥
कहा करौं सुंदर मूरति इन नैननि माँझ समानी।
निकसति नाहिं बहुत पचि हारी, रोम-रोम अरुझानी॥ २॥
अब कैसैं निरवारि जाति है, मिली दूध ज्यौं पानी।
सूरदास प्रभु अंतरजामी उर अंतर की जानी॥ ३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! ) अब तो ( यह बात ) प्रकट हो गयी और सारे संसारने जान ली, उस मोहनके साथ मेरा निरन्तर ( अखण्ड ) प्रेम अब कैसे छिपा रह सकता है ! क्या करूँ ! वह ( श्यामसुन्दरकी ) सुन्दर मूर्ति इन नेत्रोंमें समा गयी है, ( मैं ) बहुत प्रयत्न करके थक गयी; पर ( वह ) निकलती ( ही ) नहीं, रोम-रोममें उलझ गयी है। अब ( भला, वह ) कैसे पृथक् की जा सकती है; ( जब कि ) वह दूधमें पानीके समान मिल गयी है। स्वामी ( श्रीकृष्ण ) अन्तर्यामी हैं, उन्होंने मेरे हृदयका भीतरी भाव जान लिया है।

[ ४८ ]

कहा करैगौ कोऊ मेरौ।
हौं अपने पतिव्रतहिं न टरिहौं, जग उपहास करौ बहुतेरौ॥

कोउ किन लै पाछैं मुख मोरै, कोउ कहि स्रवन सुनाइ न टेरौ।
हौं मति कुसल नाहिंनौ काँची, हरि सँग छाँड़ि फिरौं भव फेरौ॥
अब तौ जियँ ऐसी बनि आई, स्याम धाम मैं करौं बसेरौ।
तिहिं रँग सूर रँग्यौ मिलि कैं मन, होइ न सेत अरुन फिरि पेरौ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है--( सखी ! ) कोई मेरा क्या करेगा, ( चाहे ) संसार ( मेरी ) बहुत अधिक हँसी ( क्यों न ) उड़ावे; ( किंतु ) मैं अपने पातिव्रतसे हटूँगी नहीं। कोई भले ( मुझे देखकर ) मुख पीछे घुमा ले, कोई भले मुझे सुनाकर पुकारे नहीं ( मुझसे बात न करे, किंतु ) मैं चतुर बुद्धि ( की ) हूँ, कच्ची ( मूर्ख ) नहीं कि श्रीहरिको छोड़कर संसारमें घूमती फिरूँ। अब तो चित्तमें यह निश्चय हो गया है कि श्यामसुन्दरके धाम ( नन्दालय ) में ही निवास करूँ; ( क्योंकि ) ( मेरा ) मन ( उन श्यामसुन्दरसे ) मिलकर ( उनके ही श्याम ) रंगमें रँग गया है, ( अब वह ) ( ऊखकी तरह ) पेरे ( कष्ट दिये ) जानेपर भी फिरसे श्वेत अथवा लाल ( सत्त्व-रजरूप ) होनेका नहीं।

राग धनाश्री

[ ४९ ]

सखि, मोहि हरि दरस रस प्याइ।
हौं रँगी अब स्याम मूरति, लाख लोग रिसाइ॥ १॥
स्यामसुंदर मदन मोहन, रँग रूप सुभाइ।
सूर स्वामी प्रीति कारन सीस रहौ किं जाइ॥ २॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! ) मुझे हरिके दर्शनका रस पिला ( उनका दर्शन कराके आनन्दित कर ) ! मैं ( तो ) अब उस श्यामसुन्दर-स्वरूपके प्रेममें रँग गयी ( निमग्न हो गयी ) हूँ, लोग कितने ( ही ) रुष्ट क्यों न हों। कामदेवको भी मोहित करनेवाले श्यामसुन्दरका ही रूप और रंग ही ( मुझे ) अच्छा लगता है। ( अतः ) स्वामीके प्रेमके लिये भले मेरा मस्तक रहे या चला जाय ( उनके प्रेममें मुझे जीवनकी चिन्ता नहीं )।

[ ५० ]

( माई री ) गोबिंद सौं प्रीति करत तबहिं क्यौं न हटकी।
यह तौ अब बात फैलि, भई बीज बट की ॥ १ ॥
घर घर नित यहै घैर, बानी घट घट की।
मैं तौ यह सबै सही, लोक लाज पटकी ॥ २ ॥
मद के हस्ती समान फिरति प्रेम लटकी।
खेलत मैं चूकि जाति, होति कला नट की ॥ ३ ॥
जल रजु मिलि गाँठि परी रसना हरि रट की।
छोरे तैं नाहिं छुटति, कैक बार झटकी ॥ ४ ॥
मेटैं क्यौंहूँ न मिटति, छाप परी टटकी।
सूरदास प्रभु की छबि हृदै माँझ अटकी ॥ ५ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! ) ( जब मैं ) गोविन्दसे प्रीति करने लगी, तभी ( तूने ) मुझे क्यों नहीं मना किया ? यह बात तो अब बीजसे बढ़कर वटवृक्षके समान ( सुदृढ़ ) हो गयी है । घर-घर नित्य यही आलोचना ( निन्दा ) होती है, प्रत्येक व्यक्ति यही बात कहता है; ( किंतु ) मैंने तो यह सब लोककी लज्जाको दूर बहाकर सहा है । ( मैं ) मतवाले गजराजके समान प्रेममें घूमती हूँ, ( यदि ) खेलमें चूक जाय तो मतवाली हुई नटकी कला ही क्या । ( जैसे ) रस्सीमें पड़ी गाँठ जलसे भींगकर और दृढ़ हो जाती है, उसी प्रकार मेरी जीभको हरि-नाम रटनेका दृढ अभ्यास पड़ गया है । अनेकों बार झटका दिया, ( इसकी बान छुड़ानेकी चेष्टा की ), किंतु ( वह नाम-रटकी गाँठ ) खोलनेसे खुलती नहीं। स्वामीकी शोभा हृदयमें आकर अटक गयी है, और( उसकी ऐसी ) ताजी ( गहरी ) छाप पड़ी है कि मिटानेसे किसी प्रकार मिटती ही नहीं ।

राग आसावरी

[ ५१ ]

मैं अपनौ मन हरि सौं जोर्‌यौ।
हरि सौं जोरि सबनि सौं तोर्‌यौ ॥ १ ॥

नाच्न कछ्यौ तब घूँघट छोरयौ ।
लोक लाज सब फटकि पछोरयौ ॥ २ ॥
आगैं पाछैं नीकैं हेरयौ ।
माँझ बाट मटका सिर फोरयौ ॥ ३ ॥
कहि कहि कासौं करति निहोरयौ ।
कहा भयौ काहू मुख मोरयौ ॥ ४ ॥
सूरदास प्रभु सौं चित जोरयौ ।
लोक वेद तिनुका ज्यौं तोरयौ ॥ ५ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी! ) मैंने अपना मन श्रीहरिमें फँसाया है और उन हरिसे प्रेम करके (और) सबसे प्रीति तोड़ दी है। ( जब ) नाचनेका साज सजा लिया, तब घूँघट खोल दिया ( अर्थात् श्यामसे प्रेम करनेकी ठान ली, तब लज्जा कैसी ) और लोककी लज्जाको तो अलग करके ( उसी तरह ) फेंक दिया, जैसे अनाजकी भूसी सूपसे फटककर हवामें उड़ा दी जाती है । आगे-पीछे भली प्रकार देख लिया ( परिणामको खूब सोच-समझ लिया ), इसीसे बीच रास्तेमें सिरकी मटकी फोड़ दी ( मायाका भार फेंक दिया )। अब तू बार-बार किससे अनुरोध करती है, किसीने मुख फेर लिया (मेरी उपेक्षा कर दी ) तो हो क्या गया। (मैंने तो) स्वामी (श्रीकृष्ण) में चित्त लगाकर लोक तथा वेदका (मर्यादा-) बन्धन तिनकेके समान तोड़ डाला है ।

[ ५२ ]

मेरौ माई माधौ सौं मन मान्यौ ।
नीकैं करि चित कमल नैन सौं घालि एकठाँ सान्यौ ॥ १ ॥
लोक लाज उपहास न मान्यौ, न्यौति आपनेहिं आन्यौं ।
या गोविंदचंद के कारन बैर सबन सौं ठान्यौ ॥ २ ॥
अब क्यौं जात निबेरि सखी री, मिल्यौ एक पै पान्यौं ।
सूरदास प्रभु. मेरे जीवन पहलौ ही पहिचान्यौ ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी ! मेरा मन श्यामसुन्दरमें अनुरक्त हो गया है, उन कमललोचनके साथ चित्तको भली प्रकार जोड़कर मैंने सर्वथा एकाकार कर दिया है । लोककी लज्जा और हँसीकी मैंने परवा नहीं की; (क्योंकि) इन्हें तो (मैंने) स्वयं (स्वेच्छासे) निमन्त्रण देकर बुलायी है (ये प्राप्त हों, ऐसा कार्य जान-बूझकर किया है) और इन श्रीगोविन्द (रूप) चन्द्रमाके लिये (मैंने) सबसे शत्रुता कर ली । अरी सखी ! भला, अब (उनसे चित्त) कैसे पृथक् किया जा सकता है, (जो) दूधमें पानीकी भाँति मिल गया है । यद्यपि यह मेरी उनसे पहली ही पहचान है, फिर भी स्वामी (श्रीकृष्ण) ही मेरे जीवन हैं ।

[ ५३ ]

नंदलाल सौं मेरौ मन मान्यौ, कहा करैगौ कोय ।
मैं तौ चरन कमल लपटानी जो भावै सो होय ॥ १ ॥
गृह पति मात पिता मोहि त्रासत, हँसत बटाऊ लोग ।
अब तौ जिय ऐसी बनि आई, बिधनाँ रच्यौ सँजोग ॥ २ ॥
जो मेरौ यह लोक जायगौ, औ परलोक नसाइ ।
नंदनँदन कौं तौउ न छाँड़ौं, मिलूँ निसान बजाइ ॥ ३ ॥
यह तन धरि बहुर्यौ नहिं पैयै बल्लभ वेष मुरारि ।
सूरदास स्वामी के ऊपर सरबस डारौं वारि ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—(सखी !) मेरा मन श्रीनन्दलालमें अनुरक्त हो गया है, (अब मेरा) कोई क्या कर लेगा । मैं तो उनके चरणकमलोंमें लिपट गयी हूँ, (अब) जो विधाताको अच्छा लगे, वह हो । घरमें पति और माँ-बाप मुझे डाँटते हैं, यहाँतक कि रास्ते चलते लोग भी मेरी हँसी उड़ाते हैं; (किंतु) अब तो मनमें यही ठान लिया है (क्या करूँ) ब्रह्माने ही यह संयोग रच दिया है । चाहे मेरा यह लोक बिगड़ जाय और परलोक भी नष्ट हो जाय, फिर भी मैं नन्दकुमारको

छोड़ूँगी नहीं, उनसे निशान बजाकर ( डंकेकी चोट ) मिलूँगी। इस शरीरसे प्रियतमरूपमें श्रीकृष्ण तो फिर मिलनेसे रहे। मैं स्वामीके ऊपर अपना सब कुछ निछावर कर दूँगी।

राग सारंग

[ ५४ ]

करन दै लोगन कौं उपहास।
मन क्रम वचन नंदनंदन कौ नैक न छाड़ौ पास ॥ १ ॥
या ब्रज के सब लोग चिकनियाँ, मेरे भाएँ घास।
अब तौ यहै बसी री माई, नहिं मानौं गुरु त्रास ॥ २ ॥
कैसैं रह्यौं परै री सजनी, एक गाँव कौ बास।
स्याम मिलन की प्रीति सखी री, जानत सूरजदास ॥ ३ ॥

( कोई गोपी कह रही है—सखी! ) लोगोंको हँसी करने दे, मैं तो श्रीनन्दनन्दनका सामीप्य मन, वचन और कर्मसे तनिक भी नहीं छोड़ूँगी। इस ब्रजके सभी छैल-छबीले ( बनावटी शौकीन ) लोग मेरे लिये तिनकेके समान ( तुच्छ ) हैं; अब तो यही ( मोहनके प्रेमकी ) बात (मनमें ) बस गयी है। सखी! ( अब इस विषयमें मैं ) गुरुजनोंका भय नहीं मानूँगी। अरी सखी! जब एक गाँवमें ( श्यामके साथ ) निवास ठहरा, तब ( उनसे बिना मिले ) कैसे रहा जा सकता है? सखी! श्यामसुन्दरके मिलनेका प्रेम ( प्रबल इच्छा ) सूरदास ( ही ) जानता है।

राग रामकली

[ ५५ ]

एक गाउँ को बास धीरज कैसैं कै धरौं।
लोचन मधुप अटक नहिं मानत, जद्यपि जतन करौं ॥ १ ॥
वे इहिं मग नित प्रति आवत हैं, हौं दधि लै निकरौं।
पुलकित रोम रोम गदगद सुर, आनँद उमँग भरौं ॥ २ ॥

पल अंतर चलि जात कलप भर, बिरहा अनल जरौं ।
सूर सकुच कुल कानि कहाँ लगि, आरज पथै डरौं ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! ) ( श्यामके साथ ) एक ही गाँवमें निवास है, फिर (मैं उनसे विना मिले) कैसे धैर्य धारण करूँ ? यद्यपि मैं ( बहुत ) प्रयत्न करती हूँ, फिर भी ये मेरे नेत्ररूपी भौंरे कोई रुकावट मानते ही नहीं । वे नित्यप्रति ( प्रतिदिन ) इसी रास्तेसे आते हैं और मैं दही लेकर ( बेचने भी इसी राहसे ) निकलती हूँ, ( उस समय ) मेरा प्रत्येक रोम ( उन्हें देखकर ) पुलकित और स्वर गद्गद हो जाता है तथा आनन्दकी उमंगसे ( मैं ) भर जाती हूँ । ( यदि उनसे मिलनेमें ) एक पलका ( भी ) अन्तर पड़ जाता है तो वह एक महाकल्पके समान जान पड़ता है, जिससे मैं वियोगकी अग्निमें जलने लगती हूँ । ( फिर कहिये ) कुलकी मर्यादाके संकोच और आर्य-पथ ( श्रेष्ठ शास्त्रीय नियमों ) के भयसे ( मैं ) कहाँतक डरा करूँ ?

राग धनाश्री

[ ५६ ]

हरि देखे बिनु कल न परै ।
जा दिन तैं वे दृष्टि परे हैं, क्यौंहूँ चित उन तैं न टरै ॥ १ ॥
नव कुमार मनमोहन ललना प्रान जिवन धन क्यौं बिसरै ।
सूर गुपाल सनेह न छाँड़ै, देह सुरति सखि कौन करै ॥ २ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! ) श्रीहरिको देखे बिना चैन नहीं पड़ता; जिस दिनसे वे दीखे हैं, ( तबसे ) किसी प्रकार चित्त उनसे हटता ही नहीं । भला, गोपियोंके प्राणस्वरूप, जीवन-धन, नवीन कुमार मनमोहन कैसे भूल सकते हैं । सखी ! ( उन ) गोपालका प्रेम छोड़ता नहीं ( अपनेमें निमग्न रखता है ), फिर शरीरका स्मरण कौन करे ।

राग रामकली

[ ५७ ]

मेरौ मन हरि चितवनि अरुझानौ ।
फेरत कमल द्वार ह्वै निकसे, करत सिंगार भुलानौ ॥ १ ॥
अरुन अधर, दसननि दुति राजति, मो तन मुरि मुसुकानौ ।
उदधि सुता सुत पाँति कमल मैं, बंदन भुरके मानौ ॥ २ ॥
इहिं रस मगन रहति निसि बासर, हार जीत नहिं जानौ ।
सूरदास चित भंग होत क्यौं, जो जेहिं रूप समानौ ॥ ३ ॥

( एक गोपी कह रही है—सखी ! ) मेरा मन हरिकी चितवन ( देखनेकी भंगी ) में उलझ गया है। ( वे ) कमल घुमाते हुए मेरे द्वारसे होकर निकले; ( मैं ) शृङ्गार कर रही थीं, सो शृङ्गार मुझे भूल गया। ( उनके ) लाल-लाल ओठोंपर दाँतोंकी कान्ति शोभा दे रही थी। वे मेरी ओर मुड़कर मुस्करा उठे, ( वह मुस्कराना मुझे ऐसा लगा ) मानो कमलमें सिन्दूर छिड़ककर मोतियोंकी पंक्ति ( लड़ी ) रखी हो। ( बस मैं तभीसे ) इसी आनन्दमें रात-दिन मग्न रहती हूँ; ( इसमें मेरी ) पराजय है या विजय—यह नहीं जानती। सूरदासजी कहते हैं कि जो जिस रूपमें निमग्न हो गया है, उसका वहाँसे चित्त-भङ्ग ( प्रेम-पार्थक्य ) कैसे हो सकता है।

[ ५८ ]

हौं सँग साँवरे के जैहौं ।
होनी होइ होइ सो अबहीं,
जस अपजस काहूँ न डरैहौं ॥ १ ॥
कहा रिसाइ करै कोउ मेरौ,
कछु जो कहै, प्रान तेहि दैहौं ।
देहौ त्यागि राखिहौं यह ब्रत,
हरि रति बीज बहुरि कब बैहौं ॥ २ ॥

का यह सूर अचिर अवनी तनु,
तजि अकास पिय भवन समैहौं ।
का यह ब्रज वापी क्रीड़ा जल,
भजि नँदनंद सबै सुख लैहौं ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—(सखी!) मैं (तो) श्यामसुन्दरके साथ जाऊँगी; जो कुछ होनेवाला हो वह अभी हो ले, (मैं) यश-अपयश—किसीसे नहीं डरूँगी। कोई रुष्ट होकर मेरा क्या कर लेगा? और (यदि) कोई (मुझसे इस सम्बन्धमें) कुछ कहेगा तो मैं उसे (अपने) प्राण दे दूँगी। शरीर त्यागकर भी व्रतका पालन करूँगी। भला, श्रीकृष्ण-प्रेमका बीज फिर (जीवनमें) कब बोऊँगी? यह थोड़ी देर रहनेवाली (नाशवान्) पृथ्वी क्या महत्त्व रखती है, ('मैं तो) शरीर त्यागकर प्रियतमके धाम (नन्दालय) के आकाशमें समा जाऊँगी। बावड़ीके (स्वल्प) जलमें क्रीड़ा करनेके समान यह व्रज (संसारका सुख) किस (गणना) में है। मैं (तो) श्रीनन्दनन्दनसे प्रेम करके समस्त सुख (पूर्ण आनन्द) प्राप्त करूँगी।

राग धनाश्री

[ ५९ ]

तैं मेरैं हित कहति सही।
यह मोकौं सुधि भली दिवाई,
तनु बिसरैं मैं बहुत बही ॥ १ ॥
जब 'तैं दान लियौ हरि हम सौं,
हँसि हँसि कै कछु बात कही।
काकौ घर, काके पितु माता,
काके तन की सुरति रही ॥ २ ॥
अब समझति कछु तेरी बानी,
आई हौं लै दही मही।
सुनौ सूर प्रातै तैं आई,
यह कहि कहि जिय लाज गही ॥ ३ ॥

( एक गोपी कह रही है—सखी ! ) यह ठीक है कि तुम मेरे भलेके लिये कहती हो, यह ( तुमने ) मुझे अच्छा स्मरण दिलाया, शरीरका स्मरण भूलकर मैं बहुत भटकी । जबसे श्यामसुन्दरने मुझसे दधिका दान लिया और हँस-हँसकर कुछ बातें कीं, तबसे किसका घर, किसके पिता-माता और किसे अपने शरीरका स्मरण रहा ? अब तुम्हारी बात कुछ समझ रही हूँ कि ( मैं ) दही और मही ( मट्ठा ) लेकर ( बेचने ) आयी हूँ । सूरदासजी कहते हैं कि वह गोपी बार-बार यह कहकर कि ( 'सुनो, मैं ) सबेरेकी आयी हुई हूँ' ( अपने ) चित्तमें लज्जित हो गयी ।

[ ६० ]

सुन री सखी, बात एक मेरी ।
तोसौं धरौं दुराइ, कहौं केहि,
तू जानै सब चित की मेरी ॥ १ ॥
मैं गोरस लै जाति अकेली,
काल्हि कान्ह बहियाँ गहि मेरी ।
हार सहित अँचरा गहि गाढ़ें,
इक कर गही मटुकिया मेरी ॥ २ ॥
तब मैं कह्यौ खीझि हरि छाड़ौ,
टूटैगी मोतिन लर मेरी ।
सूर स्याम ऐसें मोहि रिझयौ,
कहा कहति तू मोसौं मेरी ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी ! मेरी एक बात सुन । यदि तुझसे यह छिपाकर रखूँ तो ( फिर ) कहूँ किससे; तू मेरे मनकी सारी बात जानती है । मैं कल गोरस लेकर अकेली जा रही थी कि कन्हैयानें ( अचानक आकर ) मेरी बाँह पकड़ ली; ( उन्होंने एक हाथसे ) हारके साथ मेरा अञ्चल दृढ़तासे पकड़ा और एक हाथसे मेरी मटकी

पकड़ी । तब मैंने खीझकर कहा—'श्यामसुन्दर ! छोड़ दो, मेरी मोतियोंकी लड़ी ( माला ) टूट जायगी ।' श्यामसुन्दरने मुझे इस प्रकार मोहित कर लिया, ( अब ) तू मुझसे मेरी ( दशा ) क्या कहती है।

राग रामकली

[ ६१ ]

यह कहि मौन साध्यौ ग्वारि।
स्याम रस घट पूरि उछलत, बहुरि धर्‌यौ सम्हारि ॥ १ ॥
वैसेहीं ढँग बहुरि आई देह-दसा बिसारि।
लेहु री कोउ नंदनंदन, कहै पुकारि पुकारि ॥ २ ॥
सखी सौं तब कहति तू री, को कहाँ की नारि।
नंद के गृह जाउँ कित ह्वै, जहाँ हैं बनवारि ॥ ३ ॥
देखि ताकौं चकित भई सखि, बिकल भ्रम गई मारि।
सूर स्यामै कहि सुनाऊँ गए सिर का डारि ॥ ४ ॥

( सूरदासजीके शब्दोंमें ) ये ( ऊपरके पदमें कही गयी ) बातें कहकर गोपीने मौन धारण कर लिया ( वह चुप हो रही ) । श्यामसुन्दरका प्रेम ( जो ) हृदयरूपी घटमें पूर्ण होकर छलक पड़ा था ( मुखसे प्रकट हो रहा था ), उसे उसने एक बार ( तो ) सम्हालकर ( चेष्टापूर्वक ) रोका; फिर शरीरकी दशा भूलकर ( वह ) वैसे ही ( पहिलेके समान ) ढंगपर आ गयी और पुकार-पुकारकर कहने लगी—'कोई नन्दनन्दन लो ! नन्दनन्दन लो !' उस सखीसे ( जो उपदेश दे रही थी, अपरिचितकी भाँति ) तब कहने लगी—'अरी ! तू कौन है ? कहाँ ( किस ग्राम ) की स्त्री है ? जहाँ श्रीवनमाली हैं, उस नन्दभवनको मैं किधर होकर जाऊँ ?' उसको देखकर सखी चकित हो गयी ( और सोचने लगी ) कि 'यह भ्रमसे अभिभूत होकर व्याकुल हो गयी है, श्यामसुन्दरको ( जाकर इसकी दशा ) कह सुनाऊँ; ( न जाने ) इसपर क्या जादू डाल गये ।'

राग नट

[ ६२ ]

सखी वह गई हरि पैं धाइ।
तुरतहीं हरि मिले ताकौं, प्रगट कही सुनाइ ॥ १ ॥
नारि इक अति परम सुंदरि, बरनि कापैं जाइ।
पानि तैं सिर धरैं मटकी, नंद गृह भरमाइ ॥ २ ॥
लेहु लेहु गुपाल कोऊ, दह्यौ गई भुलाइ।
सूर प्रभु कहुँ मिलैं ताकौं, कहति करि चतुराइ ॥ ३ ॥

सूरदासजी कहते हैं—वह सखी दौड़ी हुई श्रीहरिके पास गयी। श्यामसुन्दर उसे तुरंत मिल गये; उन्हें सुनाकर वह प्रत्यक्ष बोली—'एक परम सुन्दर स्त्री है, उसका ( उसके रूपका ) वर्णन किससे हो सकता है। वह हाथसे मस्तकपर मटकी पकड़े नन्दभवनके आसपास ही घूम रही है। दहीका नाम भूलकर ( वह ) 'कोई गोपाल लो ! गोपाल लो !' कहती है। स्वामी ( श्रीकृष्ण ) कहीं उसे मिल सकते हैं !' यह बात चतुरतापूर्वक ( उनसे ) कहने लगी।

राग बिलावल

[ ६३ ]

सिर मटकी, मुख मौन गही।
भ्रमि भ्रमि बिवस भई नव ग्वारिन,
नवल कान्ह कैं रस उमही ॥ १ ॥
तन की सुधि आवति जब मनहीं,
तबहिं कहति कोउ लेहु दही।
द्वारैं आइ नंद कैं बोलति,
कान्ह लेहु किन्ह सरस मही ॥ २ ॥
इत उत फिरि आवति याही मग,
महरि तहाँ लगि द्वार रही।

और बुलावति ताहि न हेरति,
बोलति आनि नंद दरहीं ॥ ३ ॥
अंग अंग जसुमति तेहि चरची,
कहा करति यह ग्वारि वही।
सुनौ सूर यह ग्वारि दिवानी,
कब की याहीं ढंग रही ॥ ४ ॥

(गोपीने) मस्तकपर मटुकी रखे (गोरस बेचने जाते) हुए (भी) मुखसे चुप्पी साध ली है। वह युवती गोपी नित्य नूतन कन्हैयाके प्रेममें उमगी हुई (घर-घर) घूमती-घूमती व्याकुल (हो तन्मय) हो गयी। जब उसके मनमें अपने शरीरका स्मरण हो आता है, तभी वह कहती है—'कोई दही लो!' और नन्दरायके द्वारपर आकर पुकारती है—'कन्हैया! अत्यन्त सरस मट्ठा है, लेते क्यों नहीं!' इधर-उधर घूम-फिरकर उसी मार्गसे लौट आती है, जहाँ श्रीव्रजरानी (यशोदाजी) द्वारसे लगी खड़ी थीं। (जब) कोई दूसरी स्त्री (उसे) बुलाती (पुकारती) है तो उसकी ओर देखती (भी) नहीं, नन्दभवनके द्वारपर ही आकर पुकारती है। यशोदाजीने उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गसे (प्रेमका) अनुमान करके कहा—'अरी गोपी! यह बहकी बातें क्या करती है?' सूरदासजी कहते हैं—'सुनो! यह पगली गोपी कभीसे यही ढंग अपनाये हुए है।'

राग रामकली

[ ६४ ]

कब की मह्यौ लिएँ सिर डोलै।
झूँठई इत उत फिरि आवत, इहाँ आय यह बोलै ॥ १ ॥
मुँह लौं भरी मथनियाँ तेरी, तोहि रटत भइ साँझ।
जानति हौं गोरस को लेवा, याही वाखरि माँझ ॥ २ ॥
इत तौ आय बात सुनि मेरी, कहैं विलग जिन मानै।
तेरे घर मैं तुही सयानी, और बेचि नहिं जानै ॥ ३ ॥
भ्रमतहिं भ्रमत भरमि गइ ग्वारिनि, विकल भई बेहाल।
सूरदास प्रभु अंतरजामी आइ मिले गोपाल ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! ) तू कबसे सर-पर मट्ठा लिये घूम रही है ? झूठ-मूठ ही इधर-उधर घूम आती है और फिर यहीं आकर पुकारती है । तेरी मटकी ( तो ) मुखतक भरी है और तुझे पुकारते-पुकारते संध्या हो गयी ! ( मैं ) समझ गयी हूँ कि तेरे गोरसका लेनेवाला ( ग्राहक ) इसी भवनमें रहता है ? यहाँ आ, मेरी बात तो सुन; ( मेरे ) कहनेका बुरा मत मानना । (क्या) तेरे घरमें केवल तू ही चतुर है, दूसरी कोई ( दही ) बेचना नहीं जानती । ( अतः ) घूमते-घूमते ( उस ) गोपी ( को ) भ्रममें पड़कर व्याकुल एवं खिन्न हुई ( जानकर ) अन्तर्यामी ( हृदयकी जाननेवाले ) स्वामी श्रीगोपाल ( शीघ्र ) आकर ( इसे ) मिल गये ।

[ ६५ ]

भई मन माधौ की अवसेर ।
मौन धरें मुख चितवति ठाढ़ी, ज्वाब न आवै फेर ॥ १ ॥
तब अकुलाइ चली उठि वन कौं, बोलें सुनति न टेर ।
विरह विवस चहुँधा भरमति है, स्याम कहा कियौ झेर ॥ २ ॥
आवौ बेगि मिलौ नँदनंदन, दान न करौ निबेर ।
सूर स्याम अंकम भरि लीन्ही, दूरि कियौ दुख ढेर ॥ ३ ॥

( गोपीके ) मनमें माधवसे मिलनेकी उत्कण्ठा ( उत्पन्न ) हो गयी है । ( वह ) मौन होकर (उपदेश देनेवालीका ) मुख देखती हुई खड़ी है । जब उससे बदलेमें (कोई ) उत्तर देते नहीं बना, तब वह व्याकुल हो उठकर वनकी ओर चल पड़ी । जोरसे पुकारनेपर भी ( वह ) सुनती नहीं, वियोगसे व्याकुल होकर चारों ओर भटकती ( और कहती ) है—'श्यामसुन्दर ! ( तुमने ) क्या बखेड़ा लगा दिया ? नन्दनन्दन ! शीघ्र आकर मिलो और अपने दानका निबटारा कर लो न ।' सूरदासजी कहते हैं कि ( यह सुनते ही ) श्यामसुन्दरने ( आकर उसे ) अङ्कमें भर लिया और उसकी दुःख-राशिको दूर कर दिया ।

राग जैतश्री

[ ६६ ]

व्रज बसि काके बोल सहौं।
तुम्ह बिन स्याम और नहिं जानौं, सकुचि न तुम्हे कहौं ॥ १ ॥
कुल की कानि कहा लै करिहौं, तुम कौं कहाँ लहौं।
धिक माता, धिक पिता बिमुख तुव, भावै तहाँ बहौं ॥ २ ॥
कोउ कछु करै, कहै कछु कोऊ, हरष न सोक गहौं।
सूर स्याम तुम्ह कौं बिन देखें तन मन जीव दहौं ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी! ) व्रजमें निवास करके ( मैं ) किस-किसके व्यङ्ग सहन करूँ। श्यामसुन्दर! तुम्हें छोड़कर मैं और किसीको नहीं जानती, एवं संकोचके कारण तुमसे कुछ कहती नहीं। कुलकी मर्यादा लेकर मैं क्या करूँगी, ( उसे रखते हुए ) फिर तुमको कहाँ पाऊँगी। उस माताको धिक्कार, उस पिताको धिक्कार, जो तुमसे विमुख है, ( उनको ) जहाँ अच्छा लगे, उधर प्रवृत्त हों! कोई कुछ करे और कोई कुछ कहे, मैं ( उससे ) न हर्षित होती हूँ न दुःखित। श्यामसुन्दर! तुम्हें देखे बिना मेरे शरीर, मन एवं प्राण जलने लगते हैं।

[ ६७ ]

व्रजहिं बसें आपुहि बिसरायौ।
प्रकृति पुरुष एकै करि जानौ, बातन भेद करायौ ॥ १ ॥
जल थल जहाँ रहौ तुम्ह बिन नहिं, बेद उपनिषद गायौ।
द्वै तन जीव एक हम दोऊ, सुख कारन उपजायौ ॥ २ ॥
ब्रह्म रूप द्वितिया नहिं कोऊ, तव मन तिया जनायौ।
सूर स्याम मुख देखि अलप हँसि, आनँद पुंज बढ़ायौ ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधिकाजी कहती हैं—( श्यामसुन्दर! ) व्रजमें रहते हुए ( मैंने अपने ) स्वयं ( अहंता ) को भुला दिया है। ( वास्तवमें तो ) यों जानना ( समझना ) चाहिये कि प्रकृति-पुरुष ( -रूप हम-तुम ) दोनों

एक ही हैं ( केवल ) शब्दोंने ( प्रकृति-पुरुषरूप हमारा-तुम्हारा ) भेद कराया है। ( मैं ) जलमें अथवा स्थलपर—जहाँ भी रहूँ ( वहाँ ) आपके बिना नहीं ( रह सकती—यही ) वेद और उपनिषदोंने गाया है; ( क्योंकि ) हम-तुम दोनों दो देह और एक प्राण हैं, ( जो ) एक दूसरेको सुख देनेके लिये प्रकट हुए हैं । उस समय स्त्रीरूपिणी श्रीराधाके मनमें वह ज्ञान हो गया कि सब एकमात्र ब्रह्म ही है, ( उनसे भिन्न ) दूसरा कोई नहीं है । ( तब ) श्यामसुन्दरने ( यह सब सुनकर प्रियाके ) मुखको निरखते हुए तनिक-सा हँसकर ( उनके ) आनन्दके समूहको और बढ़ा दिया।

राग रामकली

[ ६८ ]

तब नागरि मन हरष भई।
नेह पुरातन जानि स्याम कौ अति आनंदमई ॥ १ ॥
प्रकृति पुरुष, नारी मैं वे पति, काहें भूलि गई।
को माता, को पिता, बंधु को, यह तौ भेंट नई ॥ २ ॥
जनम जनम जुग जुग यह लीला, प्यारी जानि लई।
सूरदास प्रभु की यह महिमा, यातैं बिबस भई ॥ ३ ॥

तब सुचतुरा ( श्रीराधा ) मनमें प्रसन्न हो गयीं। श्यामसुन्दरका ( अपने ऊपर ) सनातन ( शाश्वत ) प्रेम समझकर ( वे ) अत्यन्त आनन्दमें लीन हो गयीं और सोचने लगीं कि 'मैं प्रकृति हूँ, वे पुरुष हैं; मैं स्त्री हूँ, वे मेरे ( नित्य ) पति हैं—यह बात मैं क्योंकर भूल गयी थी ? ( मेरी ) माता कौन, पिता कौन और ( मेरे ) भाई ( भी ) कौन ? यह तो ( केवल इस अवतारकी इन लोगोंसे ) नवीन भेंट ( जान-पहचान ) है। ( श्यामसुन्दरसे यह मिलन तो ) युग-युग और जन्म-जन्मकी लीला

है।' सूरदासजी कहते हैं—( इस प्रकार ) प्रियतमा श्रीराधाने जान लिया कि यह मेरे स्वामीकी महिमा है, इसलिये ( कुछ कहनेमें ) वे विवश हो गयीं।

राग सूही

[ ६९ ]

सुनौ स्याम ! मेरी बिनती।
तुम हरता, तुम करता प्रभु जू, मातु पिता कौनें गिनती ॥ १ ॥
गय बर मेटि चढ़ावत रासभ, प्रभुता मेटि करत हिनती।
अब लौं करी लोक मरजादा, मानौ थोरेहिं दिनती ॥ २ ॥
बहुरि बहुरि ब्रज जनम लेत हौ, यह लीला जानी किन ती।
सूर स्याम चरननि तैं मोकौं राखत रहे, कहा भिनती ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा बोलीं—श्यामसुन्दर! मेरी ( एक ) प्रार्थना सुनो! तुम्हीं विश्वके प्रलयकर्ता एवं निर्माता हो, स्वामी! ( तुम्हारे सम्मुख ) माता-पिताकी, क्या गणना है। ( ये लोग तो ) श्रेष्ठ गजराजको हटाकर गधेपर चढ़ाते हैं ( और इस प्रकार ) प्रभुत्व मिटाकर तुच्छता करते हैं ( अर्थात् लौकिक सम्बन्धको महत्त्व देते हैं )। अबतक मैंने लोक-मर्यादाका पालन किया; ( किंतु ) मान लो कि यह थोड़े ही दिनोंके लिये थी। यह तुम्हारी लीला किसने समझी थी कि तुम बार-बार ( प्रत्येक कल्पमें ) व्रजमें ही जन्म ( अवतार ) लेते हो। श्यामसुन्दर! ( सदासे तुम ) मुझे अपने चरणोंमें रखते आये हो, ( अतः तुममें और मुझमें ) भिन्नता ( पार्थक्य ) कहाँ है?

राग धनाश्री

[ ७० ]

देह धरे कौ कारन सोई।
लोक लाज कुल कानि न तजियै, जातैं भलौ कहै सब कोई ॥ १ ॥

मात पिता के डर कौं मानै, मानै सजन कुटुँब सब सोई ।
तात मात मोह्‌ कौं भावत, तन धरि कैं माया बस होई ॥ २ ॥
सुनि वृषभानुसुता ! मेरी बानी, प्रीति पुरातन राखै गोई ।
सूर स्याम नागरिहि सुनावत, मैं तुम्ह एक नाहिं हैं दोई ॥ ३ ॥

( श्यामसुन्दर बोले—श्रीराधे ! ) हमलोगोंने शरीर-धारण इसीलिये किया है ( अवतार इसीलिये लिया है ) कि लोककी लज्जा तथा कुलकी मर्यादा न छोड़ी जाय; जिससे सब लोग भला कहें (बड़ाई करें) । जो माता-पिताका भय मानता है, उसे कुटुम्बके सब लोग सज्जन मानते हैं। पिता-माता मुझे भी प्रिय लगते हैं, शरीर धारण करनेपर माया ( सांसारिक सम्बन्ध ) के वश होना ( ही ) पड़ता है । श्रीवृषभानुनन्दिनी ! मेरी बात सुनो; पुरातन ( मेरे प्रति अपने नित्य ) प्रेमको छिपाये रहो । सूरदासजी कहते हैं कि श्यामसुन्दर नागरी श्रीराधाको कह रहे हैं—हम और तुम ( वस्तुतः ) एक ही हैं, दो हैं ही नहीं ।

राग सारंग

[ ७१ ]

अब कैसैं दूजे हाथ बिकाउँ ।
मन मधुकर कीन्हौ वा दिन तैं चरन कमल निज ठाउँ ॥ १ ॥
जौ जानौं औरै कोउ करता, तऊ न मन पँछताउँ ।
जो जाकौ सोई सो जाने, नर अघ तारन नाउँ ॥ २ ॥
जौ परतीति होइ या जग की, परमिति छुटत डराउँ ।
सूरदास प्रभु सिंधु सरन तजि, नदी सरन कित जाउँ ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कह रही हैं—( श्यामसुन्दर ! ) अब दूसरेके हाथ कैसे बिकूँ ( दूसरेको स्वामी कैसे बनाऊँ ) ? उसी दिनसे ( जबसे आपके दर्शन हुए ) मेरे मनरूपी भ्रमरने आपके चरणकमलमें अपना स्थान

बना लिया है। यदि मैं यह समझूँ कि सृष्टिकर्ता कोई (आपके अतिरिक्त) और है, तो भी मनमें ( आपसे प्रेम करनेका ) पश्चात्ताप ( मैं ) नहीं करूँगी। जो जिसका ( आश्रित ) है, उसकी दशा तो वही ( आश्रयदाता ) जानता है; फिर आपका तो नाम ही मनुष्योंको पापोंसे मुक्त करनेवाला है ! यदि इस जगत् ( जगत्के भोगोंमें सुख ) का विश्वास हो तो इसकी सीमा ( सम्बन्धादि ) छूटनेका भय करूँ ( किंतु जगत्के सुखका तो मुझे विश्वास ही नहीं ) । स्वामी ! ( आपके समान ) समुद्रकी शरण छोड़कर अब नदी ( के समान अल्पशक्ति लोगों ) की शरण क्यों जाऊँ।

राग गौरी

[ ७२ ]

तुम्ह देखे, मैं नाहिं पत्यानी।
मैं जानति मेरी गति सबही,
यहै साँच अपनैं मन आनी ॥ १ ॥
जो तुम्ह अंग अंग अवलोक्यौ,
धन्य धन्य मुख अस्तुति गानी।
मैं तौ एक अंग अवलोकति,
दोऊ नैन गए भरि पानी ॥ २ ॥
कुंडल झलक कपोलन आभा,
मैं तौ इतनेहि माँझ बिकानी।
इकटक रही नैन दोउ रूँधे,
सूर स्याम कौं नहि पहिचानी ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा अन्य गोपियोंसे कह रही हैं—तुमने (मोहनको) देखा है, ( यह ) मुझे विश्वास ही नहीं होता। मैंने तो अपने मनमें यही बात सच्ची मान ली और ( यही मैं ) समझती ( भी ) हूँ कि मेरे समान ही ( तुम ) सबकी भी ( वही ) दशा है। यदि सचमुच तुमने

उनके सभी अङ्गों ( पूरे रूप ) को देखा है तो तुम धन्य हो, धन्य हो; ( अपने ) मुखसे मैं तुम्हारी स्तुति गाती हूँ। मैंने तो जैसे ही उनका एक अङ्ग देखा, वैसे ही मेरे दोनों नेत्रोंमें जल भर आया ( अनुरागाश्रु उमड़ पड़े ) । उनके कुण्डलोंकी कान्ति जो कपोलोंपर प्रतिबिम्बित हो रही थी, बस, इतना ही देखकर मैं तो बिक गयी ( उनकी दासी हो गयी )। मेरे दोनों नेत्र ( अश्रुओंसे ) रुँध गये; ( फिर भी ) एकटक देखती ( ही ) रही, ( परंतु ) श्यामसुन्दरको पहचान न सकी ।

राग नट

[ ७३ ]

अँखियाँ जानि अजान भईं।
एक अंग अवलोकत हरि कौ, और न कहूँ गईं ॥ १ ॥
यौं भूली ज्यौं चोर भरे घर, निधि नहिं जाइ लई।
फेरत पलटत भोर भयौ, कछु लई न, छाँड़ि दई ॥ २ ॥
पहलैं रति करि कैं आरति करि ताही रँग रँगई।
सूर सु कत हठि दोष लगावति, पल पल पीर नई ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कहती हैं—( सखी!) मेरे नेत्र जान-बूझकर अनजान हो गये; ( वे ) श्रीहरिका एक ही अङ्ग देखते रहे, और कहीं ( दूसरे अङ्गपर ) गये ही नहीं। ( मैं ) इस प्रकार भूली रही, जैसे चोर सम्पत्तिपूर्ण घरमें घुस जाय, किंतु कोई सम्पत्ति उससे ली न जाय, उलटते-पलटते सबेरा हो जाय, कुछ ले न सके, सब छोड़ दे। पहले तो अत्यन्त आकुल होकर मैंने ( श्यामसुन्दरसे ) प्रीति की और उनके अनुरागमें ही रँग गयी। फिर अब हठपूर्वक उन्हें क्यों दोष देती हो? ( यह अनुरागकी ) पीड़ा तो प्रत्येक पल नवीन होती ( अधिकाधिक बढ़ती ) ही है।

राग सारंग

[ ७४ ]

विधनाँ चूक परी मैं जानी।
आज गुबिंदै देखि देखि हौं यहै समझि पछितानी॥ १॥
रचि पचि सोचि सँवारि सकल अँग चतुर चतुरई ठानी।
दृष्टि न दई रोम रोमनि प्रति, इतनिहिं कला नसानी॥ २॥
कहा करौं अति सुख द्वै नैना, उमँगि चलत पल पानी।
सूर सुमेरु समाइ कहाँ लौं, बुधि बासनी पुरानी॥ ३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कह रही हैं—( सखी! ) ब्रह्मासे भूल हो गयी, यह मैं समझ गयी; आज श्रीगोविन्दको बार-बार देखकर मुझे यही समझकर पश्चात्ताप हुआ। चतुर सृष्टिकर्ताने परिश्रमपूर्वक, सोच-विचारकर ( मेरे शरीरके ) सारे अङ्गोंको बनाकर बड़ी चतुरता दिखलायी; ( किंतु उसने मेरे ) प्रत्येक रोममें देखनेकी शक्ति नहीं दी, यही ( उनकी ) कलामें त्रुटि रह गयी। क्या करूँ, ( देखनेका ) सुख ( तो ) अनन्त और नेत्र दो ही हैं; ( इतनेपर भी ) पल-पलमें इनसे उमड़कर अश्रु चल पड़ते हैं। ( श्यामको देखनेके आनन्दका ) सुमेरु ( पर्वत ) समाये कहाँ? मेरी बुद्धिका छोटा बर्तन ( तो ) पुराना ( जीर्ण, फूटा ) है।

राग धनाश्री

[ ७५ ]

द्वै लोचन तुम्हरें, द्वै मेरें।
तुम प्रति अंग बिलोकन कीन्हौ,
मैं भइ मगन एक अँग हेरें॥ १॥
अपनौ अपनौ भाग सखी री,
तुम तनमै मैं कहूँ न नेरें।
जो बुनिऐ सोई पुनि लुनिऐ,
और नाहिं त्रिभुवन भटभेरें॥ २॥

स्याम रूप अवगाह सिंधु तैं
पार होत चढ़ि डोंगन केरें।
सूरदास तैसैं ए लोचन
कृपा जहाज बिना क्यौं पैरें॥ ३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा सखियोंसे कहती हैं—दो नेत्र तुम्हारे और दो ही मेरे ( भी ) हैं; ( फिर भी ) तुमने ( मोहनके ) सभी अङ्गोंको देख लिया, किंतु मैं ( तो ) उनका एक अङ्ग देखकर ही तल्लीन हो गयी। सखी ! यह तो अपना-अपना भाग्य है; तुम सब उनमें तन्मय हो और मैं ( उनके ) कहीं समीप भी नहीं हूँ। जो बोया जाता है, वही काटनेको मिलता है। त्रिलोकीमें मूँड़ मारनेपर भी ( अपने कर्मफलको छोड़ ) और ( विपरीत ) कुछ नहीं मिलता। ( तात्पर्य यह कि तुम्हारे समान पुण्य मेरे नहीं हैं। ) श्यामसुन्दरका रूप ( -सौन्दर्य तो ) समुद्रके समान अथाह है, ( क्या उससे कोई ) छोटी नौकाओंपर चढ़कर पार हो सकता है ? वैसे ही मेरे ये नेत्र हैं, उनकी कृपारूपी जहाजके बिना वे भला पार हो कैसे सकते हैं ? ( उनके रूपका दर्शन तो उनकी कृपासे, उनकी दी हुई शक्तिसे ही होता है। )

राग आसावरी

[ ७६ ]

पावै कौन लिखे बिन भाल।
काहू कौं षट रस नहिं भावत,
कोउ भोजन कें फिरत बिहाल॥ १॥
तुम्ह देख्यौ हरि अंग माधुरी,
मैं नहिं देख्यौ कौन गुपाल।
जैसैं रंक तनक धन पावै,
ताही मैं वह होत निहाल॥ २॥

तुम्हैं मोहि इतनौ अंतर है,
धन्य धन्य व्रज की तुम्ह वाल।
सूरदास प्रभु की तुम्ह संगिनि,
तुम्हैं मिले ए दरस गुपाल ॥ ३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कहती हैं—(सखी!) ललाटमें (भाग्यमें) लिखे बिना कौन (कोई फल) पा सकता है। (यह भाग्यकी ही बात है कि) किसीको तो षट्रस भोजन भी अच्छा नहीं लगता और कोई भोजनके लिये व्याकुल घूमता है। तुमने श्रीहरिके अङ्गकी मधुरिमा देखी और मैं (यह भी) नहीं देख सकी कि गोपाल कौन-से हैं! जैसे कंगाल थोड़ी-सी सम्पत्ति पा जाय तो उसीमें वह परम संतुष्ट हो जाता है (वही दशा मेरी है)। तुममें और मुझमें इतना ही अन्तर है, व्रजकी नारियो! तुम धन्य हो, धन्य हो! तुम सब हमारे स्वामीकी सङ्गिनी हो, गोपालका यह (सर्वाङ्ग या सुन्दर) दर्शन तुम्हें प्राप्त हुआ।

राग धनाश्री

[ ७७ ]

सुनि री सखी, वचन इक मोसौं।
रोम रोम प्रति लोचन चाहति, द्वै साबित हैं तोसौं ॥ १ ॥
मैं बिधना सौं कहौं कछू नहिं, नित प्रति निमि कौं कोसौं।
एऊ जौ नीकें दोउ रहते, निरखत रहती हौंसौं ॥ २ ॥
इक इक अँग अँग छबि धरती, मैं जौ कहती तोसौं।
सूर कहा तू कहति अयानी, काम पर्‍यौ सुनि ज्यौं सौं ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कह रही हैं—'सखी! एक बात मुझसे सुन! तेरे दो नेत्र पूर्ण (बड़े-बड़े) हैं, (फिर भी तू) प्रत्येक रोममें नेत्र चाहती है। मैं तो ब्रह्मासे कुछ नहीं कहती, प्रतिदिन (पलकोंके संचालक) निमिको कोसती (भला-बुरा कहती) हूँ। यदि ये ही दो नेत्र ठीक ढंगसे रहते (अर्थात् इनकी पलकें न गिरतीं) तो (इनसे ही मोहनको) उत्साहसे (भरी)

देखती रहती । मैं तुमसे ( तब ) कहती जब कि एक-एक अङ्ग-प्रत्यङ्गकी शोभा हृदयमें धारण कर लेती । तब सखी कहती है—अरी नासमझ, सुन, तू कहती क्या है ? ( उनसे ) हृदयके द्वारा काम पड़ा है ( ऐसे-वैसे नहीं )।

राग कान्हरौ

[ ७८ ]

का काहू कौं दोष लगावैं ।
निमि सौं कहा कहति, का बिधि सौं,
का नैनन पछितावैं ॥ १ ॥
स्याम हितू कैसैं करि जानति,
औरौ निठुर कहावैं ।
छिन मैं और और अँग सोभा,
जोएँ देखि न पावैं ॥ २ ॥
जबहीं इकटक करि अवलोकति,
तबहीं वे झलकावैं ।
सूर स्याम के चरित लखै को,
ये ही बैर बढ़ावैं ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कह रही हैं—( सखी ! ) हम किसीको दोष क्यों दें । निमि और ब्रह्मासे क्या कहें और नेत्रोंके लिये ( भी हम ) क्यों पश्चात्ताप करें । श्यामसुन्दरको स्नेही कैसे समझें ? वे ( तो ) औरोंसे भी निष्ठुर कहे जाते हैं । एक क्षणमें ही उनके शरीरकी शोभा और-की-और हो जाती है ( नित्य नवीन होती रहती है ), जिसे देखनेपर भी हम देख नहीं पातीं । जभी हम एकटक होकर देखती हैं, तभी वे ( नवीन शोभा ) प्रकट कर देते हैं । श्यामसुन्दरकी लीलाओंको कौन लक्षित कर सकता ( समझ सकता ) है ? ये स्वयं ही शत्रुता बढ़ाते हैं ।

राग नट

[ ७९ ]

लहनी करम के पाछैं।
दियौ अपनौ लहै सोई, मिलै नहिं बाँछैं ॥ १ ॥
प्रगट ही हैं स्याम ठाढ़े, कौन अँग किहि रूप।
लह्यौ काहूँ, कहौ मोसौं, स्याम हैं ठग भूप ॥ २ ॥
प्रेम जाचक धनी हरि सौं, नैन पुट का लेइ।
अमृत सिंधु हिलोर पूरन, कृपा दरस न देइ ॥ ३ ॥
पाइये सोई सखी री, लिख्यौ जोई भाल।
सूर उत कछु कमी नाहीं, छबि समुद गोपाल ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कह रही हैं--( सखी ! ) फलका भोग तो कर्मके पीछे ( अपने प्रारब्धकर्मपर निर्भर ) है। जो अपना दिया ( किया ) हुआ है, वही प्राप्त होता है, अपने चाहनेसे कुछ नहीं मिलता। श्यामसुन्दर तो प्रत्यक्ष खड़े हैं; ( किंतु ) मुझे बताओ, उनका कौन-सा अङ्ग किसने किस प्रकारका पाया है ? ( वे ) श्याम तो ठगोंके राजा हैं। इन श्रीहरिरूपी धनीसे प्रेमका भिखारी भला, नेत्रोंके ( नन्हे ) पात्रमें क्या ले। वे ( तो ) हिलोरें लेते अमृतपूर्ण सागर हैं; किंतु कृपा करके दर्शन ( ही भली प्रकार ) नहीं देते। गोपाल तो सौन्दर्यके समुद्र हैं, वहाँ कुछ कमी नहीं है; ( किंतु ) सखी ! मिलता तो वही है, जो ललाटमें लिखा हुआ है।

राग धनाश्री

[ ८० ]

स्याम रूप देखन की साध भरी माई।
कितनौ पचि हारि रही, देत नहिं दिखाई ॥ १ ॥
मन तौ निरखत सु अंग मैं रही भुलाई।
मोसौं पै भेद कहौ, कैसैं उहि पाई ॥ २ ॥

आपुन अँग अंग बिध्यौ, मोकौं बिसराई ।
बार बार कहत यहै, तू क्यौं नहिं आई ॥ ३ ॥
कबहूँ लै जात साथ, बाँह गहि बुलाई ।
सूर स्याम छबि अगाध, निरखत भरमाई ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कह रही हैं—सखी! मैं श्यामके रूपको देखनेकी लालसासे पूर्ण हूँ ( अर्थात् उसे देखनेकी उत्कट इच्छा रखती हूँ ) । कितना श्रम करके थक गयी, किंतु वह दिखायी ही नहीं पड़ता । मन तो उनका सुन्दर अङ्ग देखता है; ( किंतु ) मैं ( ही ) भूली रह गयी। ( तुमलोग ) यह रहस्य मुझे बताओ कि ( तुमने ) उन्हें कैसे पाया ।( मेरा मन ) स्वयं तो उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें प्रविष्ट हो गया; ( किंतु ) मुझे भूल गया । बार-बार ( वह ) यही कहता रहा कि 'तू क्यों नहीं आयी ।' कभी हाथ पकड़कर और कभी बुलाकर साथ ले जाता है ( तो ) श्यामसुन्दरकी अथाह शोभाको ( मैं ) देखते ही भ्रममें पड़ जाती हूँ ।

राग बिलावल

[ ८१ ]

सुनौ सखी, मैं बूझति तुम कौं, काहू हरि कौं देखे हैं ।
कैसौ तन, कैसौ रँग देखियतु, कैसी बिधि करि भेषे हैं ॥ १ ॥
कैसौ मुकुट, कुटिल कच कैसे, सुभग भाल भ्रुव नीके हैं ।
कैसे नैन, नासिका कैसी, स्रवनन कुंडल पी के हैं ॥ २ ॥
कैसे अधर, दसन दुति कैसी, चिबुक चारु चित चोरत है ।
कैसैं निरखि हँसत काहू तन, कैसैं बदन सकोरत हैं ॥ ३ ॥
कैसौ उर, माला है कैसी, कैसी भुजा बिराजति हैं ।
कैसे कर, पौहँची हैं कैसी, कैसि अँगुरियाँ राजति हैं ॥ ४ ॥
कैसी रोमावली स्याम की नाभि चारु कटि सुनियत हैं ।
कैसी कनक मेखला, कैसी कछनी, यह मन गुनियत है ॥ ५ ॥
कैसे जंघ, जानु कैसे दोउ, कैसे पद नख जानति है ।
सूर स्याम अँग अँग की सोभा देखी कै अनुमानति है ॥ ६ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कह रही हैं—सुनो, सखियो ! मैं तुमसे पूछती हूँ, ( तुममेंसे ) किसीने श्यामसुन्दरको देखा है ? ( यदि देखा है तो बताओ, उनका ) शरीर कैसा है, किस रंगका दिखायी पड़ता है ? किस प्रकारका वेश सजाये हैं ? मुकुट कैसा है ? घुँघराले केश कैसे हैं ? मनोहर ललाट तथा सुन्दर भौंहें अच्छी ( सुन्दर ) हैं ? नेत्र कैसे हैं ? नाक कैसी है ? और उन प्रियतमके कानोंके कुण्डल कैसे हैं ? ओठ कैसे हैं ? दाँतोंकी कान्ति कैसी है ? और ( उनकी ) मनोहर ठुड्डी कैसी चित्तको चुरानेवाली है । किसीकी ओर देखकर वे किस प्रकार हँसते हैं ! तथा किस प्रकार ( आकर्षक भंगीसे ) मुखको सिकोड़ते हैं । वक्षःस्थल कैसा है ? माला कैसी है ? भुजाएँ कैसी शोभा देती हैं ? हाथ कैसे हैं ? उनमें कंगन कैसे हैं ? और उँगलियाँ कैसी सुशोभित हैं ? श्यामकी रोमावली कैसी है ? सुना जाता है कि उनकी नाभि तथा कटि सुन्दर हैं, उसपर सोनेकी करधनी कैसी है ? काछनी कैसी है ? यही मैं अपने मनमें सोचती रहती हूँ । ( उनकी ) जाँघें कैसी हैं ? दोनों पिंडलियाँ कैसी हैं ? तुम जानती हो कि उनके चरण तथा नख कैसे हैं ? श्यामसुन्दरके अङ्ग-प्रत्यङ्गकी शोभा तुमने देखी है या केवल अनुमान करती हो ?

### राग सोरठी

### [ ८२ ]

मन मधुकर पद कमल लुभान्यौ ।<br>
चित्त चकोर चंद नख अटक्यौ, इकटक पलक भुलान्यौ ॥ १ ॥<br>
बिनहीं कहें गए उठि मोतैं, जात नाहिं मैं जान्यौ ।<br>
अब देखौं तन मैं वे नाहीं, कहा जियै धौं आन्यौ ॥ २ ॥<br>
तब तैं फेरि तक्यौ नहिं मो तन, नख चरनन हित मान्यौ ।<br>
सूरदास वे आपु स्वारथी, पर बेदन नहिं जान्यौ ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कहती है—( सखी ! ) मेरा मन-रूपी भौंरा ( मोहनके ) चरण-कमलोंपर लुब्ध हो गया है। चित्त-( रूपी ) चकोर ( उन ) चरणोंके नख ( रूपी ) चन्द्रमाको नेत्रोंके पलक गिराना भूलकर एकटक देखता वहीं बिलम गया। ये ( दोनों ) मुझसे बिना कहे ही उठकर चले गये, उनके हाथसे निकल जानेका मुझे पता भी नहीं चला। अब देखती हूँ तो शरीरमें वे (दोनों ही) नहीं हैं; पता नहीं, उन्होंने चित्तमें क्या ठाना है। ( जबसे गये ) तबसे लौटकर फिर ( उन्होंने ) मेरी ओर ताकातक नहीं, उनके चरण-नखोंसे ही अनुराग कर लिया। वे ( श्यामसुन्दर ) तो अपना ही स्वार्थ देखनेवाले हैं, दूसरेकी पीड़ाका उन्हें क्या पता।

राग मारू

[ ८२ ]

स्याम सखि ! नीकैं देखे नाहिं।
चितवतहीं लोचन भरि आए, बार बार पछिताहिं ॥ १ ॥
कैसेहुँ करि इकटक मैं राखति, नैकहिं मैं अकुलाहिं।
निमिष मनौ छबि पै रखवारे, तातैं अतिहिं डराहिं ॥ २ ॥
कहा करौं इन कौ का दूषन, इन अपनी सी कीन्ही।
सूर स्याम छबि पै मन अटक्यौ, उन्ह सब सोभा लीन्ही ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी ! मैंने भली प्रकार श्यामको नहीं देखा। उनको देखते ही नेत्र ( प्रेमाश्रुसे ) भर आये, इससे वे बार-बार पछता रहे हैं। किसी प्रकार प्रयत्न करके इन्हें अपलक रखती हूँ, किंतु वे तनिक देरमें ही व्याकुल हो जाते हैं। मानो पलकें ( मोहनकी ) शोभाकी रक्षक ( पहरेदार ) हों, इसीलिये वे ( नेत्र ) अत्यन्त डरते हैं। क्या करूँ, इन ( नेत्रों ) का क्या दोष; इन्होंने तो अपनीवाली ( अपने स्वभावके अनुसार ही चेष्टा ) की। मन श्यामकी शोभामें उलझ गया है, उसीने ( उस ) शोभाका पूरा आनन्द लिया है।

राग गौरी

[ ८४ ]

मन लुबध्यौ हरि रूप निहारि।
जा दिन स्याम अचानक आए, तब तैं मोहि बिसारि ॥ १ ॥
इंद्रिन संग लगाइ गयौ ह्याँ, डेरा निकस्यौ झारि।
ऐसे हाल करत री कोऊ, रही अकेली नारि ॥ २ ॥
फेरि न मेरी उहिं सुधि लीन्ही, आपु करत सुख भारि।
सूर स्याम कौं उरहन दैहौं, पठवत काहें न मारि ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! ) श्रीहरिका रूप देखकर ( मेरा ) मन लुब्ध हो गया। जिस दिन श्यामसुन्दर अचानक ( इधर ) आये, तभीसे ही इस ( मन ) ने मुझे भुला दिया है। ( वह ) यहाँ डेरे ( निवासस्थान ) को झाड़ ( कुछ न रख ) कर इन्द्रियोंको भी साथमें लगा ले गया ( सब कुछ लेकर सदाके लिये चला गया )। सखी! भला, कोई ऐसी दशा करता है ? ( मैं ) अकेली स्त्री रह गयी। उसने फिर मेरी सुधि ( समाचार ) ही नहीं ली और स्वयं महान् आनन्दका उपभोग कर रहा है ! मैं ( तो ) श्यामसुन्दरको उलाहना दूँगी कि ( वे ) उसे पीटकर ( यहाँ ) भेज क्यों नहीं देते ?

राग जैतश्री

[ ८५ ]

सुनि सजनी ! मेरी इक बात।
तुम तौ अतिहीं करति बड़ाई, मन मेरौ सरमात ॥ १ ॥
मोसौं कहति स्याम तुम्ह एकै, यह सुनि कै परमात।
एक अंग कौ पार न पावत, चकित होइ भरमात ॥ २ ॥
वह मूरति द्वै नैन हमारैं, लिखी नाहिं करमात।
सूर रोम प्रति लोचन देतो, बिधना पै तरमात ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कह रही हैं— सखी !, मेरी एक बात सुन। तुम तो ( मोहनके सौन्दर्यकी ) बहुत अधिक प्रशंसा करती हो और मेरा मन लज्जाका अनुभव कर रहा है। मुझसे तुम कहती हो कि श्याम और तुम एक ही हो, इस बातको सुनकर मैं प्रमाण मान लेती हूँ। ( किंतु मैं तो ) उनके एक अङ्गकी शोभाका ही पार नहीं पाती और आश्चर्यमें भरकर हक्की-बक्की रह जाती हूँ। ( कहाँ ) वह ( अगाध सौन्दर्यमयी ) मूर्ति और कहाँ हमारे ( केवल ) दो नेत्र ! प्रारब्धमें ( उसे भली प्रकार देखना ) लिखा ही नहीं। विधातापर मैं इसीलिये रुष्ट होती हूँ कि उसे हमें प्रत्येक रोममें आँखें देना चाहता था।

राग कल्यान

[ ८६ ]

**जौ विधना अपबस करि पाऊँ।**
**तो सखि! कह्यौ होइ कछु तेरौ, अपनी साध पुराऊँ ॥ १ ॥**
**लोचन रोम रोम प्रति मागौं, पुनि पुनि त्रास दिखाऊँ।**
**इकटक रहैं, पलक नहिं लागैं, पद्धति नई चलाऊँ ॥ २ ॥**
**कहा करौं, छबि रासि स्याम घन, लोचन द्वै नहिं ठाऊँ।**
**एते पै ये निमिष सूर सुनि, या दुख काहि सुनाऊँ ॥ ३ ॥**

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है–( सखी ! ) यदि मैं विधाताको अपने वशमें कर पाऊँ तो सखी ! कुछ तेरा कहना हो और मैं (भी) अपनी अभिलाषा पूर्ण कर लूँ। बार-बार उसे डाँटकर प्रत्येक रोममें नेत्र माँगूँ और यह नवीन पद्धति चलाऊँ कि ( नेत्र ) एकटक रहें, पलकें न गिरा करें। क्या करूँ, घनश्याम तो शोभाकी राशि हैं और ( देखनेके साधन ) नेत्र दो ही हैं, उनमें स्थान है नहीं। सुनो ! इतनेपर भी ये पलकें गिरती हैं, यह दुःख किसे सुनाऊँ।

राग बिलावल

[ ८७ ]

कहा करौं बिधि हाथ नहीं।
वह सुख, यह तन दसा हमारी,
नैनन की रिस मरत महीं ॥ १ ॥
अंग अंग कौनी बिधि बनए,
द्वै नैना देखति जबहीं।
ऐसौ कौन, ताहि धरि आनै,
कहा करौं खीझति मनहीं ॥ २ ॥
बड़ौ सुजान, चतुरई नीकी,
जगत पिता कहियत सबही।
सूर स्याम अवतार जानि ब्रज,
लोचन बहु न दिए हमही ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! ) क्या करूँ विधाता मेरे हाथ ( वश ) में नहीं है। वह ( श्यामसुन्दरको देखनेका ) आनन्द और यह हमारे शरीरकी ( विवश ) अवस्था ! नेत्रों ( की असमर्थता ) के रोषसे स्वयं ही मैं मर ( कष्ट पा ) रही हूँ। जब ( केवल ) दो ( अपने ) नेत्र देखती हूँ, तब सोचती हूँ, इस ( मूर्ख ब्रह्मा )ने सारे अङ्ग बनाये किस प्रकार। अतः ( मन-ही-मन कुढ़ती रहती हूँ ) चारों ओर दृष्टि दौड़ाती हूँ यह देखनेके लिये कि ऐसा कौन है, जो उसे पकड़ लाये। परंतु करूँ क्या, वह बड़ा समझदार है, उसकी चतुरता भी अच्छी है, सभी उसे जगत्पिता कहते हैं; ( किंतु ) श्यामसुन्दरका व्रजमें अवतार होगा, यह जानकर भी उसने हमें बहुत-से नेत्र ( क्यों ) नहीं दिये ( यह हमारी समझमें नहीं आता )।

[ ८८ ]

अब समझी यह निठुर बिधाता।
ऐसेहिं जगत पिता कहवावत,
ऐसे घात करै सो धाता ॥ १ ॥

कैसौ ग्यान, चतुरई कैसी,
कौन बिवेक, कहाँ कौ ग्याता।
जैसौ दुख हम कौं इहिं दीन्हौ,
तैसौ याकौ होइ निपाता ॥ २ ॥
द्वै लोचन तन मैं करि दीन्हे,
याही तैं जान्यौ पित माता।
सूर स्याम छबि तैं अघात नहिं,
बार बार आवत अकुलाता ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—(सखी!) अब मैं समझ गयी कि यह विधाता (बड़ा) निष्ठुर है। (वह) ऐसे (व्यर्थ) ही जगत्पिता कहलाता है और (क्या) घात (छिपकर चोट) करनेपर (भी वह) धाता (रक्षक) कहला सकता है? उसका ज्ञान कैसा और कैसी चतुरता, कहाँकी विचारशक्ति तथा कहाँका (वह) जानकार? (अरे) जैसा दुःख इसने हम (सब) को दिया, वैसे ही इसका भी विनाश हो। हमारे शरीरमें इसने (केवल) दो नेत्र बना दिये, इसीसे हमने समझ लिया कि वह कैसा पिता-माता है। श्यामसुन्दरकी शोभासे (ये नेत्र) तृप्त न होकर बार-बार व्याकुल होकर लौट आते हैं।

राग सूही बिलावल

[ ८९ ]

द्वै लोचन साबित नहिं तेऊ।
बिन देखें पल परति नहीं छिन,
एते पर कीन्ही यह टेऊ ॥ १ ॥
बार बार छबि देख्यौइ चाहत,
साथी निमिष मिले हैं येऊ।
ते तौ ओट करत छिनहीं छिन,
देखतहीं भरि आवत द्वेऊ ॥ २ ॥

कैसैं मैं उन कौं पहचानौं,
नैन बिना लखिए क्यों भेऊ।
ये तौ निमिष परत भरि आवत,
निठुर बिधाता दीन्हे जेऊ ॥ ३ ॥
कहा भई जौ मिली स्याम सौं,
तू जानै, जानैं सब केऊ।
सूर स्याम कौ नाम स्रवन सुनि
दरसन नीकैं देत न वेऊ ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—(सखी!) मेरे दो (ही) नेत्र और वे भी पूर्ण नहीं। (मोहनको) बिना देखे क्षणभर भी शान्ति नहीं मिलती, उसपर यह (पलक गिरानेका) स्वभाव बना दिया। ये बार-बार उस शोभाको देखते ही रहना चाहते हैं, (किंतु) पलकोंका गिरना-रूप जो साथी मिल गये हैं, वे क्षण-क्षणपर आड़ करते रहते हैं और वे दोनों (नेत्र) (श्यामको) देखते ही भर आते हैं। (अतः) मैं उन (मोहन) को कैसे पहचानूँ ? बिना नेत्रके कोई भेद (रहस्य) कैसे देख सकता है। निष्ठुर विधाताने जो नेत्र दिये हैं, वे भी पलकोंके पड़ते ही (निमिषमात्रमें) (आँसुओंसे) भर जाते हैं। तू जानती है और सब लोग जानते हैं कि मैं श्यामसे मिली; इससे क्या हो गया। मैंने तो (मिलकर भी कानोंसे) (श्यामसुन्दरका) नाममर सुना है, भली प्रकार वे भी तो दर्शन नहीं देते।

राग सूही

[ ९० ]

स्यामै मैं कैसैं पहचानौं।
क्रम क्रम करि इक अंग निहारति,
पलक ओट ताकौं नहिं जानौं ॥ १ ॥

पुनि लोचन ठहराइ निहारति,
निमिष मेटि वह छबि अनुमानौं।
औरै भाव, और कछु सोभा,
कहौ सखी ! कैसैं उर आनौं ॥ २ ॥
छिन छिन अंग अंग छबि अगिनित,
पुनि देखौं, फिरि कैं हठ ठानौं।
सूरदास स्वामी की महिमा,
कैसैं रसना एक बखानौं ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! ) मैं श्यामको कैसे पहचानूँ ! क्रमशः ( बारी-बारीसे ) उनके एक-एक अङ्गको देखती हूँ, ( किंतु ) पलकोंकी ( बार-बार ) आड़ होनेसे उस अङ्गको ( पूरी तरह देख ) नहीं पाती। फिर नेत्रोंको स्थिर करके देखती हूँ, पलकोंका गिरना रोककर उस शोभाका अनुमान करती हूँ; ( किंतु इतनेमें तो ) कुछ और ही भाव, कुछ और ही शोभा हो जाती है। बताओ सखी ! कैसे उसे हृदयमें ले आऊँ। क्षण-क्षणमें ( उनके ) अङ्ग-प्रत्यङ्गकी शोभा अपार होती जाती है। फिर देखती हूँ और फिर ( देख लेनेका ) हठ करती हूँ; ( किंतु ) स्वामीकी महिमाका एक जीभसे कैसे वर्णन करूँ ( वह तो अनन्त है )।

राग सारंग

[ ९१ ]

स्याम सौं काहे की पहचानि।
निमिष निमिष वह रूप, न वह छवि,
रति कीजै जिय जानि ॥ १ ॥
इकटक रहत निरंतर निसि दिन,
मन बुधि सौं चित सानि।
एकौ पल सोभा की सीवाँ
सकति न उर मैं आनि ॥ २ ॥

समझि न परै प्रगटहीं निरखत
आनँद की निधि खानि।
सखि यह बिरह सँजोग कि सम रस,
सुख दुख, लाभ कि हानि ॥ ३ ॥
मिटति न घृत तैं होम अगिनि रुचि,
सूर सु लोचन बानि।
इत लोभी, उत रूप परम निधि,
कोउ न रहत मिति मानि ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—(सखी !) श्यामके साथ (मेरी) पहचान कैसी। प्रत्येक पल (उनका) न वह रूप रहता है न वह शोभा रहती है (क्षण-क्षण वे नवीन होते रहते हैं); अतः मनमें सोच-समझकर (उनसे तू) प्रीति करना। (मैं) मन-बुद्धिके साथ चित्तको एकाकार करके निरन्तर रात-दिन एकटक (देखती) रहती हूँ; किंतु एक क्षणके लिये भी (उनके) शोभाकी सीमा हृदयमें नहीं ला पाती हूँ। (यद्यपि) प्रत्यक्ष ही देखती हूँ, फिर भी वह आनन्द (रूप) सम्पत्तिकी खान समझमें (ही) नहीं आती (कि कितनी है)। सखी ! यह वियोग है या संयोग अथवा समता, सुख है या दुःख, लाभ है या हानि (नहीं जान पाती)। नेत्रोंका तो (देखनेका) ऐसा स्वभाव हो गया है कि उनकी रुचि वैसे ही नहीं मिटती जैसे घीका हवन करनेसे अग्नि नहीं बुझती। यहाँ तो ये (नेत्र दर्शनके) लोभी हैं और वहाँ वे रूपकी सर्वश्रेष्ठ निधि हैं; दोनोंमें कोई (भी) अपनी सीमा मानकर रहता नहीं है।

राग बिलावल

[ ९२ ]

कहा करौं नीकैं करि हरि कौ
रूप रेख नहिं पावति।
सँगही संग फिरति निसि बासर,
नैन निमेष न लावति ॥ १ ॥

बँधी दृष्टि ज्यौं गुड़ी डोर बस,
पाछैं लागी धावति ।
निकट भयैं मेरीऐ छाया,
मोकौं दुख उपजावति ॥ २ ॥
नख सिख निरखि निहारयौ चाहति,
मन मूरति अति भावति ।
जानति नाहिं कहाँ तैं निज छबि
अंग अंग मैं आवति ॥ ३ ॥
अपनी देह आप कौं वैरिन,
दुरति न दुरी दुरावति ।
सूर स्याम सौं प्रीति निरंतर,
अंतर मोहि करावति ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! ) क्या करूँ, श्यामसुन्दरकी रूपरेखा भली प्रकार ( देख ही ) नहीं पाती । ( मैं ) नेत्रोंपर पलकें लाये ( गिराये ) बिना ( एकटक देखती हुई ) रात-दिन (उनके) साथ-ही-साथ घूमती हूँ। डोरीमें बँधी पतंगकी तरह (उनके रूपमें ) बँधी मेरी दृष्टि पीछे लगी दौड़ती है। पास जानेपर मेरी ही छाया ( दर्शन-में बाधा देकर ) मुझे दुःखित करती है। ( मोहनको ) एड़ीसे चोटीतक सम्पूर्ण अङ्गोंको निरखते हुए मैं भली प्रकार देख लेना चाहती हूँ; ( क्योंकि ) वह मूर्ति मेरे मनको अत्यन्त प्रिय लगती है। पर नहीं जानती कि कहाँसे अपनी ही शोभा उनके अङ्ग-अङ्गमें आ जाती है ( उनके अङ्ग इतने निर्मल हैं कि देखनेवालेको वहाँ अपना ही प्रतिबिम्ब दिखायी देता है ) । ( अब तो ) अपना शरीर ही अपने लिये शत्रु हो गया है; क्योंकि इस शरीरमें श्याम-सुन्दरके प्रेमको बहुत छिपाती हूँ, पर वह छिपाये न पहले छिपा है न ( अब ) छिपता है। ( मेरी तो ) श्यामसुन्दरसे निरन्तर प्रीति है, ( किंतु ) यह देह ही मुझसे ( और उनसे ) अन्तर ( अलग ) कराती है।

राग धनाश्री

[ ९३ ]

जौ देखौं तौ प्रीति करौं री।
संगै रहौं, फिरौं निसि बासर,
चित तैं नैक नाहिं बिसरौं री ॥ १ ॥
कैसैं दुरत दुराएँ मेरे,
उन बिन धीरज नाहिं धरौं री।
जाउँ तहीं जहँ रहैं स्याम घन,
निरखत इकटक तैं न टरौं री ॥ २ ॥
सुनि री सखी ! दसा यह मेरी,
सो कहि धौं अब कहा करौं री।
सूर स्याम लोचन भरि देखौं,
कैसैं इतनी साध भरौं री ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—(सखी!) यदि (मोहनको) देखूँ, तब (तो उनसे) प्रेम करूँ। रात-दिन, (उनके) साथ (ही) रहती (और) घूमती हूँ, चित्तसे तनिक भी भूलती नहीं हूँ। (यह बात) मेरे छिपाये कैसे छिप सकती है? उनके बिना मैं धैर्य नहीं रख पाती। घनश्याम जहाँ रहते हैं वहीं जाती हूँ, उन्हें एकटक देखते किसीके हटाये नहीं हटूँगी। अरी सखी! सुन, यह मेरी दशा है; अतः बता, अब क्या करूँ? मैं श्यामसुन्दरको नेत्र भरकर (भली प्रकार) देखूँ—अपनी इस लालसाको कैसे पूरी करूँ।

राग बिलावल

[ ९४ ]

हरि दरसन की साध मुई।
उड़िऐ उड़ी फिरति नैनन सँग,
फर फूटैं ज्यौं आक रुई ॥ १ ॥

जानौं नाहिं कहाँ तैं आवति,
वह मूरति मन माहिं उई।
बिन देखे की बिथा बिरहिनी
अति जुर जरति न जाति छुई॥ २॥
कछुवै कहति, कछू कहि आवत,
प्रेमपुलक स्रम स्वेद चुई।
सूखत सूर धान अंकुर सी,
बिन बरषा ज्यौं मूल तुई॥ ३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—(सखी!) श्याम-सुन्दरके दर्शनकी लालसामें मैं मरी जा रही हूँ। आकका फल फट जानेपर जैसे उसकी रूई उड़ती है, (वैसे ही) मैं नेत्रोंके साथ उड़ती-फिरती हूँ। मैं नहीं जानती कि कहाँसे वह मूर्ति मेरे मनमें उदय हो जाती है, (उनको) न देखनेके दुःखसे वियोगिनी तीव्र ज्वरमें जल रही हूँ और (मेरी देह तापके कारण) छुई नहीं जाती। (वह) कुछ कहना चाहती हूँ, कहा जाता है कुछ; प्रेममें रोमाञ्च हो रहा है और शरीरसे पसीना चू रहा है। वर्षाके बिना जड़से उखड़े हुए धानके अंकुरके समान मैं सूखती जा रही हूँ।

राग धनाश्री

[ ९५ ]

सुनि री सखी! दसा यह मेरी।
जब तैं मिले स्यामघन सुंदर,
संगै फिरति भई जनु चेरी॥ १॥
नीकें दरस देत नहिं मोकौं,
अंगन प्रति अनंग की ढेरी।
चपला तैं अतिहीं चंचलता
दसन चमक चकचौंधि घनेरी॥ २॥

चमकत अंग, पीत पट चमकत,
चमकति माला मोतिन केरी।
सूर समझि बिधना की करनी,
अति रिस करति सौंह मोहिं तेरी ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है— अरी सखी ! मेरी यह दशा सुन। जबसे परम सुन्दर घनश्याम मिले हैं, तबसे उनके साथ ही इस प्रकार घूमती हूँ, जैसे ( उनकी ) दासी बन गयी। ( इतनेपर भी ) वे मुझे भली प्रकार दर्शन नहीं देते। ( उनके ) प्रत्येक अङ्गमें कामदेव राशि-राशि हैं, बिजलीसे भी अधिक चञ्चलता है और दाँतोंकी चमक ( में ) बहुत अधिक चकाचौंध है। ( उनके ) सभी अङ्ग चमकते हैं, पीताम्बर चमकता है और मोतियोंकी माला भी चमकती है। मुझे तेरी शपथ, ( इसे ) विधाताका कर्म समझकर ( उसपर मैं ) अत्यन्त रोष करती हूँ।

राग मारू

[ ९६ ]

आज के द्यौस कौं सखी अति नाहिं जौ
लाख लोचन अंग अंग होते।
पूरती साध मेरे हृदै माँझ की,
देखती सबै छबि स्याम को ते ॥ १ ॥
चित्त लोभी नैन द्वार अतिहीं सुछम,
कहाँ वह सिंधु छबि है अगाधा।
रोम जितने अंग, नैन होते संग,
रूप लेती राखि कहति राधा ॥ २ ॥
स्रवन सुनि सुनि दहै, रूप कैसैं लहै,
नैन कछु गहै, रसना न ताकैं।
देखि कोउ रहै, कोउ सुनि रहै, जीभ बिन
सो कहै कहा नहिं नैन जाकैं ॥ ३ ॥

अंग बिनु हैं सबै, नाहिं एकौ फबै,
सुनत देखत जवै कहन लोरैं।
कहै रसना, सुनत स्रवन, देखत नैन,
सूर सब भेद गुनि मनै तोरैं॥ ४॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कहती हैं—'सखी! आजके दिन तब भी अति (सीमाका उल्लङ्घन) नहीं होती, यदि (ब्रह्माने) मेरे अङ्ग-अङ्गमें लाख-लाख नेत्र (दिये) होते; (क्योंकि उससे) मेरे हृदयकी अभिलाषा (तो आज) पूर्ण हो जाती और वे (नेत्र) भी श्यामसुन्दरकी सम्पूर्ण शोभाको देख पाते। (मेरा) चित्त (यों दर्शनका) लालची है, (किंतु) नेत्र-रूपी द्वार अत्यन्त सूक्ष्म (छोटे) हैं और कहाँ वह (श्यामसुन्दरकी) शोभाका अगाध समुद्र। अतः जितने रोम शरीरमें हैं, उतने नेत्र (तो) उनके साथ दिये होते, (जिससे) उस रूपको काबूमें कर लेती, कान (उनके रूपकी प्रशंसा) सुन-सुनकर संतप्त होते हैं, वे (भला) रूप कैसे (देख) पावें; (और जो) नेत्र थोड़ा-सा देख पाते हैं, उनके जीभ नहीं है; (जो उस रूपको कहें)। (इस प्रकार मेरे) कोई अङ्ग केवल देखकर रह जाते हैं और कोई सुनकर रह जाते हैं। (अर्थात् जो देखते हैं—) उनको जीभ नहीं है और (जो सुनते हैं) वे नेत्र न होनेके कारण कहें क्या। सभी (अङ्ग अन्य) अङ्गोंसे रहित हैं, एक भी (पूर्ण) सुशोभित नहीं है; जब सुनते-देखते हैं, तब कहनेको आतुर होते हैं। वर्णन वाणी करती है, सुनते कान हैं और देखते नेत्र हैं। सभी इस पार्थक्यको समझकर निराश हो जाते हैं।

राग धनाश्री

[ ९७ ]

इनहू मैं घटताई कीन्ही।
रसना स्रवन नैन कै होते,
कै रसनाहीं इनहीं दीन्ही॥ १॥

वैर कियौ हम सौं बिधना रचि,
याकी जाति अबै हम चीन्ही।
निठुर निरदई यातैं और न,
स्याम वैर हम सौं है लीन्ही ॥ २ ॥
या रस ही मैं मगन राधिका,
चतुर सखी तवहीं लखि लीनी।
सूर स्याम कैं रंगै राँची,
टरति नाहिं जल तैं ज्यौं मीनी ॥ ३ ॥

( श्रीराधा फिर कहती हैं—सखी ! ) इन ( अङ्गों ) में भी ( ब्रह्माने ) कमी कर दी। या तो जीभको नेत्र और कान ( दिये ) होते या इन्हीं ( नेत्र और कानको ) जीभ दी होती। ( अतः ऐसा न करके ) विधाताने ( हमें ) बनाकर हमसे शत्रुता की। इस ( ब्रह्मा ) की जाति ( नीचता ) अब हमने पहचान ली। ( अतएव ) इससे निष्ठुर और निर्दय और कोई नहीं है, श्यामसुन्दरके साथ अपनी शत्रुताका बदला ( इसने ) हमसे लिया है। सूरदासजी कहते हैं कि श्रीराधा इसी ( श्यामसुन्दरके प्रेमके ) आनन्दमें निमग्न हैं और चतुर सखीने तभी लक्षित कर लिया कि ये श्यामसुन्दरके प्रेममें रँगी हैं और उससे उसी प्रकार विरत नहीं होतीं, जैसे जलसे मछली हटती नहीं !

राग गौरी

[ ९८ ]

कब री मिले स्याम नहिं जानौं।
तेरी सौं करि कहति सखी री, अजहूँ नहिं पहिचानौं ॥ १ ॥
खिरक मिले, कै गोरस वेचत, कै अबहीं, कै कालि।
नैनन अंतर होत न कबहूँ, कहति कहा री आलि ॥ २ ॥
एकौ पल हरि होत न न्यारे, नीकें देखे नाहिं।
सूरदास प्रभु टरत न टारें, नैनन सदा बसाहिं ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कह रही हैं—सखी! मैं नहीं जानती कि श्यामसुन्दर मुझसे कब मिले। अरी सखी! मैं तेरी शपथ करके कहती हूँ कि उन्हें (मैं) अब भी नहीं पहचानती। (वे गायोंके) गोष्ठमें मिले या गोरस बेचते समय, अभी मिले या कल (पता नहीं)। किंतु सखी! तू कहती क्या है? वे तो मेरे नेत्रोंसे कभी ओझल होते ही नहीं। एक पलके लिये भी श्यामसुन्दर मुझसे पृथक् नहीं होते; (किंतु मैंने) उन्हें भली प्रकार देखा नहीं है, (वे) मेरे स्वामी सदा मेरे नेत्रोंमें ही निवास करते हैं, हटानेसे (भी) हटते नहीं।

राग आसावरी

[ ९९ ]

तबही तैं हरि हाथ बिकानी।
देह गेह सुधि सबै भुलानी ॥ १ ॥
अंग सिथिल भए जैसैं पानी।
ज्यौं त्यौं करि गृह पहुँची आनी ॥ २ ॥
बोले तहाँ अचानक बानी।
द्वारें देखे स्याम बिनानी ॥ ३ ॥
कहा कहौं, सुनि सखी सयानी!
सूर स्याम ऐसी मति ठानी ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कह रही हैं—(सखी!) तभीसे मैं श्यामसुन्दरके हाथ बिक गयी हूँ और शरीर तथा घरकी सभी सुधि भूल गयी हूँ। मेरे अङ्ग ऐसे शिथिल (ढीले) हो गये जैसे जल हो; जैसे-तैसे करके (मैं) घर आ पहुँची हूँ। मुझ नासमझने द्वारपर श्यामसुन्दरको देखा, (तो) वे अचानक वहाँ कोई बात बोल उठे। अतः चतुर सखी! सुन, मैं (उस समयकी बात—अपनी दशा) क्या कहूँ। श्यामसुन्दरने ऐसा संकल्प (मेरे विषयमें) किया है।

राग धनाश्री

[ १०० ]

जा दिन तैं हरि दृष्टि परे री।
ता दिन तैं मेरे इन नैननि दुख सुख सब बिसरे री ॥ १ ॥
मोहन अंग गुपाल लाल के, प्रेम पियूष भरे री।
बसे उहाँ मुसकानि बाँह लै, रचि रुचि भवन करे री ॥ २ ॥
पठवति हौं मन तिन्हैं मनावन, निसि दिन रहत अरे री।
ज्यौं ज्यौं जतन करति उलटावति, त्यौं त्यौं हठत खरे री ॥ ३ ॥
पचि हारी समझाइ ऊँच निच, पुनि पुनि पाँइ परे री।
सो सुख सूर कहाँ लौं बरनौं, इकटक तैं न टरे री ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कह रही हैं—( सखी ! ) जिस दिनसे श्यामसुन्दर दिखायी दिये, उसी दिनसे मेरे इन नेत्रोंने दुःख-सुख सब भुला दिया है। (उन) गोपाललालके मनोमुग्धकारी अङ्ग प्रेमके अमृतसे पूर्ण हैं, सो ( ये नेत्र उनकी ) मुसकराहटका आश्रय लेकर वहीं बस गये, बड़ी रुचिसे ( इन्होंने वहीं अपना ) भवन बना लिया है। मैं उन्हें समझानेके लिये मनको भेजती हूँ, किंतु वे रात-दिन अड़े ही रहते हैं। उनको लौटानेके लिये जैसे-जैसे प्रयत्न करती हूँ, वैसे-वैसे वे और भी दृढ़ हठ पकड़ते जाते हैं। ( उन्हें ) ऊँच-नीच ( भला-बुरा ) समझानेकी चेष्टा करके थक गयी, बार-बार उनके पैर पड़ी, ( किंतु ) ( उनके ) उस आनन्दका कहाँतक वर्णन करूँ। ( वे ) एकटक देखनेसे हटते नहीं ( पलकें ही नहीं गिराते )।

राग सारंग

[ १०१ ]

जब तैं प्रीति स्याम सौं कीन्ही।
ता दिन तैं मेरैं इन नैनन नैकहुँ नींद न लीन्ही ॥ १ ॥

सदा रहै मन चाक चढ़्यौ सौ, और न कछू सुहाइ।
करत उपाइ बहुत मिलिबे कौं, यहै विचारत जाइ॥ २॥
सूर सकल लागति ऐसीऐ, सो दुख कासौं कहिऐ।
ज्यौं अचेत बालक की वेदन अपनैं ही तन सहिऐ॥ ३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कह रही हैं—( सखी! )जबसे मैंने श्यामसुन्दरसे प्रेम किया, उसी दिनसे मेरे इन नेत्रोंने तनिक भी निद्रा नहीं ली है। मन सदा (कुम्हारके) चाकपर चढ़े (बर्तन) की भाँति (घूमता) रहता है, दूसरा कुछ अच्छा नहीं लगता। (उनसे) मिलनेके लिये बहुत उपाय करती हूँ और यही विचार करते (दिन बीत) जाता है। सभी (तो) ऐसी ही (मेरे-जैसी ही बेहाल) लगती हैं; (अतएव) वह (अमिलनका) दुःख किससे कहा जाय। जैसे अबोध बालकको अपनी पीड़ाको (किसीसे कह न सकनेके कारण) अपने शरीरमें ही सहनी पड़ती है (उसी प्रकार मैं भी सहती हूँ)।

राग अडाना

[ १०२ ]

को जानै हरि कहा कियौ री।
मन समझति, मुख कहत न आवै,
कछु इक रस नैनन जु पियौ री॥ १॥
ठाढ़ी हुती अकेली आँगन
आनि अचानक दरस दियौ री।
सुधि बुधि कछु न रही उत चितवत,
मेरौ मन उन्ह पलटि लियौ री॥ २॥
ता सुख हेतु दहत दुख दारुन,
छिन छिन जरत जुड़ात हियौ री।
सूर सकल आनति उर अंतर,
उपमा कौं पावति न बियौ री॥ ३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कह रही हैं—अरी सखी! कौन जानता है कि श्यामसुन्दरने (मुझे) क्या कर दिया। मनमें समझती हूँ, (किंतु) मुखसे वर्णन नहीं हो पाता; उस (शोभा) का रस कुछ थोड़ा नेत्रोंने पिया है। मैं अकेली (अपने) आँगनमें खड़ी थी कि (मोहनने) अचानक आकर मुझे दर्शन दिया; उधर (उनकी ओर) देखते ही मुझे कुछ भी सुधि-बुधि नहीं रही, मेरा मन (ही) उन्होंने (दर्शनके) बदलेमें ले लिया। उसी आनन्द (दर्शनानन्द) को पानेके लिये दारुण दुःखमें जलती रहती हूँ, हृदय क्षण-क्षणमें जलता और शीतल होता रहता है। (उनकी) उपमाके योग्य सभी सुन्दर वस्तुओंको हृदयमें ले आती हूँ, (किंतु) उपमा देनेके लिये दूसरा कोई मिलता (ही) नहीं।

राग सारंग

[ १०२ ]

हरि मेरे आँगन ह्वै जु गए।
निकसे आइ अचानक सजनी, इत फिरि फिरि चितए ॥ १ ॥
अति दुख मैं पछिताति यहै कहि, नैनन्न बहुत ठए।
जौ बिधि यहै कियौ चाहत हौ, द्वै मोहि कतव दए ॥ २ ॥
सब दै लेउँ लाख लोचन सखि, जौ कोउ जटत नए।
थाके सूर पथिक मग मानौ मदन ब्याध बिधए ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कह रही हैं—श्याम मेरे आँगनमें होकर जो गये (तभीसे मेरी दशा ऐसी हो गयी)। सखी! वे अचानक इधर आ निकले और बार-बार घूमकर मेरी ओर देखा। (तबसे) अत्यन्त दुःखके साथ मैं यही कहकर पश्चात्ताप करती हूँ कि नेत्रोंने मुझे बहुत ठगा। यदि विधाताको यही करना था (मोहनका दर्शन ही देना था) तो दो ही नेत्र मुझे क्यों दिये? सखी! यदि कोई नवीन नेत्र जड़ता (लगाना जानता) हो तो (उसे) अपना सर्वस्व देकर (उससे) एक लाख नेत्र ले लूँ। मेरे ये नेत्र तो ऐसे शिथिल हो गये हैं, मानो पथिक मार्गमें कामदेवरूपी व्याधके द्वारा बींध दिये गये हों।

राग कान्हरौ

[ १०४ ]

कहाँ लगि अलकैं देहौं ओट ।
चंचल चपल सुरंग छबीलौ आनि बन्यौ मग जोट ॥ १ ॥
खंजन कमल नैन अति राजत, उपमा है जो कोट ।
सूर स्याम छवि कहँ लौं बरनौं, नहिन रूप की टोट ॥ २ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कह रही हैं—( सखी ! ) मैं (अपनी) अलकों ( केशों )की आड़ कहाँतक देती, वे चुलबुले चञ्चल परम सुन्दर एवं छबीले ( श्याम ) आकर मार्गके साथी बन गये । ( उनके ) खंजन एवं कमलके समान नेत्र अत्यन्त शोभा दे रहे थे, जो उपमाओंकी राशि हैं । ( मैं ) श्यामसुन्दरकी शोभाका वर्णन कहाँतक करूँ; ( वहाँ ) सौन्दर्यकी ( कोई ) कमी नहीं है ।

राग सारंग

[ १०५ ]

टरति न टारैं छवि मन जु चुभी ।
घन तन स्याम, पितांबर दामिनि, चातक आँखि लुभी ॥ १ ॥
द्वै बग पंगति राजति मानौ मुक्ता माल सुभी ।
गिरा गँभीर गरज मानौ सखि ! स्रवनन आइ खुभी ॥ २ ॥
मुरली मोर मनोहर बानी सुनि इकटक जु उभी ।
सूरदास मनमोहन निरखत उपजी काम गभी ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कह रही हैं—( सखी ! ) वह ( मोहनकी ) शोभा, जो चित्तमें गड़ गयी, हटानेसे नहीं हटती । उनका शरीर मेघके समान श्याम और उसपर बिजलीके समान पीताम्बर था; ( अतः ) चातकके समान मेरे नेत्र ( उसपर ) लुब्ध हो गये । ( उनके हृदयपर ) सुन्दर मोतियोंकी माला ऐसी थी, मानो बगुलोंकी दो पंक्तियाँ सुशोभित हों और सखी ! उनकी वाणी ऐसी गम्भीर थी, मानो बादलकी गर्जना हो, जो आकर ( मेरे ) कानोंमें पैठ गयी है । वंशीध्वनि ( ही )

मयूरोंका मनोहर शब्द है, ( उसे ) सुनकर मैं एकटक ( उन्हें देखती ) खड़ी रह गयी। उन मनमोहनको देखते ही ( मेरे हृदयमें ) कामकी लहर उत्पन्न हो गयी।

राग बिलावल

[ १०६ ]

नंद कैं लाल हर्‌यौ मन मोर।
हौं बैठी मोतिनि लर पोवति,
काँकरि डारि चले सखि भोर॥ १॥
बंक बिलोकनि, चाल छबीली,
रसिक सिरोमनि नवल किसोर।
कहि काकौ मन रहै स्रवन सुनि
सरस मधुर मुरली की घोर॥ २॥
बदन गुबिंद इंदु के कारन,
तरसत नैन बिहंग चकोर।
सूरदास प्रभु के मिलिबे कौं
कुच श्रीफल हौं करति अँकोर॥ ३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कह रही हैं—श्रीनन्दनन्दनने मेरा चित्त चुरा लिया है। सखी! मैं बैठी मोतियोंकी लड़ी ( माला ) गूँथ रही थी, ( इतनेमें मुझपर ) वे भोलेपनसे कंकड़ी फेंककर चले गये। उनकी तिरछी चितवन थी, सौन्दर्यभरी चाल थी और ( वे स्वयं ) रसिक-शिरोमणि नवलकिशोर ठहरे। ( ऐसी दशामें ) उनकी वंशीकी रसमयी मधुर ध्वनि कानोंसे सुनकर किसका मन स्थिर रह सकता है। ( अब तो ) गोविन्दका चन्द्रमुख देखनेके लिये ( मेरे ) नेत्ररूपी चकोर पक्षी तरसते रहते हैं। स्वामी ( श्रीकृष्ण ) से मिलनेके लिये मैं ( अपने ) श्रीफल-जैसे उरोजोंको भेंट देनेके लिये अङ्कमें ( धरे फिरती ) रहती हूँ।

राग अड़ानौ

[ १०७ ]

मेरौ मन गोपाल हरयौ री।
चितवतहीं उर पैठि नैन मग
ना जानौं धौं कहा करयौ री ॥ १ ॥
मात पिता पति बंधु सजन जन,
सखि ! आँगन सब भवन भरयौ री।
लोक वेद प्रतिहार पहरुआ,
तिनहू पै राख्यौ न परयौ री ॥ २ ॥
धरम धीर कुल कानि कुँजी करि
तिहि तारौ दै दूरि धरयौ री।
पलक-कपाट कठिन उर अंतर,
इतेहुँ जतन कछुवै न सरयौ री ॥ ३ ॥
बुधि विवेक बल सहित सँच्यौ पचि,
सु धन अटल कबहूँ न टरयौ री।
लियौ चुराइ चितै चित सजनी,
सूर सोच तन जात जरयौ री ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कह रही हैं—मेरा मन गोपालने हर लिया है; ( उन्होंने मेरे ) देखते ही नेत्रोंके मार्गसे ( मेरे ) हृदयमें घुसकर नहीं जानती कि क्या कर दिया। सखी ! माता-पिता, पति, भाई, स्वजन आदि लोगोंसे सब आँगन और घर भरा था; लोककी लज्जा और वेदकी मर्यादा-रूप चौकीदार पहरा देते थे; ( किंतु ) उनसे भी रक्षा करते नहीं बना ( वे भी रक्षा नहीं कर सके )। कुलकी लज्जारूपी कुंजी बनाकर तथा धैर्यका ताला लगाकर उस (घर)में धर्मको ( रख ) कठोर हृदयके भीतर पलकोंके द्वार बंद करके रख दिया था; किंतु इतने उपाय करनेपर भी कोई भी सफलता नहीं मिली। बुद्धिने विचार-बलके साथ परिश्रम करके उस उत्तम

( धर्मरूपी ) धनको संचित कर रखा था, जो अविचल था, कभी टला नहीं था ( मैं धर्मपर सदा दृढ़ रही ); किंतु सखी ! केवल देखकर ही ( गोपालने ) मेरा चित्त चुरा लिया, ( उसी ) सोच ( चिन्ता ) से शरीर जला जा रहा है।

[ १०८ ]

मेरौ मन तब तैं न फिर्‌यौ री।
गयौ जु संग स्यामसुंदर के,
तहँ तै कहुँ न टर्‌यौ री॥ १॥
जोबन रूप गरब धन सँचि सँचि,
हौं उर मैं जु धर्‌यौ री।
कहा कहौं कुल सील सकुच सखि,
सरवस हाथ पर्‌यौ री॥ २॥
बिन देखें मुख हरि कौ मन यह
निसि दिन रहत अर्‌यौ री।
सूरदास या वृथा लाज तैं,
कछू न काज सर्‌यौ री॥ ३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कह रही हैं—(सखी!)मेरा मन तबसे लौटा ( ही ) नहीं; ( वह ) जो श्यामसुन्दरके साथ गया ( तो ) वहाँसे कहीं (हटाने पर भी ) नहीं हटा। ( मैंने ) जो जवानी और सौन्दर्यके गर्वका धन परिश्रमपूर्वक एकत्र करके हृदयमें रखा था, सो क्या कहूँ सखी ! कुल और शील ( सदाचार ) का संकोच है, ( वस्तुतः तो ) सर्वस्व ही मेरे हाथ लग गया है। यह ( मेरा ) मन ( तो ) श्रीहरिका मुख देखे बिना रात-दिन ( वहीं ) अड़ा रहता है। इस व्यर्थकी लज्जासे कुछ भी काम नहीं बना।

राग सारंग

[ १०९ ]

यह सब मैं ही पोच करी।
स्याम रूप निरखत नैनन भरि मोहन फंद परी॥ १॥

वय किसोर कमनीय, मुगध मैं, लुवधतहुँ न.डरी ।
अब छवि गई समाइ हिए मैं, टारतहूँ न टरी ॥ २ ॥
अति सुख दुख संभ्रम ब्याकुलता,बिधु-मुख सनमुख री ।
बुधि, बिवेक, वल, बचन, बिबस ह्वै, आनँद उमँग भरी ॥ ३ ॥
जद्यपि सील सहित सुनि सूरज अंगहु ते न सरी ।
तद्यपि मुख मुरलिका बिलोकत उलटि अनंग जरी ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कह रही हैं—( सखी ! ) यह सब दोष मैंने ही किया, नेत्र भरकर श्यामसुन्दरके रूपको देखते-देखते उनके मोहित करनेवाले फंदेमें पड़ गयी । ( मेरी ) सुकुमार किशोरावस्था और ( उसपर ) विवेकरहित हूँ, ( अतः उनके प्रति ) ललचानेमें डरी नहीं। अब ( तो वह ) छवि हृदयमें प्रविष्ट हो गयी है, हटानेसे भी हटती नहीं ! (वह) चन्द्रमुख सम्मुख रहनेपर अत्यन्त सुख और (वियोग न हो जाय—इसका ) दुःख, अकुलाहट और व्याकुलता होती है; बुद्धि, विचार, बल तथा वाणी असमर्थ हो जाती है और आनन्दकी उमंग पूर्ण हो जाती है । सुनो ! यद्यपि शीलके साथ मैं अपने शरीरसे ( उनकी ओर ) चली नहीं; फिर भी ( उनके ) मुखपर वंशीको देखकर उलटे कामदेवसे जल गयी (शील-ने मुझे शान्ति नहीं दी ) ।

राग आसावरी

[ ११० ]

ना जानौं तवही तैं मोकौं स्याम कहा धौं कीन्हौ री ।
मेरी दृष्टि परे जा दिन तैं, ग्यान-ध्यान हरि लीन्हौ री ॥ १ ॥
द्वारैं आइ गए औचकहीं, मैं आँगन ही ठाढ़ी री ।
मनमोहन मुख देखि रही तब, काम बिथा तन वाढ़ी री ॥ २ ॥
नैन सैन दै दै हरि मो तन कछु इक भाव बतायौ री ।
पीतांवर उपरैना कर गहि अपनैं सीस फिरायौ री ॥ ३ ॥
लोक लाज, गुरुजन की संका, कहत न आवै बानी री ।
सूर स्याम मेरैं आँगन आए, जात वहुत पछितानी री ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कह रही हैं—( सखी ! ) नहीं जानती ( पता नहीं ) तभीसे श्यामसुन्दरने मुझे क्या कर दिया; जिस दिनसे वे मेरी दृष्टिमें पड़े ( मुझे दीखे ), ( उसी दिनसे ) मेरा सारा ज्ञान-ध्यान ( विचार और एकाग्रता ) उन्होंने छीन लिया। अचानक ही वे मेरे द्वारपर आ गये थे, मनमोहनका मुख देखकर मैं आँगनमें खड़ी रह गयी; उस समय ( मेरे ) शरीरमें कामजनित वेदना बढ़ गयी। मोहनने मेरी ओर आँखोंसे कई बार संकेत करके कुछ एक भाव सूचित किया और फिर अपना पीताम्बरका उत्तरीय हाथमें लेकर अपने मस्तकपर घुमाया। लोककी लज्जा और गुरुजनोंके संकोचके कारण ( मुखसे ) कोई बात कहते नहीं बनती थी, श्यामसुन्दर ( मेरे ) आँगनमें आये ( किंतु ) उनके ( तुरंत ही ) जाते ( समय ) मैं बहुत पछतायी।

राग सोरठ

[ १११ ]

मन हरि लीन्हौ कुँवर कन्हाई।<br>
जब तैं स्याम द्वार है निकसे,<br>
तब तैं री मोहि घर न सुहाई॥ १॥<br>
मेरे हेत आइ भए ठाढ़े,<br>
मोतैं कछु न भई री माई।<br>
तबही तैं ब्याकुल भइ डोलति,<br>
बैरी भए मात पित भाई॥ २॥<br>
मो देखत सिरपाग सँवारी,<br>
हँसि चितए, छबि कही न जाई।<br>
सूर स्याम गिरधर बर नागर<br>
मेरौ मन लै गए चुराई॥ ३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कह रही हैं—मेरा मन कुँवर कन्हैयाने चुरा लिया है। सखी ! जबसे श्यामसुन्दर मेरे द्वारसे निकले, तभीसे मुझे घर अच्छा नहीं लगता। वे तो मेरे लिये ही आकर खड़े हुए थे; किंतु

सखी ! मुझसे कुछ करते नहीं बन पड़ा। तभीसे मैं व्याकुल हुई घूमती हूँ, ( आज मेरे लिये ये ) माता-पिता तथा भाई ( भी ) शत्रु हो गये। मेरे देखते-देखते उन्होंने मस्तककी पगड़ी सम्हाली और हँसकर ( मेरी ओर ) देखा, उस शोभाका वर्णन नहीं किया जा सकता है। नटनागर वे श्रीगिरधारी श्यामसुन्दर मेरा मन चुरा ले गये।

राग धनाश्री

[ ११२ ]

प्रेम सहित हरि तेरैं आए।
कछु सेवा तैं करी कि नाहीं,
कै धौं वैसेहिं उन्हैं पठाए ॥ १ ॥
काहे तैं हरि पाग सँवारी,
क्यौं पीतांबर सीस फिराए।
गुपत भाव तोसौं कछु कीन्हौ,
घर आए काहें बिसराए ॥ २ ॥
अतिहीं चतुर कहावति राधा,
बातनहीं हरि क्यौं न भुराए।
सूर स्याम कौं बस करि लेती,
काहे कौं रहते पछिताए ? ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( श्रीराधे ! ) श्यामसुन्दर प्रेमपूर्वक तुम्हारे घर आये, ( तब ) तुमने उनकी कुछ सेवा ( खातिरदारी ) की अथवा ( उन्हें ) वैसे ही लौटा दिया ? मोहनने किसलिये पगड़ी सम्हाली ? और क्यों मस्तकपर पीताम्बर घुमाया ? ( अवश्य ही उन्होंने ) तुमसे कुछ गुप्त संकेत किया है। श्रीराधे ! तुम तो अत्यन्त चतुर कहलाती हो, ( फिर ) बातोंमें ही ( तुमने ) श्यामसुन्दरको क्यों मुग्ध नहीं कर लिया ? ( यदि आज ) श्याम सुन्दरको ( तुम ) वश कर लेतीं तो यह पश्चात्ताप क्यों रह जाता ?

राग काफी

[ ११३ ]

(मेरौ) मन न रहै कान्ह बिना, नैन तपैं माई।
नव किसोर स्याम बरन मोहिनी लगाई॥ १॥
बन की धातु चित्रित तन मोर चंद सोहै।
बनमाला लुब्ध भँवर सुर नर मन मोहै॥ २॥
नटवर वपु बेष ललित, कटि किंकिनि राजै।
मनि कुंडल मकराकृत तरुन तिलक भ्राजै॥ ३॥
कुटिल केस अति सुदेस, गोरज लपटानी।
तड़ित बसन कुंद दसन देखि हौं भुलानी॥ ४॥
अरुन सेत खुंभि वज्र खचित पदक सोभा।
मनि कौस्तुभ कंठ लसत, चितवत चित लोभा॥ ५॥
अधर सुधा मधुर मधुर मुरली कल गावै।
भ्रू बिलास मंद हास गोपिन जिय भावै॥ ६॥
कमल नैन चित के चैन निरखि मैन वारौं।
प्रेम अंस उरझि रह्यौ, उर तैं नहिं टारौं॥ ७॥
गोप भेष धरि सखि री! संग-संग डोलौं।
तन मन अनुराग भरी मोहन सँग बोलौं॥ ८॥
नव किसोर चित के चोर पल न ओट करिहौं।
सुभग चरन कमल अरुन अपने उर धरिहौं॥ ९॥
असन बसन सयन भवन हरि बिन न सुहाई।
बिन देखैं कल न परै, कहा करौं माई॥१०॥
जसुमत सुत सुंदर तन निरखि हौं लुभानी।
हरि दरसन अमल पर्‍यौ, लाज ना लजानी॥११॥
रूप रासि सुख बिलास देखत बनि आवै।
सूर मुदित रूप की छु उपमा नहिं पावै॥१२॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कह रही हैं—सखी ! श्यामसुन्दरके बिना मेरा मन टिकता नहीं, (और उन्हें देखे बिना मेरे) नेत्र संतप्त हो रहे हैं। (उन) श्यामवर्ण नवलकिशोरने मुझपर जादू कर दिया है। वनकी (गेरू, मैनसिल आदि) धातुओंसे (उनका) शरीर चित्रित था; (मस्तकपर) मयूरपिच्छकी चन्द्रिका शोभित थी, वनमालासे लुब्ध भौंरों (का ही नहीं), देवताओं तथा मनुष्योंके मनको (भी) मोहित कर रहे थे। (उनके) शरीरका श्रेष्ठ नटके समान मनोरम वेश था, कमरमें बजनेवाली करधनी सुशोभित थी, मकराकृत मणिमय कुण्डल थे और तिलककी नयी (स्पष्ट) रेखा विराजमान थी। भलीप्रकार फबते घुँघराले केश थे, जिनमें गायोंके खुरोंसे उड़ी हुई धूलि लिपटी थी; बिजलीके समान (चमकता पीला) वस्त्र था, कुन्द-पुष्प-जैसे (स्वच्छ) दाँत थे, जिन्हें देखकर मैं (अपने आपको) भूल गयी। (वक्षःस्थलपर) लाल एवं श्वेत रंगके रत्नोंसे जड़ी हुई कीलें (लौंगें) उनके कानोंमें थीं, हीरोंसे जड़ा पदक (लाकेट) शोभा दे रहा था, गलेमें कौस्तुभमणि (ऐसी) छटा दे रही थी (कि उसे) देखकर चित्त लुब्ध हो गया। अधरामृतसे सनी मधुर-मधुर ध्वनिमें सुन्दर मुरली बजा रहे थे, उनकी भौंहोंकी क्रीड़ा और मन्द हँसी तो गोपियोंके चित्तको प्यारी लगती है। चित्तको शान्ति देनेवाले उन कमललोचनको निहारकर (उनपर) कामदेवको न्यौछावर कर दूँ। हृदयमें उनका प्रेम उलझ गया है, उसे अब (हृदयसे) दूर नहीं करूँगी। अरी सखी! (इच्छा होती है कि) गोपकुमारका वेश बनाकर उनके साथ-ही-साथ घूमूँ तथा शरीर और चित्तसे अनुरागपूर्ण होकर (मैं उन) मोहनके साथ बातें करूँ। उन चितचोर नवलकिशोरको एक पलके लिये भी (नेत्रोंसे) ओझल नहीं करूँगी, उनके मनोहर लाल-लाल चरणकमल अपने हृदयपर रखूँगी। श्यामसुन्दरके बिना मुझे भोजन, वस्त्र, विश्राम और घर अच्छा नहीं लगता; सखी, क्या करूँ? उन्हें देखे बिना शान्ति नहीं मिलती। मैं (तो) यशोदानन्दनके सुन्दर शरीरको देखकर लुब्ध हो गयी हूँ और (उन) श्रीहरिके दर्शनका मुझे व्यसन हो गया है; (अब किसीकी) लज्जासे मैं लज्जित नहीं होती। उन रूपराशिकी सुखदायिनी क्रीड़ा देखते ही बनती है; मैं तो उनके सौन्दर्यसे आनन्दित हूँ, उसकी कोई उपमा नहीं मिलती।

राग गौरी

[ ११४ ]

मन मेरौ हरि संग गयौ री।
द्वारें आइ स्याम घन सजनी !
हँसि मो तन तिहि संग लयौ री ॥ १ ॥
ऐसैं मिल्यौ जाइ मोकौं तजि,
मानौ उनही पोषि जियौ री ॥ २ ॥
सेवा चूक परी जो मोतैं,
मन उन कौ धौं कहा कियौ री ॥ ३ ॥
मोकौं देखि रिसात कहत यह
तेरें जिय कछु गरब भयौ री ॥ ४ ॥
सूर स्याम छबि अंग लुभान्यौ,
मन वच क्रम मोहि छाँड़ि दयौ री ॥ ५ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कह रही हैं—मेरा मन श्यामसुन्दरके साथ चला गया। सखी ! मेरे द्वारपर आकर और मेरी ओर देखते हुए हँसकर घनश्यामने उस ( मेरे मन ) को ( अपने ) साथ ले लिया। वह ( भी ) मुझे छोड़कर उनसे ऐसे जा मिला, मानो उन्हींके पालन-पोषणसे जीता रहा हो। मुझसे ( उसकी ) सेवामें जो भूलें हुई थीं, पता नहीं मनने उनका क्या किया ( उन्हें उसने भुला दिया या अब भी वे उसे याद हैं )। ( अब ) मुझे देख और रोष करके यह कहता है कि 'तेरे चित्तमें कुछ अहंकार हो गया है।' श्यामसुन्दरके सौन्दर्यमय शरीरपर लुब्ध होकर मन, वाणी, कर्मसे ( उस मनने ) मुझे छोड़ दिया है।

राग रामकली

[ ११५ ]

मैं मन बहुत भाँति समझायौ।
कहा करौं दरसन रस अटक्यौ,
बहुरि नाहिं घट आयौ ॥ १ ॥

इन नैननि कैं भेद, रूप रस
उर मैं आनि दुरायौ।
वरजत हीं वेकाज, सपन ज्यौं
पलट्यौ नहिं जो सिधायौ ॥ २ ॥
लोक वेद कुल निदरि निडर ह्वै
करत आपनौ भायौ।
मुख छवि निरखि चौंधि निसि खग ज्यौं
हठि अपनपौ बँधायौ ॥ ३ ॥
हरि कौं दोष कहा कहि दीजै,
या अपनैं वल धायौ।
अति विपरीत भई सुनि सूरज,
मुरछ्यौ मदन जगायौ ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कह रही हैं—( सखी ! ) मैंने मनको बहुत प्रकारसे समझाया; पर क्या करूँ, वह ( मोहनके ) दर्शनके आनन्दमें उलझ गया और फिर शरीरमें लौटकर आया ही नहीं। इन नेत्रोंको अपनी ओर फोड़कर ( मिलाकर इनके मार्गसे उसने श्यामसुन्दरके ) रूपका आनन्द हृदयमें लाकर छिपाया। मैं उसे व्यर्थ ही रोकती रही; वह ( तो ) स्वप्नके समान जो चला गया सो लौटा ही नहीं। लोक ( की मर्यादा ), वेद ( की रीति ) और कुल ( के गौरव ) का अनादर करके निर्भय होकर, जो उसे प्रिय लगता है वही करता है। जैसे रात्रिमें घूमनेवाले पक्षी ( प्रकाशसे ) चकाचौंधमें पड़कर बँध जाते हैं, वैसे ही ( वह ) मोहनके मुखकी शोभा देखकर ( चकाचौंधमें पड़कर ) बरबस अपने आपको बँधवा लिया। श्यामसुन्दरको क्या कहकर दोष दिया जाय, यह ( मन ) अपने ही बलसे दौड़ पड़ा। सुनो, अत्यन्त उलटी बात तो यह हुई कि इसने मूर्छित हुए कामदेवको ( फिरसे ) जगा दिया।

राग बिलावल

[ ११६ ]

मनहि बिना का करौं सखी री।
घर तजि कैं कोउ रहत परायें, मैं तबही तैं फिरनि वही री ॥१॥
आइ अचानकहीं लै गए हरि, बार बार मैं हटकि रही री।
मेरौ कह्यौ सुनत काहे कौं, गैल गयौ हरि कैं उतहीं री ॥२॥
ऐसी करत कहूँ री कोऊ, कहा करौं मैं हारि रही री।
सूर स्याम कौं यह न बूझिऐ, ढीठ कियौ मन कौं उनहीं री ॥३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कह रही हैं---सखी! मनके बिना मैं क्या करूँ; भला, ( अपना ) घर छोड़कर कोई दूसरेके यहाँ रहता है ? मैं तो तभीसे ( उसके बिना ) भटकती घूम रही हूँ। ( वहाँ ) अचानक ही आकर श्यामसुन्दर मेरे मनको ले गये; मैं बार-बार ( उसे ) रोकती ( ही ) रह गयी। ( किंतु ) मेरा कहना ( वह ) किसलिये सुनता, ( वह तो ) उधर ही मोहनके साथ चला गया। सखी! कहीं कोई ऐसा (काम) भी करता है; क्या करूँ ? मैं तो हार गयी हूँ। श्यामसुन्दरको ऐसा नहीं करना था, उन्होंने ही ( मेरे ) मनको ढीठ बना दिया है।

राग टोड़ी

[ ११७ ]

माखन की चोरी तैं सीखे
करन लगे अब चित की चोरी।
जाकी दृष्टि परैं नँद नंदन,
फिरति सु मोहन डोरी डोरी ॥ १ ॥
लोक लाज, कुल कानि मेटि कैं
बन बन डोलति नवल किसोरी।
सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि
देखत निगम बानि भइ भोरी ॥ २ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कहती हैं—( सखी ! ) श्यामसुन्दरने अब मक्खनकी चोरीसे ( चोरी करना ) सीखकर चित्तकी चोरी करने लगे हैं; ( क्योंकि ) श्रीनन्दनन्दन जिसकी भी दृष्टिमें पड़े, वही उनके साथ बँधी-बँधी घूमती है। ( इस प्रकार व्रजकी ) नवल किशोरियाँ लोककी लज्जा और कुलका संकोच मिटाकर वन-वन घूमती हैं। स्वामी ( श्रीकृष्ण ) तो रसिक-शिरोमणि ठहरे, उन्हें देखकर वेदोंकी वाणी भी ( उनका वर्णन करनेमें ) असमर्थ हो गयी है।

राग आसावरी

[ ११८ ]

क्यौं सुरझाऊँ नंद लाल सौं
उरझि रह्यौ सजनी ! मन मेरौ।
मोहन मूरति नैक न बिसरति,
हारी कैसेहुँ करत न फेरौ॥ १॥
बहुत जतन करि घेरि सु राखति,
फिरि फिरि लरत, सुनत नहिं टेरौ।
सूरदास प्रभु के सँग डोलत,
निसि बासर निरखत नहिं डेरौ॥ २॥

( श्रीराधा कहती हैं— ) सखी ! मेरा मन श्रीनन्दलालसे उलझ गया है, उसे पृथक् कैसे करूँ। उनकी मोहिनी मूर्ति तनिक भी भूलती नहीं; मैं हार गयी, पर किसी प्रकार ( मन वहाँसे ) लौटता नहीं। अनेक उपाय करके उसे भली प्रकार रोक रखती हूँ; ( किंतु ) वह बार-बार झगड़ता है, मेरी पुकार ( डाँटना ) सुनता ही नहीं। वह तो रात-दिन सूरदासके स्वामीके साथ ही घूमता है, अपने निवासस्थानकी ओर ताकता ही नहीं।

राग बिलावल

[ ११९ ]

मैं अपनौ मन हरत न जान्यौ।
कैधौं गयौ संग हरि कै ह्वै, कैधौं पंथ भुलान्यौ॥ १॥

कैधौं स्याम हटकि है राख्यौ, कैधौं आप रतान्यौ।
काहे तैं सुधि करी न मेरी, मोपै कहा रिसान्यौ ॥ २ ॥
जवहीं तैं हरि ह्याँ ह्वै निकसे, वैर तवै तैं ठान्यौ।
सूर स्याम सँग चलन कह्यौ मोहि, कह्यौ नाहिं तव मान्यौ ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कह रही हैं—( सखी ! ) मैं अपना मन चोरी जाते जान नहीं सकी; पता नहीं, वह श्यामसुन्दरके साथ गया अथवा कहीं (लौटनेका) मार्ग ही भूल गया या उसे श्यामसुन्दरने (आनेसे) रोक रखा है अथवा वह स्वयं ( उनमें ) अनुरक्त हो गया है। ( पता नहीं ) उसने क्यों मेरा स्मरण नहीं किया ? क्या वह मुझसे रुष्ट हो गया है ? श्यामसुन्दर जभीसे यहाँ ( मेरे आगे ) होकर निकले, तभीसे उसने (मुझसे) शत्रुता ठान ली है। ( उसने पहले ) मुझे श्यामसुन्दरके साथ चलनेको कहा था, तब मैंने उसका कहना नहीं माना था।

राग गूजरी

[ १२० ]

स्याम करत हैं मन की चोरी।
कैसैं मिलत आनि पहलेहीं, कहि कहि बतियाँ भोरी ॥ १ ॥
लोक लाज की कानि गँवाई, फिरति गुड़ी बस डोरी।
ऐसे ढंग स्याम अव सीखे, चोर भयौ चित कौ री ॥ २ ॥
माखन की चोरी सहि लीन्ही, बात रही वह थोरी।
सूर स्याम भयौ निडर तवै तैं, गोरस लेत अँजोरी ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कहती हैं—(सखी !) श्यामसुन्दर (तो अब) मनकी चोरी करते हैं, (वे) कैसे पहले ही (आगे बढ़कर) भोली (प्रेम-पूर्ण) बातें कह-कहकर मिलते हैं। (मैं) लोककी लज्जा और कुलका संकोच खोकर डोरीके वश हुई पतंगकी भाँति (उनके संकेतपर) घूमती हूँ; श्यामसुन्दरने अब ऐसे ढंग सीख लिये हैं, वे चित्तके चोर (जो) हो गये हैं। मक्खनकी

चोरी तो मैंने सह ली; क्योंकि वह छोटी ( हानिकी ) बात थी। किंतु श्यामसुन्दर तो तभीसे निर्भीक हो गये और ( अब ) बलपूर्वक ( छीनकर ) गो ( इन्द्रिय )-रस लेते हैं।

राग टोड़ी

[ १२१ ]

सुनौ सखी ! हरि करत न नीकी।
आपु स्वारथी हैं मनमोहन, पीर नाहिं पर ही की ॥ १ ॥
वे तौ निठुर सदाँ मैं जानति, बात कहत मनही की।
कैसेहुँ उन्हैं हाथ करि पाऊँ, रिस मेटौं सब जी की ॥ २ ॥
चितवत नाहिं मोहि सुपनेहूँ, को जानै उन ही की।
ऐसें मिली सूर के प्रभु कौं, मनौ मोल लै बीकी ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कह रही हैं—सखियो ! सुनो, श्याम अच्छी बात नहीं करते। वे मनमोहन अपना स्वार्थ ही देखनेवाले हैं, दूसरेके चित्तकी पीड़ा उन्हें नहीं व्यापती। वे तो सदासे निष्ठुर हैं, यह मैं जानती हूँ; अपने मनकी ही बात कहती हूँ कि किसी प्रकार उन्हें पकड़ पाऊँ तो अपने चित्तका सब क्रोध मिटा लूँ। उनके हृदयकी बात कौन जान सकता है, वे स्वप्नमें भी मेरी ओर नहीं देखते। स्वामी ( श्रीकृष्ण ) को मैं ऐसी मिल गयी हूँ मानो ( मुझे ) मोल ले ( खरीद ) कर छिटका दिया हो।

राग आसावरी

[ १२२ ]

माई ! कृष्न नाम जब तैं स्रवन सुन्यौ है री,
तब तैं भूली री भौन बावरी सी भई री।
भरि भरि आवैं नैन, चित न रहत चैन,
बैन नहिं सूधौ, दसा औरै ह्वै गई री ॥ १ ॥

कौन माता कौन पिता, कौन भैन कौन भ्राता,
कौन ग्यान कौन ध्यान, मनमथ हुई री।
सूर स्याम जब तैं परे री मेरी डीठि, बाम
काम धाम लोक लाज कुल कानि नई री ॥ २॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कह रही हैं—सखी ! जबसे कृष्णनाम कानोंसे सुना है, तबसे मैं (अपने) घरको भूल पगली-सी हो गयी हूँ। (मेरे) नेत्र बार-बार आँसुओंसे भरे आते हैं, चित्तमें शान्ति नहीं है, सीधी (ठिकानेकी) बात बोली नहीं जाती और (शरीरकी) दशा कुछ दूसरी ही हो गयी है। कौन माता, कौन ,पिता, कौन बहिन और कौन भाई, कैसा विचार और कैसी एकाग्रता (यह सब भूल गयी)। मुझे तो कामदेवने मार डाला। जबसे श्यामसुन्दर मेरी दृष्टिमें पड़े हैं, तबसे (सारे) काम और घर प्रतिकूल तथा लोक-लज्जा एवं कुलकी प्रतिष्ठा झुक गयी—चली गयी है।

राग रामकली

[ १२३ ]

राधा ! तैं हरि के रँग राँची।
तो तैं चतुर और नहिं कोऊ, बात कहौं मैं साँची ॥ १॥
तैं उन कौ मन नाहिं चुरायौ, ऐसी है तू काँची।
हरि तेरौ मन अबै चुरायौ, प्रथम तुही है नाची ॥ २॥
तुम्ह औ स्याम एक हौ दोऊ, बाकी नाहीं बाँची।
सूर स्याम तेरे बस राधा ! कहति लीक मैं खाँची ॥ ३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें सखी कह रही है—श्रीराधा ! तुम श्यामसुन्दरके प्रेममें निमग्न हो गयी हो। मैं यह सच्ची बात कहती हूँ कि तुमसे (अधिक) चतुर कोई नहीं है। (क्या) तुम ऐसी कच्ची (भोली) हो कि तुमने उनका मन नहीं चुराया है ! (सखि !) श्यामसुन्दरने (तो) तुम्हारा चित्त अब चुराया है, पहले

तो तुम्हीं आगे बढ़ी थी। तुम और श्यामसुन्दर दोनों एक हो, इसमें कोई बात शेष नहीं है। श्रीराधा! मैं लकीर खींचकर (प्रतिज्ञापूर्वक) कहती हूँ कि श्यामसुन्दर तुम्हारे वशमें हैं।

राग सोरठ

[ १२४ ]

मन हरि लीन्हौ कुँवर कन्हाई।
तबही तैं मैं भई दिवानी, कहा करौं री माई॥ १॥
कुटिल अलक भीतर उरझानौ, अब निरवारि न जाई।
नैन कटाच्छ चारु अवलोकन, मो तन गए बसाई॥ २॥
निलज भई कुल कानि गँवाई, कहा ठगौरी लाई।
बारंबार कहति मैं तोकौं, तेरे हिएँ न आई॥ ३॥
अपनी सी बुधि मेरी जानति, मैं उतनी कहँ पाई।
सूर स्याम ऐसी गति कीन्ही, देह दसा बिसराई॥ ४॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कह रही हैं—(सखी!) कुँवर कन्हैयाने मेरा चित्त चुरा लिया। सखी! मैं क्या करूँ, तभीसे मैं पगली हो गयी हूँ। वह (उनकी) घुँघराली अलकोंमें उलझ गया है, (अतएव) अब पृथक् नहीं किया जा सकता। (वे) कटाक्षपूर्वक अपने नेत्रोंसे देखनेकी मनोहर भङ्गी मेरे शरीर (हृदय)में बसा गये। अतः मैं कुलके संकोचको खोकर निर्लज्ज हो गयी; पता नहीं कौन-सा जादू (उन्होंने) डाल दिया। मैं बार-बार तुझसे (अपनी दशा) कहती हूँ; किंतु तेरे चित्तमें (मेरी बात) लगती नहीं। (तू) अपनी-जैसी (अच्छी) बुद्धि मेरी भी समझती है, (पर) उतनी (बुद्धि) मैंने कहाँ पायी है। श्यामसुन्दरने (मेरे) शरीरकी सुधि भुलवाकर मेरी ऐसी दशा कर दी है।

राग रामकली

[ १२५ ]

राधा हरि अनुराग भरी।
गदगद मुख बानी परकासति, देह दसा बिसरी॥ १॥

कहति यहै मन हरि हरि लै गए, याही परनि परी।
लोक सकुच संका नहिं मानति, स्यामै रंग ढरी ॥ २ ॥
सखी सखी सौं कहति बावरी, इहिं हम कौं निदरी।
सूर स्याम सँग सदाँ रहति है, बूझेहूँ न करी ॥ ३ ॥

( कोई गोपी कह रही है—सखी ! ) श्रीराधा श्यामसुन्दरके प्रेमसे पूर्ण हो रही हैं। वे मुखसे गद्गद ( भर्राई हुई ) वाणी बोलती हैं और शरीरकी दशा भूल गयी हैं। वे यही कहती हैं—'मेरा चित्त श्यामसुन्दर चुरा ले गये।' यही धुन उन्होंने पकड़ ली है। वे लोकका संकोच और शङ्का (भय) नहीं मानतीं, ( केवल ) श्यामसुन्दरके प्रेममें ही निमग्न हैं। सूरदासजीके शब्दोंमें एक सखी दूसरी सखीसे कहती है—'अरी पगली ! इन्हों ( श्रीराधा ) ने तो हमारी उपेक्षा कर दी; ( ये स्वयं ) सदा श्यामसुन्दरके साथ रहती हैं और पूछनेपर स्वीकार भी नहीं करतीं।'

राग मलार

[ १२६ ]

सुंदर स्याम पिया की जोरी।
सखी गाँठ दै मुदित राधिका रसिक हँसी मुख मोरी ॥ १ ॥
वे मधुकर ए कंज कली, वे चतुर एहू नहिं भोरी।
प्रीति परस्पर करि दोऊ सुख बात जतन की जोरी ॥ २ ॥
वृंदावन वे सिसु तमाल ए, कनक लता सी गोरी।
सूर किसोर नवल नागर ए, नागरि नवल किसोरी ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! प्रियतम ) श्यामसुन्दर और प्रिया ( श्रीराधाजी ) की जोड़ी बड़ी सुन्दर है। ( यह कहकर ) बड़े आनन्दसे सखी ( श्यामसुन्दरके वस्त्रके साथ ) श्रीराधाके वस्त्रकी गाँठ बाँध और मुख फिराकर ( सखी ) रसिकतापूर्वक हँसी ( और बोली— ) 'वे भ्रमर हैं और ये कमल-कलिका; वे चतुर हैं तो ये भी भोली नहीं हैं। दोनोंने आपसमें ( सुखपूर्वक ) प्रेम करके अ

( हम सबको भुलावा देनेके लिये ) यत्नपूर्वक बातें ( बहाने ) गढ़ ली हैं। वे वृन्दावनके नये तमाल वृक्ष ( के समान श्याम ) हैं और ये स्वर्ण लतिकाके समान गौर। वे नागर नवलकिशोर हैं और ये नागरी नवलकिशोरी हैं।'

राग गूजरी

[ १२७ ]

सुनि सजनी! ये ऐसे लागत।
एक प्रान जुग तन सुख कारन एकौ निमिष न त्यागत ॥ १ ॥
बिछुरत नाहिं संग तैं दोऊ, बैठत सोवत जागत।
पूरब नेह आज यह नाहीं, मोसौं सुनौ अनागत ॥ २ ॥
मेरी कही साँच तुम्ह जानौ, कीजौ आगत स्वागत।
सूर स्याम राधा वर ऐसे प्रीतिहि तैं अनुरागत ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखियो! सुनो, ये ( राधा-कृष्ण ) ऐसे लगते हैं कि इनके प्राण एक हैं ( किंतु क्रीडाका ) आनन्द ( लूटने )के लिये शरीर दो बन गये हैं; एक पलके लिये भी ये एक दूसरेको छोड़ते नहीं। बैठते, सोते, जागते ( ये ) दोनों एक दूसरेके साथसे अलग नहीं होते; ( इनका ) प्रेम आजका नहीं, पहलेका ( अवतार-धारणसे पूर्वका ) है और ( सदा ) आगे भी रहेगा, यह बात मुझसे सुन लो। मेरा कहना तुम सच समझो और इनका स्वागत-सत्कार करो। श्रीराधाकान्त श्यामसुन्दर ऐसे हैं, जो प्रेमसे ही अनुरक्त होते ( रीझते ) हैं।

राग जैतश्री

[ १२८ ]

सखीं सखी सौं धन्य कहैं।
इन कौं हम ऐसे नहिं जाने, ब्रज भीतर ये गुप्त रहैं ॥ १ ॥
धन्य धन्य तेरी मति साँची, हम इन कौं कछु और कहैं।
राधा कान्ह एक हैं दोऊ, तौ इतनौ उपहास सहैं ॥ २ ॥
वे दोउ एक, दुसरी तू है, तोहू कौं सखि स्याम चहैं।
सूर स्याम धनि औ राधा धनि, तुह्र धन्य हम वृथा बहैं ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें सखियाँ उस ( पूर्वकथित ) सखीको 'धन्य' कहती हैं। ( वे कहती हैं— ) इन ( श्रीराधा-कृष्ण ) को हमने इस रूपमें नहीं जाना था। व्रजके भीतर ये गुप्त रहते हैं ( अपना अभेद प्रकट नहीं करते )। तेरे सच्चे विचार धन्य हैं; धन्य हैं। हम तो इनको कुछ और ही कहती थीं। ( जब ) राधा और कृष्ण दोनों एक हैं, ( तब ) इतना उपहास ( लोकनिन्दा क्यों ) सहते हैं। वे दोनों तो एक हैं ही, दूसरी ( उनकी प्रिय ) तू है; सखी ! श्याम तुझे भी ( तो ) प्यार करते हैं। श्यामसुन्दर धन्य हैं, श्रीराधा धन्य हैं और तू भी धन्य है; हम व्यर्थ ही भटकती ( मिथ्या धारणा करती ) हैं।

राग पूरवी

[ १२९ ]

राधा मोहन सहज सनेही।
सहज रूप गुन, सहज लाड़िले, एक प्रान द्वै देही ॥ १ ॥
सहज माधुरी अंग अंग प्रति, सहज सदाँ बन गेही।
सूर स्याम स्यामा दोउ सहज सहज प्रीति करि लेहीं ॥ २ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! ) श्रीराधा-कृष्ण परस्पर स्वभावसे ही प्रेम करते हैं। उनका सौन्दर्य एवं गुण स्वाभाविक ( नित्य ) हैं, स्वभावसे वे प्यारे हैं, दोनोंके प्राण एक और शरीर ( ही ) दो हैं। उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें स्वाभाविक माधुर्य है और स्वभावसे ही ( वे ) सदासे वन ( निकुञ्ज ) में रहनेवाले हैं; श्यामसुन्दर और श्रीराधिका अनायास ही परस्पर स्वाभाविक प्रेम करते हैं।

राग आसावरी

[ १३० ]

राधा नँद नंदन अनुरागी।
भय चिंता हिरदैं नहिं एकौ, स्याम रंग रस पागी ॥ १ ॥

हरदै चून रँग, पै पानी ज्यौं दुबिधा दुहु की भागी।
तन मन प्रान समरपन कीन्हौ, अंग अंग रति खागी॥ २॥
ब्रज बनिता अवलोकन करि करि प्रेम बिबस तन त्यागी।
सूरदास प्रभु सौं चित लाग्यौ, सोवत तैं मनु जागी॥ ३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कहती है—( सखी ! ) श्रीराधा नन्दनन्दनमें अनुरक्त हैं। उनके हृदयमें भय या चिन्ता कुछ भी नहीं, वे तो श्यामसुन्दरके प्रेमके आनन्दमें निमग्न हैं। ( उन दोनोंके ) हृदय चूने-हल्दी अथवा दूध-पानीके समान एक हो गये हैं और दोनों ओरका ( सब ) संकोच दूर हो गया है। ( उन्होंने अपने ) शरीर, चित्त, प्राण ( सब कुछ श्यामसुन्दरको ) समर्पित कर दिये हैं, प्रेम ( उनके ) अङ्ग-प्रत्यङ्गोंमें धँस गया है। व्रजनारियाँ बार-बार उन्हें देख और प्रेमविवश होकर शरीरकी सुधि भूल गयी हैं। उनका चित्त स्वामी ( श्रीकृष्ण ) से ( ऐसा ) लग गया है, मानो सोतेसे जाग गयी हों।

राग मारू

[ १३१ ]

गोपी स्याम रंग राँची।
देह गेह सुधि बिसारि, बढ़ी प्रीति साँची॥ १॥
दुबिधा उर दूरि भई, गइ मति वह काँची।
राधा तैं आप बिबस भई उघरि नाची॥ २॥
हरि तजि जो और भजै, पुहुमि लीक खाँची।
मात पिता लोक भीति वाकी नहिं बाँची॥ ३॥
सकुच जबै आवै उर, बार बार झाँची।
सूर स्याम पद पराग, ता ही मैं माची॥ ४॥

गोपी श्यामसुन्दरके अनुरागमें रँग गयी है, शरीर और घरका स्मरण भूलकर ( उसकी ) सच्ची प्रीति बढ़ गयी है। हृदयसे द्विविधा दूर हो गयी और ( वह ) कच्ची बुद्धि ( अधूरी समझ, जिसमें संकोच था )

चली गयी । ( उसने ) श्रीराधासे भी अधिक विवश होकर ( अपनी ) प्रीति प्रकट कर दी । पृथ्वीपर लकीर खींच दी ( दृढ़ निश्चय कर लिया ) कि श्रीहरिको छोड़ वह किसी औरसे प्रेम नहीं करेगी । माता-पिता तथा समाजका भय शेष नहीं रहा । जब भी हृदयमें संकोच आता है, वह बार-बार ( अपनेपर ) पछताती है । सूरदासजी कहते हैं कि वह श्यामसुन्दरके चरण-कमलकी धूलिमें ही निमग्न हो रही है ।

[ १३२ ]

**स्याम जल सुजल ब्रज नारि खोरैं ।**
**नदी माला जलज, तट भुजा अति सबल,**
**धार रोमावली जमुन भोरैं ॥ १ ॥**
**नैन ठहरात नहिं, बहत अति तेज सौं,**
**तहाँ गयौ चित धीर न सम्हारै ।**
**मन गयौ तहाँ, आपुन रहीं निकट जल,**
**एक इक अंग, छबि सुधि बिसारैं ॥ २ ॥**
**करति असनान सब प्रेम बुड़कीहि दै,**
**समझि जिय होइ भजि तीर आवैं ।**
**सूर प्रभु स्याम जल रासि, ब्रजवासिनीं,**
**करतिं अनुमान नहिं पार पावैं ॥ ३ ॥**

श्यामसुन्दरकी कान्तिरूपी उत्तम जलमें व्रजनारियाँ स्नान करती हैं । ( मोहनके उरकी ) कमलोंकी माला ( ही मानो ) नदी है, ( उनकी ) अत्यन्त बलवान् भुजाएँ तट हैं और ( सुन्दर ) रोमावली यमुनाकी धारा है । ( उसपर ) नेत्र टिकते नहीं, ( वह ) अत्यन्त वेगसे बह रही है; वहाँ पहुँचनेपर चित्त धैर्य नहीं रख पाता । मन तो वहाँ ( उस छविमें ) पहुँच ( ही ) गया, स्वयं ( गोपियाँ भी उस ) जलके पास खड़ी हैं, ( श्यामके ) एक-एक अङ्गकी शोभाको देखकर वे ( अपनी ) सुधि भुला देती हैं । प्रेमरूपी

डुबकी लगाकर सब उस ( छटा ) में स्नान करती हैं और जब चित्तमें समझ ( सावधानी ) आती है, तब भागकर किनारे आ जाती हैं। सूरदासजी कहते हैं—मेरे स्वामी श्यामसुन्दरकी जल ( कान्ति )-राशिका व्रजकी स्त्रियाँ अनुमान करती हैं ( कि वह कितनी है ), किंतु ( उसका ) पार नहीं पातीं !

राग बिलावल

[ १३३ ]

स्याम रंग राँची ब्रज नारीं।
और रंग सब दीन्हे डारी ॥ १ ॥
कुसुम रंग गुरुजन पितु माता।
हरित रंग भगनी औ भ्राता ॥ २ ॥
दिनाँ चारि मैं सब मिटि जैहै।
स्याम रंग अजराइल रैहै ॥ ३ ॥
उज्ज्वल रंग गोपिका नारी।
स्याम रंग गिरिबर के धारी ॥ ४ ॥
स्यामहि मैं सब रंग बसेरौ।
प्रगट बताइ देउँ का झेरौ ॥ ५ ॥
अरुन सेत सित सुंदर तारे।
पीत रंग पीतांबर धारे ॥ ६ ॥
नाना रंग स्याम गुनकारी।
सूर स्याम रँग घोष कुमारी ॥ ७ ॥

सूरदासजी कहते हैं—व्रजनारियाँ श्याम रंगमें रँग गयी हैं, दूसरे सब रंग ( उन्होंने ) त्याग दिये हैं। गुरुजन ( बड़े लोग ), पिता और माता कुसुंभी ( गहरे लाल रंग ) हैं और बहिन तथा भाई हरे रंगके समान हैं। ( किंतु ये कुसुंभी और हरे रंग ) चार दिन ( थोड़े समय ) में मिट जायँगे ( नष्ट हो जायँगे ), केवल श्याम रंग ही स्थायी ( हमेशा रहनेवाला, शाश्वत ) रहेगा। गोपनारियाँ ( स्वयं ) श्वेत रंगकी ( पवित्र ) और

गिरिराज गोवर्धनको धारण करनेवाले गोविन्द श्यामरंगके हैं। (उन) श्याम रंगमें ही सभी रंगोंका निवास है— इसे प्रत्यक्ष बता दूँ, (इसमें) झगड़ा (ही) क्या! उनके नेत्रके गोलक ही लाल, श्वेत और काले रंगके तथा पीले रंगका (वे) पीताम्बर पहिने हैं; अतः गुणवान् श्यामसुन्दर नाना रंगोंसे युक्त हैं। व्रजकुमारियाँ (उनके) श्याम रंगमें (ही) रँगी हुई हैं।

राग बिहागरौ

[ १३४ ]

**स्याम रूप मैं री मन अरथ्यौ।**
**लटु ह्वै लटक्यौ, फेरि न मटक्यौ, बहुतै जतन करथ्यौ ॥ १ ॥**
**ज्यौं ज्यौं खैंचति मगन होत त्यौं, ऐसी धरनि धरथ्यौ।**
**मोसौं वैर करत, उन के ह्याँ देखौ जाइ ढरथ्यौ ॥ २ ॥**
**ज्यौं सिवछत दरसन रबि पाऐ तेहीं गरति गरथ्यौ।**
**सूरदास प्रभु रूप थक्यौ, मनु कुंजर पंक परथ्यौ ॥ ३ ॥**

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—(सखी!) मेरा मन श्यामके रूपमें फँस गया है; मैंने बहुत प्रयत्न किये, पर (वह) फिर हिलातक नहीं, (उसीपर) लट्टू (मुग्ध) होकर (वहीं) उलझ गया। उसने (वहाँ) ऐसी टेक (पकड़) पकड़ी है कि जैसे-जैसे (मैं उसे) खींचती हूँ, वैसे-वैसे (ही वह वहीं) डूबता जाता है। देखो तो, मुझसे (वह) शत्रुता करता है और उनके यहाँ जाकर अनुकूल बन गया है। जैसे सूर्यका दर्शन मिलनेसे शिव-क्षत (घावविशेष) गलता जाता है, उसी प्रकार वह (मनमोहनका दर्शन पाकर) गल गया (उनमें मिल गया) है। स्वामीके रूपमें (डूबकर) वह ऐसा शिथिल हो गया है, जैसे हाथी कीचड़ (दलदल) में पड़ा हो। (एक सज्जनने 'सिवछत' को शिवजीका प्रस्वेद बताकर इसका अर्थ शिलाजतु किया है। जैसे शिलाजतु सूर्यका दर्शन पाकर पिघल जाता है, वैसे ही गोपीका मन भी श्यामसुन्दरके दर्शनसे द्रवित हो गया।)

राग देवसाख

[ १३५ ]

निस दिन इन्ह नैनन कौं आली !
नंदलाल की रहै लालसाइ ।
मुरली तान परी है स्रवनन,
कैसेहुँ टुरत नाहिं जदुराइ ॥ १ ॥
कहा कहौं तोसौं यह सजनी,
मन मेरौ लै गए चुराइ ।
सूर स्याम कौ नाम धरौ, पुनि
धरि न जाइ सुधि रहै न माइ ॥ २ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी ! ( मेरे ) इन नेत्रोंको रात-दिन श्रीनन्दलाल ( के देखनेकी ही ) लालसा ( लगी ) रहती है । जबसे ( उनकी ) मुरलीकी ध्वनि कानोंमें पड़ी है, ( तबसे ) श्रीयदुनाथ किसी प्रकार ( हृदयसे ) दूर नहीं होते । सखी ! तुझसे यह क्या कहूँ कि वे मेरा मन चुरा ले गये । मैं तो ( उस कार्यके लिये ) श्यामसुन्दरका ( ही ) नाम धरती ( उन्हींको चोरी लगाती ); किंतु वह धरा नहीं जाता । सखी ! ( धरनेकी ) सुधि ( ही किसे ) रहती है ( अर्थात् नहीं रहती ) ।

[ १३६ ]

मन न रहै सखि ! स्याम बिना ।
अतिहीं चतुर सुजान जानमनि, वा छबि पै मैं भई लिना ॥ १ ॥
मन तौ चोरि लियौ पहलेहीं, झुरि झुरि कैं ह्वै रही छिना ।
अपनी दसा कहौं कासौं मैं, बन बन डोलौं रैन दिना ॥ २ ॥
वे मोहन मन हरत सहजहीं, हरि लै ताकौ करत हिना ।
सूरदास प्रभु रसिक रसीले, बहु नायक है नाउ जिना ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है— सखी ! श्यामके बिना मेरा मन रहता नहीं, वे अत्यन्त चतुर और सबकी दशा जाननेवाले, सुजान-शिरोमणि हैं; उनकी उस शोभामें मैं लीन हो गयी हूँ । उन्होंने

मेरा मन तो पहिले ही चुरा लिया, ( अब ) मैं सूख-सूखकर काँटा हो रही हूँ। अपनी अवस्था मैं किससे कहूँ, रात-दिन वन-वन घूमती रहती हूँ। वे तो मोहन ( ही ) ठहरे, अनायास ( सबका ) मन हर लेते हैं और हरकर उसे मेंहदी ( के समान पीसकर लाल-अनुरागमय ) बना देते हैं। वे स्वामी, जिनका नाम ही बहुनायक ( बहुतोंसे प्रेम करनेवाला ) है, रसिक हैं, रसमय हैं।

राग सारंग

[ १३७ ]

नैनन नींद गई री निसि दिन,
पल पल छतियाँ लग्यौ रहै धरकौ।
उत मोहन मुख मुरलि, सुनत सखि!
सुधि न रही, इत घैरा घर कौ ॥ १ ॥
ननदी तौ न दिए बिन गारी
रहति, सास सपनेहुँ नहि ढरकौ।
माइ निगोड़ी कानन मैं लिएँ
रहै, मेरे पाँइन कौ खरकौ ॥ २ ॥
निकसन हू पैऐ नहिं, कासौं
दुख कहिऐ, देखे नहिं हरि कौं।
सूरदास प्रभु तन मेरौ ज्यौं
भयौ हाथ पाथर तर कौ ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी! मेरे नेत्रोंसे निद्रा रात-दिनके लिये चली गयी, प्रत्येक पल छातीमें धड़कन लगी रहती है। सखी! उधर मोहनके मुखसे वंशी बजती है और इधर ( उसे ) सुनकर घर-घर होनेवाली अपकीर्तिका स्मरण ही नहीं रहता। ( मेरी ) ननद तो गाली दिये बिना रहती नहीं, सास स्वप्नमें भी अनुकूल नहीं होती तथा निगोड़ी माता अपने कानोंमें मेरे पैरोंका खटका ( मैं कहीं जाती तो नहीं, यह आहट) लिये रहती

है ( जिससे बिना हुई आहट भी उसे सुनायी देती रहती है )। ( मैं घरसे ) निकल भी नहीं पाती, अतः श्यामसुन्दरको न देख पानेके दुःख किससे कहूँ । स्वामी ( श्यामसुन्दर ) के बिना मेरे शरीरकी ऐसी दशा ( परवशता ) हो रही है, जैसे पत्थरके नीचे दबा हाथ हो।

राग सुघराई

[ १३८ ]

मोहन मुरलि बजाइ रिझाई,
तिनहीं हौं मोही, मोही री।
साँझ समैं निकरे ह्वै आँगन,
हौं तब तैं चितवति ओही री ॥ १ ॥
काकी देह, गेह सुधि काकैं,
को हैं हरि, मैंहूँ को ही री।
तेरे कहें कहति हौं बानी,
तब तैं मैं इकटक जोही री ॥ २ ॥
मिलत नाहिं, नहिं सँग तैं त्यागत,
कहा करौं, बूझौं तोही री।
सूर स्याम तब तैं नहिं आए,
मन जब तैं लीन्हौ दोही री ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—अरी ( सखी ! ) मोहनने वंशी बजाकर मुझे विमुग्ध कर लिया, मैं उन्हींपर मोहित हूँ, ( निश्चय ) मोहित हूँ। संध्याके समय वे मेरे आँगनमें ( द्वारके सम्मुख ) होकर निकले, तभीसे मैं उन्हींकी ( उनके आनेके पथकी ) ओर देख रही हूँ। किसका शरीर, घरकी सुधि किसे, हरि कौन हैं और मैं भी कौन थी ( मुझे तो यह पता ही नहीं )। तेरे कहनेसे ( मैं भी ) वाणीसे बोल रही हूँ, ( नहीं तो ) मैं तभीसे अपलक उनकी प्रतीक्षा कर रही हूँ। वे न तो मिलते हैं और न अपने संगसे ( मुझे ) छोड़ते हैं; तुझसे ही पूछती हूँ कि ( बता ) मैं क्या करूँ। जबसे मेरा मन उन्होंने आकर्षित कर लिया, तबसे ( वे ) श्यामसुन्दर इधर फिर नहीं आये।

राग अड़ानो

[ १३९ ]

व्रज की खोरिहिं ठाढ़ौ साँवरौ,
तिन्ह हौं मोही री, मोही री।
जब तैं देखे स्याम सुँदर सखि,
चलि नहिं सकति काम द्रोही री ॥ १ ॥
को ल्याई, किन्ह चरन चलाई,
बहियाँ गही, सु धौं को ही री।
सूरदास प्रभु देखि न सुधि बुधि,
भइ विदेह बूझति तोहीं री ॥ २ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—अरी ! श्यामसुन्दर व्रजकी गलीमें ही खड़े थे, उन्होंने (खड़े-खड़े ही) मुझे मोहित कर लिया; (निश्चय ही मुझे) मोहित कर लिया। सखी ! जबसे श्यामसुन्दरको देखा है, (तबसे) कामदेवने मेरे साथ ऐसा वैर ठाना है कि (उसके मारे) मैं चल नहीं पाती। (मुझे वहाँसे घर) कौन ले आयी ? किसने मेरे पैरोंमें गति दी ? और जिसने मेरा हाथ पकड़ा, वह न जाने कौन थी ? स्वामी (श्रीकृष्ण) को देखकर मैं सुधि एवं समझरहित विदेह (संज्ञाहीन) हो गयी, इसलिये तुझसे पूछती हूँ।

राग सुघराई

[ १४० ]

आँखिन मैं बसै, जिय मैं बसै,
हिय मैं बसत निसि दिवस प्यारौ।
तन मैं बसै, मन मैं बसै,
रसना हू मैं बसै नँदवारौ ॥ १ ॥
सुधि मैं बसै, बुधिहू मैं बसै,
अंग अंग बसै मुकुटवारौ।
सूर बन बसै, घरहू मैं बसै,
संग ज्यौं तरंग जल न न्यारौ ॥ २ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! ) वे मेरे ( श्यामसुन्दर ) प्रियतम रात-दिन नेत्रोंमें बसते हैं, चित्तमें बसते हैं और हृदयमें बसते हैं; ( वे ) नन्दकुमार मेरे शरीरमें बसते हैं, मनमें बसते हैं और वाणीमें भी बसते हैं; ( वे ) मयूर-मुकुटधारी मेरी स्मृतिमें बसते हैं, समझमें भी बसते हैं और अङ्ग-प्रत्यङ्गमें बसते हैं। ( यही नहीं, वे ) वनमें बसते हैं, घरमें भी बसते है; ( मेरे ) साथसे वे ( उसी प्रकार ) पृथक् नहीं होते, जैसे तरङ्गोंसे जल ( पृथक् नहीं होता )।

राग सोरठ

[ १४१ ]

नंद नँदन बिन कल न परै।
अति अनुराग भरीं जुवतीं सब,
जहँ स्याम तहँ चित्त ढरै॥ १॥
भवन गईं, मन तहाँ न लागै,
गुरु, गुरुजन अति त्रास करैं।
वे कछु कहैं, करैं कछु औरै,
सास ननद तिन्ह पै झहरैं॥ २॥
यहै तुम्हैं पितु मात सिखायौ,
बोल करति नहिं, रिसन जरैं।
सूरदास प्रभु सौं चित उरझ्यौ,
यह समझैं जिय ग्यान धरैं॥ ३॥

( व्रजकी नारियोंको ) श्रीनन्दनन्दनके बिना शान्ति नहीं मिलती। (वे) सब ( श्यामसुन्दरके ) अत्यन्त अनुरागसे पूर्ण हैं; जहाँ श्यामसुन्दर होते हैं वहीं ( पहुँचनेको उनका ) चित्त ढरता ( चाहता ) है। घर जाती हैं, ( तो ) वहाँ मन लगता नहीं; अतः बड़े-बूढ़े लोग बहुत डाँटते हैं। वे लोग कुछ कहते हैं और ये कुछ और ही करती हैं। ( इधर ) सास और ननद उनपर झल्लाती हैं। ( वे कहती हैं— ) तुम्हें माता-पिताने यही सिखलाया है, ( जो ) कहना नहीं करती हो ? ( फलतः ) वे क्रोधसे जलती रहती

हैं; ( किंतु ) उनका स्वामी ( श्रीकृष्ण ) से चित्त उलझ गया ( उनके प्रेममें लग गया ) है; यह समझकर वे ( गोपियाँ ) अपने-अपने हृदयोंमें बोध ( धैर्य ) धारण करती हैं ।

राग सारंग

[ १४२ ]

हम अहीर ब्रजवासी लोग ।
ऐसें चलौ हँसै नहिं कोऊ,
घर मैं बैठि करौ सुख भोग ॥ १ ॥
दही मही लौनी घृत बेचौ,
सबै करौ अपने उदजोग ।
सिर पै कंस मधुपुरी बैठ्यौ,
छिनकै मैं करि डारै सोग ॥ २ ॥
फूँकि फूँकि धरनीं पग धारौ,
अब लागीं तुम करन अजोग ।
सुनो सूर अब जानौंगी तब,
जब देखौ राधा संजोग ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपियोंसे उनके घरकी स्त्रियाँ—सास-ननद आदि कहती हैं—( अरे, ) हम व्रजवासी लोग तो अहीर हैं; ( अतः ) इस प्रकार व्यवहार करो, जिससे कोई ( तुमपर ) हँसे नहीं, घरमें रहकर ( सब प्रकारके ) सुख भोगो । दही, मट्ठा, मक्खन और घी बेंचो और अपने घरके सब धंधे करो । (जानती नहीं ?) सिरपर ( पास ही ) मथुरामें राजा कंस बैठा है; ( अतः कोई अनुचित बात होनेपर ) वह एक क्षणमें ही दुखी कर डालेगा । ( इसलिये ) पृथ्वीपर फूँक-फूँककर पैर रखो ( बहुत सावधानीसे व्यवहार करो ) । तुम ( तो वह न करके ) अब अनुचित व्यवहार करने लगी हो । ( गोपियाँ मन-ही-मन उत्तर देती हैं—) 'अब सुनो ! श्यामसुन्दर-का आकर्षण ( तुम ) तब समझोगी, जब श्रीराधाका मिलन देखोगी ।'

राग बिहागरौ

[ १४३ ]

बिधनाँ यह संगति मोहि दीन्ही।
इन कौ नाउँ प्रात नहिं लीजै, कहा निठुरई कीन्ही ॥ १ ॥
मनमोहन गोहन बिन अब लौं मनु बीते जुग चारि।
बिमुखन तें मैं कब धौं छूटौं, कब मिलिहौं बनवारि ॥ २ ॥
इक इक दिन बिहात कैसेहूँ, अब तौ रह्यौ न जाइ।
सूर स्याम दरसन बिन पाएँ बार बार अकुलाइ ॥ ३ ॥

( कोई गोपी मन-ही-मन कहती है— ) विधाताने मुझे यह कुसङ्गति दी है ! अरे, इन ( लोगों ) का तो सवेरे नाम ( भी ) नहीं लेना चाहिये, अतः ( इनमें बसाकर उसने ) कितनी निष्ठुरता की है। मनमोहनके साथ बिना ( मुझे तो ऐसा लगता है ) मानो अबतक चार युग बीत गये हों। पता नहीं इन ( श्याम- ) विमुखों ( विरोधी लोगों ) से ( मैं ) कब दूर हो सकूँगी और कब श्रीवनमालीसे मिलूँगी। ( मेरा ) एक-एक दिन किसी प्रकार बीतता है, अब तो रहा नहीं जाता। सूरदासजी कहते हैं कि ( वह गोपी ) श्यामसुन्दरका दर्शन पाये बिना इस प्रकार बार-बार व्याकुल होती है।

राग सोरठ

[ १४४ ]

बिमुख जनन कौ संग न कीजै।
इन्ह के बिमुख बचन सुनि स्रवनन दिन दिन देही छीजै ॥ १ ॥
मोकौं नेक नाहिं ए भावत, परबस कौ का कीजै।
धिक जीवन ऐसौ बहु दिन कौ, स्याम भजन पल जीजै ॥ २ ॥
धिक इहि घर, धिक इन्ह गुरुजन कौं, इन में नाहिं बसीजै।
सूरदास प्रभु अंतरजामी, यहै जानि मन लीजै ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी मन-ही-मन कहती है—श्याम-विमुख ( विरोधी ) लोगोंका साथ नहीं करना चाहिये; ( क्योंकि ) इनकी ( श्याम- ) विरोधी बातें कानोंसे सुन-सुनकर दिनोदिन शरीर दुर्बल होता है। मुझे ये लोग तनिक भी अच्छे नहीं लगते, ( किंतु ) पराधीन होनेसे क्या कर सकती हूँ। ऐसे दीर्घकालीन जीवनको धिक्कार है; ( चाहे ) पलभर ही जीना हो, ( किंतु वह ) श्यामसुन्दरके भजन ( समागम ) का हो। इस घरको धिक्कार और इन गुरुजनोंको धिक्कार, इन लोगोंके बीच निवास नहीं करना चाहिये। स्वामी! आप ( तो ) सबके हृदयकी दशा जाननेवाले हैं, अतः ( मेरी ) यह ( दशा अपने ) मनमें समझ लीजिये।

राग नट

[ १४५ ]

राधा स्याम रंग रँगी।
रोम रोमनि भिदि गयौ सब, अंग अंग पगी ॥ १ ॥
प्रीति दै मन लै गए हरि, नंद नंदन आप।
कृष्न रस उनमत्त नागरि, दुरत नहिं परताप ॥ २ ॥
चली जमुना जाति मारग, हृदै यहै बिचार।
सूर प्रभु कौ दरस पाऊँ निगम अगम अपार ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी अपनी सखीसे कह रही है—( सखी! ) श्रीराधा श्यामसुन्दरके प्रेममें निमग्न हैं; ( वह प्रेम उनके ) रोम-रोममें प्रविष्ट हो गया है, ( वे ) अङ्ग-प्रत्यङ्गसे ( उसीमें ) डूबी हैं। स्वयं नन्दनन्दन ( अपना ) प्रेम ( उन्हें ) देकर ( बदलेमें उनका ) मन चुरा ले गये; ( इसीसे ) नागरी ( श्रीराधा ) कृष्णप्रेममें पगली हो गयी हैं और उनके प्रेमका प्रभाव छिपता नहीं। ( वे ) हृदयमें यही विचार करती हुई श्रीयमुनाको जानेके मार्गसे चली जा रही हैं कि ( वहाँ ) वेदों एवं पुराणोंके लिये भी अपार मेरे स्वामी ( श्रीकृष्ण ) का दर्शन ( अवश्य ) पाऊँगी।

राग बिहागरो

[ १४६ ]

बीच कियौ कुल लज्जा आइ।
सुनि नागरी ! बकसियै मोकौं, सनमुख आए धाइ ॥ १ ॥
चूक परी हरि तैं मैं जानी, मन लै गए चुराइ।
ठाढे रहे सकुचि तो आगैं, राख्यौ बदन दुराइ ॥ २ ॥
तुम हौ बड़े महर की बेटी, काहैं गई भुलाइ।
सूर स्याम हैं चोर तिहारे, छाँड़ि देहु डरपाइ ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी श्रीराधासे कह रही है---परम चतुर श्रीराधा, सुनो ! मुझे ( यह कहनेके लिये ) क्षमा करना, कुलकी लज्जाने ही आकर ( तुम्हारे मोहनसे मिलनमें ) बाधा डाली, वे तो दौड़कर ( तुम्हारे ) सामने आये थे। श्यामसुन्दरसे ( एक ) भूल हो गयी, ( उसे ) मैं समझ गयी, ( जो वे ) तुम्हारा मन चुरा ले गये। ( जान पड़ता है इसीलिये वे ) तुम्हारे सम्मुख संकोचपूर्वक खड़े थे, ( इधर तुमने भी अपना ) मुख ( घूँघटसे ) छिपा रखा था। ( किंतु ) तुम बड़े गोपनायककी पुत्री हो, यह बात ( तुम ) क्यों भूल गयीं ? ( अरी ) श्यामसुन्दर ( तो ) तुम्हारे चोर हैं, ( अतः ) ( उन्हें ) डराकर छोड़ दो।

राग गौरी

[ १४७ ]

कुल की लाज अकाज कियौ।
तुम बिन स्याम सुहात नहीं कछु,
कहा करौं अति जरत हियौ ॥ १ ॥
आप गुपत करि राखी मोकौं,
मैं आयसु सिर मानि लियौ।
देह गेह सुधि रहति बिसारें,
तुम्ह तैं हित नहिं और बियौ ॥ २ ॥

अब मोकौं चरनन तर राखौ,
हँसि नँद-नंदन अंग छियौ।
सूर स्याम श्रीमुख की बानी,
तुम पैं प्यारी ! बसत जियौ ॥ ३ ॥

( श्रीराधा कह रही हैं— ) कुलकी लज्जाने ( मेरा ) कार्य बिगाड़ दिया, ( अन्यथा ) श्यामसुन्दर ! तुम्हारे बिना मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता, क्या करूँ ? हृदय अत्यन्त जलता रहता है । तुमने स्वयं ही मुझे ( अपना प्रेम ) छिपाकर रखनेको कहा था और ( वह ) आज्ञा मैंने आदर-पूर्वक मान ली; ( किंतु मैं अपने ) शरीर और घरकी सुधि भूली रहती हूँ, ( इसलिये मेरा प्रेम बरबस प्रकट हो जाता है ); तुमको छोड़कर मेरा कोई दूसरा हितैषी ( भी तो ) नहीं है, ( जिससे मैं अपने मनकी बात कह सकूँ ) । अब मुझे अपने चरणोंके नीचे ( अपने पास ) रख लो । सूरदासजी कहते हैं—( यह सुनकर ) मनमोहनने हँसकर उनके अङ्गका स्पर्श किया ( उन्हें हृदयसे लगाया ) और श्यामसुन्दर ( अपने ) श्रीमुखसे बोले—'प्यारी ! मेरा चित्त तो तुममें ही निवास करता है ।'

राग बिहागरौ

[ १४८ ]

सुंदर स्याम कमल दल लोचन !
बिमुख जननि की संगति कौ दुख
कब धौं करिहौ मोचन ॥ १ ॥
भवन मोहि भाठी सौ लागत,
मरति सोचहीं सोचन ।
ऐसी गति मेरी तुम्ह आगैं,
करत कहा जिय दोचन ॥ २ ॥
धिक वे मातु पिता, धिक भ्राता,
देत रहत मोहि खोंचन ।
सूर स्याम मन तुमहिं लगान्यौ,
हरद चून रँग रोचन ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा पुनः कह रही हैं—कमलदलके समान नेत्रोंवाले श्यामसुन्दर ! तुमसे विमुख लोगोंके साथ रहनेका मुझे जो दुःख है, उसे कब दूर करोगे ? घर तो मुझे ( जलती ) भट्ठी-जैसा लगता है, चिन्ता-ही-चिन्तामें मैं मरी जाती हूँ। तुम्हारे सम्मुख मेरी यह दशा है; ( फिर भी ) तुम ( अपने ) मनमें क्या ( किसका ) दबाव मानते हो ? उन माता-पिताको धिक्कार है, उस भाईको धिक्कार है, ( जो ) मुझे बराबर कुरेदते ( त्रास देते ) रहते हैं। ( किंतु ) श्यामसुन्दर ! मैंने अपना मन तुममें इस प्रकार लगा दिया है ( एकाकार कर दिया है ) जैसे हल्दी और चूना मिलकर ( रोलीके रूपमें ) लाल रंगके हो जाते हैं।

राग रामकली

[ १४९ ]

कुल की कानि कहाँ लगि करिहौं।<br>
तुम्ह आगें मैं कहौं जु साँची, अब काहू नहिं डरिहौं ॥ १ ॥<br>
लोग कुटँब जग के जे कहियत, पहलें सबहि निदरिहौं।<br>
अब यह दुख सहि जात न मोपैं, बिमुख बचन सुनि मरिहौं ॥ २ ॥<br>
आप सुखी तौ सब नीके हैं, उन्ह के सुख का सरिहौं।<br>
सूरदास प्रभु चतुर सिरोमनि, अबकैं हौं कछु लरिहौं ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कह रही हैं—( सखी ! ) कुलका संकोच ( मैं ) कहाँतक करूँगी; तुम्हारे सामने मैं ( यह ) सच्ची बात कहती हूँ कि अब ( मैं ) किसीसे नहीं डरूँगी। जगत्के जो भी कुटुम्बीजन कहे जाते हैं, पहिले ( उन ) सबका अनादर ( उपेक्षा ) करूँगी। अब यह दुःख मुझसे सहा नहीं जाता, ( इन ) विरोधी लोगोंकी बातें सुनकर मैं मर जाऊँगी ( प्राण त्याग दूँगी ) ! यदि स्वयं सुखी रहे तो सभी ( सम्बन्ध ) अच्छे हैं, ( नहीं तो ) उनके सुखसे मैं ( अपना ) कौन-सा काम बना सकूँगी। स्वामी ! तुम चतुर-शिरोमणि हो, इस बार मैं ( तुमसे ) कुछ झगड़ा करूँगी।

राग कान्हरा

[ १५० ]

प्राननाथ हो, मेरी सुरति किन करौ।
मैं जु दुख पावति हौं दीनद्याल, कृपा करौ, मेरौ काम दंद
दुख औ बिरह हरौ ॥ १ ॥
तुम्ह बहु रमनी रमन; सो तौ जानति हौं याही के जु धोखें
हो मोसौं काहें लरौ।
सूरदास स्वामी, तुम्ह हौ अंतरजामी, सुनौ मनसा बाचा मैं
ध्यान तुम्हरौई धरौं ॥ २ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कह रही हैं—हे प्राणनाथ! तुम मेरा स्मरण क्यों नहीं करते? हे दीनदयाल! मैं दुःख पा रही हूँ, (मुझपर) कृपा करो और मेरी कामजनित उपद्रवकी पीड़ा तथा वियोगको दूर कर दो। (यह तो) मैं जानती हूँ कि तुम बहु-रमणी-रमण (अनेकों गोपियोंके प्रिय) हो, (परंतु) इसीके धोखेमें पड़कर मुझसे क्यों झगड़ते (मेरी क्यों उपेक्षा करते) हो। स्वामी! सुनो, तुम तो हृदयकी बात जाननेवाले हो, मैं मन और वाणीसे (केवल) तुम्हारा ही चिन्तन करती हूँ।

[ १५१ ]

हौं या माया ही लागी, तुम कित तोरत।
मेरौ तौ जिय तिहारे चरनन ही मैं लाग्यौ, धीरज क्यौं रहै
रावरे मुख मोरत ॥ १ ॥
कोऊ लै बनाइ बातैं मिलवति तुम्ह आगें, सोई किन आइ
मोसौं अब है जोरत।
सूरदास पिय! मेरे तौ तुम्हहि हौ जु जिय, तुम्ह बिन देखें
मेरौ हिय ककोरत ॥ २ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कह रही हैं---(श्यामसुन्दर!)मैं तो तुम्हारी इस माया (ममता)में ही फँसी हूँ, (फिर) तुम क्यों (प्रेम) तोड़ते हो? मेरा चित्त तो तुम्हारे चरणोंमें ही लगा है, (अतः) आपके मुख मोड़ने (उदासीन होने) पर (मेरा) धैर्य कैसे रहेगा। (जो) कोई तुम्हारे सामने (बहुत-सी) बातें बनाकर जोड़ती हैं (मुझे तो यह आता नहीं); वे ही अब आकर मुझसे सम्बन्ध क्यों नहीं स्थापित करतीं। प्रियतम! मेरे तो हृदयमें तुम्हीं हो, तुम्हें देखे बिना मेरा हृदय जैसे खँरोच उठता है।

[ १५२ ]

सुनहु स्याम! मेरी इक बात।
हरि प्यारी के मुख तन चितवत मन ही मनहिं सिहात ॥ १ ॥
कहा कहति वृषभानु नंदिनी बूझत हैं मुसुकात।
कनक बरन सुंदरी राधिका कटि कृस कोमल गात ॥ २ ॥
तुम ही मेरो प्रान जीवन धन, अहो चंद तुव भ्रात।
सुनहु सूर जो कहति रहीं तुम, कहौ न कहा लजात! ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कहने लगीं—श्यामसुन्दर! मेरी एक बात सुनो! (यह सुनकर) श्यामसुन्दर (अपनी) प्रियतमाके मुखकी ओर देखते और मन-ही-मन ललचाते हुए मुस्कराकर पूछने लगे कि 'वृषभानुनन्दिनी! क्या कह रही हो? स्वर्णवर्णा! सुन्दरी! कृशोदरी और सुकुमार शरीरवाली श्रीराधा! तुम्हीं मेरा प्राण तथा जीवनधन हो। देखो! यह चन्द्रमा तो तुम्हारा ही भाई है। सुनो! तुम जो कह रही थीं, वह कहो! लज्जित क्यों होती हो?'

राग गुण्ड

[ १५३ ]

नागरी स्याम सौं कहति बानी।
सुनौ, गिरधरन बर, सीस सीखंड धर, जपत सुर नाग नर सहस बानी ॥ १ ॥

रुद्रपति छुद्रपति लोकपति ओकपति धरनिपति गगनपति
अगम बानी।
अखिल ब्रह्माण्डपति तिहू भुवनाधिपति नीरपति पवनपति,
वेद बानी ॥ २ ॥
सिंघ की सरन जंबूक कौ त्रास का, कृष्न राधा एक
जगत बानी।
सूर प्रभु स्याम तुव नाम करुना धाम; करौ मन काम सुनि
दीन बानी ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा नागरी श्यामसुन्दरसे ( यह ) बात कहती हैं—मस्तकपर मयूर-पिच्छ धारण करनेवाले मेरे स्वामी गिरिधारी-लाल सुनो! देवता, नाग, मनुष्य सहस्रों नामोंसे तुम्हारा ही जप किया करते हैं। रुद्रोंके स्वामी, सभी छोटे जीवोंके स्वामी, लोकोंके स्वामी, भुवननायक, पृथ्वीके स्वामी तथा आकाश ( स्वर्गादि ) के स्वामियोंकी वाणीके लिये भी तुम अगम्य हो। वेद कहते हैं कि तुम्हीं समस्त ब्रह्माण्डोंके नायक, तीनों लोकोंके अधिपति, जलके स्वामी तथा वायुके भी स्वामी हो। भला, जो सिंहकी शरणमें है, उसे सियारका क्या भय। यह बात तो सारा जगत् कहता है कि श्रीकृष्ण और राधा एक ( अभिन्न ) हैं। मेरे स्वामी श्यामसुन्दर! तुम्हारा नाम करुणाधाम है, अतः मेरी दीनतापूर्ण प्रार्थना सुनकर मेरी मनोकामना पूर्ण करो।

राग आसावरी

[ १५४ ]

तुम्ह कैसैं दरसन पावति री!
कैसैं स्याम अंग अवलोकति, क्यौं नैननि ठहरावति री ॥ १ ॥
कैसैं रूप हृदैं राखति हौ, वह तौ अति झलकावत री।
मोकौं जहाँ मिलत हैं माई, तहँ तहँ अति भरमावत री ॥ २ ॥
मैं कबहूँ नीकैं नहिं देखे, का कहौं कहत न आवत री।
सूर स्याम कैसैं तुम्ह देखति, मोहि दरस नहिं द्यावत री! ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा सखियोंसे कह रही हैं—'(सखियो !) तुम (मोहनका) दर्शन कैसे पाती हो ! कैसे उनके श्याम अङ्गोंको निहारती और कैसे (उनपर) नेत्र स्थिर कर पाती हो ? उनके रूपको तुम कैसे हृदयमें रखती हो ? वह तो अत्यन्त ज्योतिर्मय है। सखी ! मुझे तो जहाँ-कहीं मिलते हैं, वहीं-वहीं अत्यन्त भ्रममें डाल देते हैं; क्या कहूँ, कुछ कहते नहीं बनता। मैंने कभी उन्हें भली प्रकार नहीं देखा; तुम सब कैसे श्यामसुन्दरको देखती हो, किंतु मुझे दर्शन नहीं दिलातीं।

राग केदारौ

[ १५५ ]

राधेहि मिलेहुँ प्रतीति न आवति।
जदपि नाथ-बिधु बदन बिलोकत, दरसन कौ सुख पावति ॥ १ ॥
भरि भरि लोचन रूप परम निधि उर मैं आनि दुरावति।
बिरह बिकल मति दृष्टि दुहूँ दिसि, सँचि सरघा ज्यौं धावति ॥ २ ॥
चितवत चकित रहति चित अंतर, नैन निमेष न लावति।
सपनौ आहि कि सत्य ईस ! यह, बुद्धि बितर्क बनावति ॥ ३ ॥
कबहुँक करति बिचार कौन हौं, को हरि के हिय भावति।
सूर प्रेम की बात अटपटी, मन तरंग उपजावति ॥ ४ ॥

(कोई गोपी अपनी सखीसे कह रही है—) श्रीराधाको मिलनेपर भी (मिलनका) विश्वास नहीं होता, यद्यपि (वे) अपने स्वामी (श्यामसुन्दर) के चन्द्रमुखको देखती हैं और दर्शनका आनन्द प्राप्त करती हैं। (वे) सौन्दर्यरूप परम निधिको बार-बार नेत्रोंमें भरकर हृदयमें लाकर छिपाती हैं; (किंतु) उनकी बुद्धि वियोगसे व्याकुल है, संयोग और वियोग दोनोंपर दृष्टि लगी होनेसे वह मधुमक्खीकी भाँति (उस छविको हृदयमें) संचित करके बार-बार दौड़ती है। (वे मोहनको) निहारते समय चित्तमें चकित रह जाती हैं और नेत्रोंकी पलकें-तक नहीं गिरातीं और बुद्धिसे इस प्रकार तर्क-वितर्क करती हैं—'हे भगवन् !

यह स्वप्न ( देख रही हूँ ) या सत्य है।' कभी विचार करने लगती हैं—'मैं कौन हूँ ? और श्यामसुन्दरके चित्तको कौन प्रिय लगती है ?' सूरदासजी कहते हैं कि प्रेमकी बात ही अटपटी होती है, वह मनमें ( नाना प्रकारकी ) तरंगें उत्पन्न करता है।

राग रामकली

[ १५६ ]

देखेहुँ अनदेखे से लागत।
जद्यपि करत रंग भए एकै, इक टक रहैं निमिष नहिं त्यागत ॥१॥
इत रुचि दृष्टि मनोज महासुख, उत सोभा गुन अमित अनागत।
बाढ्यौ बैर करन अरजुन ज्यौं, द्वै मैं एक भूलि नहिं भागत ॥२॥
उत सनमुख श्री सावधान सजि, इत सनेह अँग अँग अनुरागत।
ऐसे सूर सुभट ये लोचन, अधिकौ अधिक स्याम सुख माँगत ॥३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा अपने आप कह रही हैं—देखनेपर ये ( मोहन ) बिना देखे-जैसे ( नये ) लगते हैं, यद्यपि क्रीड़ा करते हुए ( मेरे नेत्र उनसे ) एक ही हो गये हैं; फिर भी वे एकटक बने रहते हैं, पलकेंतक गिराते नहीं ( अथवा एक क्षणको उन्हें छोड़ते नहीं )। इधर देखनेकी रुचि है और प्रेमका महान् आनन्द है और उधर विलक्षण एवं अपार शोभा तथा गुण है; दोनोंमें कर्ण एवं अर्जुनके समान शत्रुता ( प्रतिस्पर्द्धा ) बढ़ गयी है, दोमेंसे एक भी भूलकर ( भी ) नहीं भागते ( दूर होते ) हैं। उधर वे सावधानीके साथ शोभासे सजे सामने हैं और इधर ( मेरे ) अङ्ग-प्रत्यङ्ग ( उनके ) प्रेममें मग्न हैं। ये ( मेरे ) नेत्र ऐसे सुवीर हैं कि श्यामसुन्दर ( को देखने ) का सुख अधिकाधिक माँगते रहते हैं।

राग कान्हरौ

[ १५७ ]

देखियत दोउ अकार परे।
उत हरि-रूप, नैन याके इत, मानौ सुभट अरे ॥ १ ॥

रुचिर सुदृष्टि मनोज महासुख इन्ह इत एक करे।
उन्ह उत भूषन भेद ब्यूह रचि अँग अँग धनुष धरे ॥ २ ॥
ये अति रति रन रोष न मानत, निमिष निषंग झरे।
बाहु बिथाहिं न वदत पुलकरुह सब अँग सर सँचरे ॥ ३ ॥
वे श्री; ये अनुराग सूर सजि, छिन छिन बढ़त खरे।
मानौ उमँगि चल्यौ चाहत हैं सागर सुधा भरे ॥ ४ ॥

( कोई गोपी कह रही है—सखी ! ) दोनों ( श्यामसुन्दर और श्रीराधा ) अहंकार ( होड़ ) में पड़े दिखायी देते हैं—उधर तो श्यामका सौन्दर्य और इधर इन ( श्रीराधा ) के नेत्र, मानो दो उत्तम वीर अड़ गये हों। इधर इन ( श्रीराधा ) ने मनोहर सुन्दर दृष्टि और प्रेम-के महान् आनन्दको एक कर रखा है और उधर उन ( श्याम ) ने अनेक प्रकारके आभूषणोंको अङ्ग-अङ्गमें सजाकर धनुष ले व्यूह बना लिया है। ये ( श्रीराधा ) इस गाढ़ युद्धमें क्रोध मानती ही नहीं; प्रेम-पलकोंका गिरनारूपी तरकस इनका खाली हो चुका है ( पलकें गिरतीं नहीं ); सारे अङ्गोंमें रोमाञ्चरूपी बाण चुभ गये हैं; भुजाएँ पीड़ाको गिनती ही नहीं हैं। वे शोभामय हैं और ये अनुराग-मयी हैं। सूरदासजी कहते हैं—( अतः ) दोनों सजे हैं और प्रत्येक क्षण भले प्रकार बढ़ते ही जाते हैं, मानो ( ये ) अमृतके भरे समुद्र हैं और उमड़कर बह चलना चाहते हैं।

राग बिहागरौ

[ १५८ ]

नख सिख अंग अंग छबि देखत नैना नाहिं अघाने।
निसि बासर इकटकहीं राखैं, पलक लगाइ न जाने ॥ १ ॥
छबि तरंग अगिनित सरिता जल, लोचन तृप्ति न माने।
सूरदास प्रभु की सोभा कौं अति ब्याकुल ललचाने ॥ २ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कह रही हैं—( सखी ! ) नखसे चोटीतक ( श्यामसुन्दरके ) अङ्ग-प्रत्यङ्गकी शोभा देखते हुए भी नेत्र तृप्त नहीं होते। रात-दिन ( ये ) अपलक ही बने रखते हैं, पलक गिराना

जानते ( ही ) नहीं। ( उनकी ) शोभाकी तरङ्गें नदीके जलके समान अगणित हैं, ( फिर भी मेरे ) नेत्र ( उससे ) तृप्ति नहीं मानते और ( नित्य ही ) स्वामीकी शोभाके लिये ( ये ) अत्यन्त व्याकुल होकर ललचाया करते हैं ।

राग रामकली

[ १५९ ]

मोहन ( माई री ) हठ करि मनै हरत ।
अंग अंग प्रति औरऔर गति, छिन्न छिन्न अतिहीं छबि जु धरत ॥१॥
सुंदर सुभग स्याम कर दोऊ, तिन सौं मुरली अधर धरत ।
राजत ललित नील कर पल्लव, उभय उरग ज्यौं सुभट लरत ॥२॥
कुंडल मुकुट भाल गोरोचन, मनौ सरद ससि उदै करत ।
सूरदास प्रभु तन अवलोकत नैन थके इत उत न टरत ॥३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! ) मोहन हठपूर्वक चित्त चुराते हैं। उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गकी सदा और-ही-और दशा रहती है, ( वे ) प्रत्येक क्षणमें अत्यन्त ( नवीन ) शोभा धारण करते रहते हैं । श्यामके दोनों हाथ सुन्दर और मनोहर हैं, उनसे वंशीको ओठोंपर रखते हैं; ( उस समय उनके ) सुन्दर नीले पल्लवके समान कोमल दोनों हाथ ऐसी शोभा देते हैं, मानो दो बलवान् सर्प लड़ रहे हों । ( कानोंमें ) कुण्डल हैं, ( सिरपर ) मुकुट सुशोभित है और ललाटपर गोरोचनका तिलक ऐसा ( लगता ) है; मानो शरद्-ऋतुका चन्द्रमा उदय हो रहा हो। स्वामीकी ओर देखते हुए नेत्र मुग्ध हो गये हैं और इधर-उधर हटते नहीं ।

[ १६० ]

मन तौ हरिही हाथ बिकान्यौ ।
निकस्यौ मान गुमान सहित वह, मैं यह होत न जान्यौ ॥ १ ॥

नैनन साँटि करी मिलि नैनन, उनही सौं रुचि मान्यौ।
बहुत जतन करि हौं पचि हारी, फिरि इत कौं न फिरान्यौ ॥ २ ॥
सहज सुभाइ ठगोरी डारी सीस, फिरत अरगानौ।
सूरदास प्रभु रस बस गोपी, बिसरि गयौ तन मानौ ॥ ३ ॥

( कोई गोपी कह रही है—सखी ! ) मेरा मन तो श्यामके हाथ ही बिक गया। वह ( मेरे शरीरसे ) मानपूर्वक गर्वमें भरा निकला; किंतु यह सब होते मैंने जाना नहीं। मेरे नेत्रोंने उनके नेत्रोंसे मिलकर संधि कर ली और उन्हींमें रुचि ( प्रीति ) मान ली। मैं बहुत प्रयत्न करके-श्रम करके थक गयी, ( वह मन ) फिर इधरको लौटा ही नहीं। उन्होंने (मोहनने) तो सहज स्वभावसे मेरे सिर मोहिनी डाल दी, जिससे मेरा मन ( अब मुझसे ) अलग हुआ घूमता है। सूरदासजी कहते हैं कि मेरे स्वामीके प्रेममें गोपी ( इस प्रकार ) विवश हो गयी है, मानो ( अपने ) शरीरकी सुधि भूल गयी हो।

राग सोरठ

[ १६१ ]

मन तौ गयौ, नैन हे मेरे।
अब इन सौं वह भेद कियौ कछु, येउ भए हरि चेरे ॥ १ ॥
तनक सहाइ रहे हे मोकौं, येउ इंद्रिनि मिलि घेरे।
क्रम क्रम गए, कह्यौ नहिं काहूँ, स्याम संग उरझे रे ॥ २ ॥
ज्यौं दिवार गीली पै काँकर डारतहीं जु गड़े रे।
सूर लटकि लागे अँग छबि पै, निठुर न जात उखेरे ॥ ३ ॥

( एक गोपी कह रही है—सखी ! ) मेरा मन तो ( श्यामसुन्दरके पास ) गया, ( किंतु ) नेत्र मेरे थे; अब उस मनने इन ( नेत्रों ) से ( भी ) कुछ ऐसी साँठ-गाँठ कर ली कि ये भी श्यामसुन्दरके दास हो गये। ये ( नेत्र ) मेरे लिये तनिक-से सहायक थे, ( सो ) इन्हें भी इन्द्रियोंने मिलकर अपनी ओर कर लिया। ( ये सभी ) एक-एक कर चले गये; मुझसे किसीने कुछ

कहा ( पूछा ) नहीं, श्यामसुन्दरके प्रति आसक्त हो गये । जैसे गीली दीवालपर डालते ( फेंकते ) ही कंकड़ी उसमें गड़ जाती है, सूरदासजी कहते हैं, वैसे ही ( मोहनकी ) अङ्ग-छविपर ये निष्ठुर आसक्त होकर लगे हैं, ( अब ) वहाँसे उखाड़े नहीं जा पाते ।

राग बिहागरौ

[ १६२ ]

सजनी ! मनैं अकाज कियौ ।
आपुन जाइ भेद करि हरि सौं इंद्रिनि बोलि लियौ ॥ १ ॥
मैं उन्ह की करनी नहिं जानी, मोसौं वैर कियौ ।
जैसें करि अनाथ मोहि त्यागी, ज्यौं त्यौं मानि लियौ ॥ २ ॥
अब देखौं उन्ह की निठुराई, सो गुनि भरत हियौ ।
सूरदास ये नैन रहे हे, तिनहूँ कियौ बियौ ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी ! मनने ही ( सारा ) काम बिगाड़ा, ( पहले ) स्वयं जाकर और श्यामसुन्दरसे साँठ-गाँठ करके ( तब उसने सभी ) इन्द्रियोंको बुला लिया । मैंने उन ( सब ) की चाल समझी नहीं ( कि ) उन्होंने मुझसे शत्रुता कर ली है, जैसे मुझे अनाथ बनाकर ( उन्होंने ) छोड़ दिया, उस स्थितिको ( भी ) जैसे-तैसे मैंने मान ( स्वीकार कर ) लिया; किंतु अब उनकी निष्ठुरता देखती हूँ और उसका विचार करके मेरा हृदय भर आता है । ये नेत्र ही मेरे रह गये थे, (सो) उनको भी ( इस मनने ) पराया ( मुझसे विमुख ) बना दिया ।

[ १६३ ]

मेरें जिय यहई सोच परयौ ।
मन के ढंग सुनौ री सजनी, जैसें मोहि निदरयौ ॥ १ ॥
आपुन गयौ पंच सँग लीन्हे, प्रथमै यहै करयौ ।
मोसौं बैर, प्रीति करि हरि सौं, ऐसी लरनि लरयौ ॥ २ ॥
ज्यौं त्यौं नैन रहे लपटाने, तिनहूँ भेद भरयौ ।
सुनौ सूर अपनाइ इन्हु कौं अब लौं रह्यौ उरयौ ॥ ३ ॥

(एक गोपी कह रही है--)सखी ! मेरे चित्तमें यही चिन्ता हो रही है। सखी ! (इस मेरे) मनके ढंग (तो) सुनो, जिस प्रकार (उसने) मेरा अनादर (उपेक्षा) किया। पहिले ही उसने यह किया कि स्वयं तो गया ही, पाँचों (ज्ञानेन्द्रियों) को भी साथ ले गया; और मुझसे शत्रुता तथा श्यामसुन्दरसे प्रेम करके इस प्रकार (उसने) मुझसे लड़ाई-झगड़ा किया। जैसे-तैसे, नेत्र मेरे साथ लिपटे रहे; (अन्तमें) उनमें भी भेद-बुद्धि भर दी। सूरदासजी कहते हैं—सुनो, इन (नेत्रों) को अपना बनाये हुए अबतक (वह) हृदयमें था।

राग गौरी

[१६४]

**मन बिगर्‌यौ येउ नैन बिगारे।**
**ऐसौ निठुर भयौ देखौ री, तब तैं टरत न टारे॥ १॥**
**इंद्री लईं, नैन अब लीन्हे, स्यामै गीधे भारे।**
**ये सब कहा कौन हैं मेरे, खानेजाद बिचारे॥ २॥**
**इतने तैं इतने मैं कीन्हे, कैसैं आज बिसारे।**
**सुनौ सूर जे आप स्वारथी, ते आपनहीं मारे॥ ३॥**

(कोई गोपी कह रही है—सखी !) (मेरा) मन (तो) बिगड़ा ही था, इन (दोनों) नेत्रोंको भी (उसने) बिगाड़ दिया। अरी देखो, (वह मन) ऐसा निष्ठुर हो गया है कि तभीसे (श्यामसुन्दरके समीपसे) हटानेसे भी हटता नहीं। (पहिले) इन्द्रियोंको फोड़ा, अब नेत्रोंको भी ले बैठा, श्यामसुन्दरसे ही बहुत अधिक परच गया है। ये सब बिचारे खाना-जाद (मेरे पाले-पोसे) अब मेरे क्या हैं, कौन हैं। मैंने (इन्हें) इतने (छोटे) से इतना (बड़ा) किया; (किंतु) आज (ये) कैसे भूल गये। सूरदासजी कहते हैं—सुनो ! जो अपना ही स्वार्थ देखनेवाले हैं, वे स्वयं अपनेद्वारा ही मारे गये हैं।

[ १६५ ]

आप स्वारथी की गति नाहीं।
ते विधनाँ काहें औतारे, जुवती गुनि पछिताहीं ॥ १ ॥
जनमे संग, संग प्रतिपाले, संगै बड़े भए हैं।
जब उन कौ आसरौ कर्‌यौ जिय, तबहीं छोड़ि गए हैं ॥ २ ॥
ऐसे हैं ये स्वामि कारजी, तिन्ह कौं मानत स्याम।
सुनौ सूर अब प्रगटै कहिऐ, ऐसे उन्ह के काम ॥ ३ ॥

( कोई गोपी कह रही है—सखी ! ) जो अपना ही स्वार्थ देखता है, उसकी सद्‌गति नहीं होती। उन्हें विधाताने क्यों उत्पन्न किया, यह सोचकर ( हम सब ) गोपियाँ पश्चात्ताप करती हैं। सब ( मन-इन्द्रियादि ) साथ ही उत्पन्न हुई, सबका एक साथ पालन-पोषण हुआ और साथ ही ( हम ) सब बड़े हुए हैं; ( किंतु ) जब उन ( मन-इन्द्रियादि ) का चित्तमें आश्रय किया ( कि अब ये कुछ सहायता करेंगे ), तभी ( सब मुझे ) छोड़कर चले गये। ये ऐसे स्वामीका कार्य करनेवाले हैं; उनको श्यामसुन्दर मानते ( उनका आदर करते हैं )। सूरदासजी कहते हैं—सुनो ! अब प्रकटरूपमें ( यह ) कहनेमें आता है कि उनके ऐसे ( खोटे—न करने योग्य ) कार्य हैं।

राग कान्हरौ

[ १६६ ]

हम तैं गए, उनहु तैं खोवैं।
ह्याँ तैं खेदि देहिं वे हम तन, हम उन्ह तन नहिं जोवैं ॥ १ ॥
जैसी दसा हमारी कीन्ही, तैसें उन्हें बिगोवैं।
भटके फिरैं द्वार द्वारनि सब, हम देखैं वे रोवैं ॥ २ ॥
आवै यहै मतौ री करिऐ, निधरक वे शख सोवैं।
सूर स्याम कौं मिले जाइ कैं, कैसें उन कौं खोवैं ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! ) हमसे तो ( मन-इन्द्रिय ) गये ही, ( अब क्या वे ) उन ( मोहन ) के सङ्गका अधिकार भी खो दें । वहाँसे ( तो ) वे ( श्यामसुन्दर ) हमारी ओर इन्हें खदेड़ दें और हम इनकी ओर देखें ( भी ) नहीं । जैसी दशा इन्होंने हमारी की है, वैसे ही हम भी ( क्या ) इनकी दुर्दशा करें ? ( वे ) सब ( मन आदि क्या ) दरवाजे-दरवाजे भटकते-रोते फिरें और हम ( उन्हें ) देखें । आओ, सखियो ! यही निश्चय कर लिया जाय कि वे भले निश्चिन्त होकर सुखपूर्वक विश्राम करें; ( परंतु जब ) वे उन श्यामसुन्दरसे जा मिले ( उनके रंगमें रँगकर काले हो गये, तब ) उन्हें हम कैसे धोयें ( स्वच्छ करें )।

राग धनाश्री

[ १६७ ]

मन के भेद नैन गए माई ।
लुब्धे जाइ स्यामसुंदर रस, करी न कछू भलाई ॥ १ ॥
जबहीं स्याम अचानक आए, इकटक रहे लगाई ।
लोक सकुच, मरजादा कुल की छिनही मैं बिसराई ॥ २ ॥
ब्याकुल फिरति भवन बन जहँ तहँ, तूल आक उधराई ।
देह नाहिं अपनी सी लागति, यह है मनौ पराई ॥ ३ ॥
सुनौ सखी ! मन के ढँग ऐसे, ऐसी बुद्धि उपाई ।
सूर स्याम लोचन बस कीन्हे रूप ठगोरी लाई ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी ! मनके द्वारा फोड़ लिये जानेके कारण ही नेत्र भी गये । वे जाकर श्यामसुन्दरकी शोभापर लुब्ध ( मोहित ) हो गये, ( परंतु इस प्रकारके व्यवहारसे ) उन्होंने ( अपनी भी ) कोई भलाई नहीं की । श्यामसुन्दर जब अचानक आये, तभी ये ( नेत्र ) उनमें निर्निमेष दृष्टि लगाये रहे और एक क्षणमें ही लोकका संकोच और कुलकी मर्यादा भुला दी । ( अब मैं ) व्याकुल होकर जहाँ-तहाँ घरमें आककी रूईके समान बनी उड़ती ( अस्थिर घूमती ) हूँ, ( अब यह ) शरीर भी अपने-जैसा नहीं लगता, मानो यह भी दूसरेका हो । सखियो सुनो ! मनके ऐसे ढंग हैं, उसने ( कुछ ) ऐसा ( ही ) निश्चय

ठान लिया है । इधर श्यामसुन्दरने रूपकी मोहिनी डालकर ( मेरे ) नेत्रोंको ( भी ) वशमें कर लिया है ।

राग नट

[ १६८ ]

नैन न मेरे हाथ रहे।
देखत दरस स्याम सुंदर कौ जल की ढरन बहे ॥ १ ॥
वह नीचे कौं धावत आतुर, वैसेहि नैन भए।
वह तौ जाइ समात उदधि मैं, ये प्रति अंग रए ॥ २ ॥
वह अगाध कहुँ वार पार नहिं, एहु सोभा नहिं पार।
लोचन मिले त्रिवेनी ह्वैकैं सूर समुद्र अपार ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! ) मेरे नेत्र मेरे हाथ (वश) में नहीं रहे, श्यामसुन्दरका दर्शन करते ही जलके बहावकी भाँति उन्हींकी ओर ढुलक गये । वह ( जल ) वेगसे नीचेकी ओर दौड़ता है, ( ये ) नेत्र भी वैसे ही हो गये । वह ( जल अन्तमें ) जाकर समुद्रमें मिल जाता है और ये ( मोहनके ) प्रत्येक अङ्गमें रम गये—लीन हो गये। वह ( समुद्र ) अथाह है, उसका कहीं वार-पार ( कूल-किनारा ) नहीं और इन ( मोहन ) की भी शोभाका पार नहीं है । इस अपार समुद्रमें मेरे नेत्र त्रिवेणी बनकर मिल गये ।

राग बिहागरौ

[ १६९ ]

मन तैं ये अति ढीठ भए।
वह तौ आइ मिलत है कबहूँ, ये जु गए सु गए ॥ १ ॥
ज्यौं भुजंग काँचुरी बिसारत, फिरि नहिं ताहि निहारत।
तैसेहिं जाइ मिले इकठक ह्वै, डारत लाज निवारत ॥ २ ॥
इंद्रिनि सहित मिल्यौ मन तबहीं, नैन रहे मोहि सालत।
सूर स्याम सँगहीं सँग डोलत, औरन के घर घालत ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! ) ये ( मेरे नेत्र तो ) मनसे भी अत्यन्त ढीठ हो गये हैं। वह ( मन ) तो आकर कभी-कभी मिल भी लेता है; ( पर ) ये जो गये सो ( चले ही ) गये ( लौटनेका नामतक नहीं लिया )। जैसे सर्प अपनी केंचुलको ( उतारकर ) भूल जाता है और घूमकर उसकी ओर नहीं देखता, वैसे ही लज्जाको दूर फेंकते हुए ( ये नेत्र ) अपलक होकर उन ( मोहन ) से जा मिले। इन्द्रियोंके साथ मन तो तभी उनसे मिल गया था, ( केवल ) नेत्र मुझे पीड़ा देते रहे, ( सो ) ये भी ( अब ) श्यामसुन्दरके साथ-ही-साथ दूसरोंका घर नष्ट करते घूमते हैं।

राग सोरठ

[ १७० ]

लोचन गए निदरि कैं मोकौं।
तोहू कौं व्यापी री माई, कहा कहति है सोकौं ॥ १ ॥
मैं आई दुख कहन आपनौ, तेरैं दुख अधिकारी।
जैसैं दीन दीन सौं जाँचै, वृथा होइ स्रम भारी ॥ २ ॥
मन अपनौ बस कैसेहुँ कीजै, याही तैं सचु पावै।
सूरदास इंद्रिनि समेत वह लोचन अबै मँगावै ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! ) मेरे नेत्र मेरा निरादर करके चले गये। 'सखी ! क्या कहती हो, यह शोककी बात ( व्यथा ) तुझे भी व्याप्त हुई है? मैं तो अपना दुःख कहने आयी थी, किंतु तेरा दुःख ( तो ) मुझसे भी अधिक ( दीखता ) है। जैसे ( कोई एक ) कंगाल ( दूसरे ) कंगालसे भिक्षा माँगे ( तो ) अनावश्यक बहुत परिश्रम होता है। किसी प्रकार अपने मनको वश करना चाहिये, इसीसे सुख मिल सकता है। वह ( मन ) इन्द्रियोंके साथ नेत्रोंको अभी मँगा ( बुला ) सकता है।'

[ १७१ ]

नैना नीके उनहिं रए।
मन जब गयौ नाहिं मैं जान्यौ, ये दोउ निदरि गए ॥ १ ॥
ये तौ भए भाँवते हरि के, सदाँ रहत इन माहीं।
कर मीड़ति, सिर धुनति नारि सब, यह कहि कहि पछिताहीं ॥ २ ॥
मूरख कै ज्यौं बुद्धि पाछिली, हमहूँ करि दियौ आगें।
अब तौ मिले सूर के प्रभु कौं, पावति हौं अब माँगें! ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—(सखी! मेरे) नेत्र तो भली प्रकार उन (श्यामसुन्दर) में ही रम गये—लीन हो गये। जब मन गया, तब तो मैंने जाना (तक) नहीं; (अब) ये दोनों (नेत्र) मेरा अनादर करके (मेरे सामने) चले गये। ये तो (जाकर) श्यामसुन्दरके प्रिय बन गये, सदा वे इनमें ही रहते हैं। बार-बार यह कहकर (हम) सब गोपियाँ हाथ मलती हैं, सिर पीटती हैं, पश्चात्ताप करती हैं कि 'मूर्खोंके समान हमें यह समझ पीछे आयी है, (पहले तो) हमने ही उन (मन और नेत्रों) को श्यामके सामने कर दिया था। अब तो (वे) हमारे स्वामीसे जा मिले, (भला) अब माँगनेसे उन्हें (कहीं) पा सकती हूँ?'

राग गौरी

[ १७२ ]

नैना नहिं आवैं तुव पास।
कैसेहूँ करि निकसे ह्याँ तैं, अतिहीं भए उदास ॥ १ ॥
अपने स्वारथ के सब कोई, मैं जानी यह बात।
यह सोभा सुख लूटि पाइ कैं अब वे काहि पत्यात ॥ २ ॥
षटरस बिंजन त्यागि कहौ, को रूखी रोटी खात।
सूर स्याम रस रूप माधुरी पते पै न अघात ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी दूसरी एक गोपीसे कहती है—तेरे नेत्र अब तेरे पास नहीं आयेंगे। वे तो (मोहनके दर्शन बिना) अत्यन्त खिन्न होकर

किसी प्रकार यहाँसे निकल गये । मैंने यह बात जान ली कि सब कोई अपने स्वार्थके ( ही ) साथी हैं; ( श्यामकी ) शोभा और ( उनके सामीप्यका ) आनन्द लूटमें ( अनायास ) पाकर ( भला ) अब वे किसका विश्वास करेंगे। बताओ तो, षट्‌रस भोजन छोड़कर कौन सूखी रोटी खाता है । किंतु इतनेपर भी ( वे ) श्यामसुन्दरके प्रेम-सौन्दर्यकी मधुरिमाके रसास्वादनसे तृप्त नहीं होते ।

राग जैतश्री

[ १७२ ]

नैन परे रस स्याम सुधा मैं ।
सिव सनकादि ब्रह्म नारद मुनि, ये लुब्धे हैं जामैं ॥ १ ॥
ऐसौ रस बिलसत नाना बिधि, खात खवावत डारत।
सुनौ सखी ! वैसी निधि तजि कैं क्यौं वे तुम्हे निहारत ॥ २ ॥
जिन्ह वह सुधा पान सुख कीन्हौ, ते कैसैं दुख देखत ।
त्यौं ये नैन भए गरबीले, अब काहें हम लेखत ॥ ३ ॥
काहे कौं अफसोस मरति हौ, नैन तुम्हारे नाहीं ।
जाइ मिले सूरज के प्रभु कौं, इत उत कहूँ न जाहीं ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्र ( तो ) श्यामसुन्दरके ( सौन्दर्यरूपी ) अमृतके आनन्दमें पड़ गये हैं। ये जिस रसपर लुब्ध हुए हैं, उसीपर शंकरजी, सनकादि ऋषिगण, ब्रह्माजी तथा देवर्षि नारदजी लुब्ध रहते हैं । ( वे ) ऐसे आनन्दका अनेक प्रकारसे उपभोग करते हैं; ( स्वयं तो ) उसका आस्वादन करते ही हैं, दूसरोंको भी कराते हैं तथा गिराते भी हैं । सखी ! सुनो—भला, वैसी सम्पत्ति छोड़कर वे तुम्हारी ओर क्यों देखने लगे। जिन्होंने उस अमृत-पानका आनन्द लिया है, वे दुःख कैसे देख ( सह ) सकते हैं। इसी प्रकार ये नेत्र भी गर्विष्ठ हो गये हैं, अब हमारी परवा वे क्यों करने लगे। क्यों व्यर्थ चिन्ता करके मरी जाती हो; ( समझ लो कि ) नेत्र तुम्हारे

नहीं हैं; वे ( तो ) हमारे स्वामीसे जा मिले, ( अब ) इधर-उधर कहीं जायँगे नहीं ।

राग भैरव

[ १७४ ]

नैन परे हरि पाछें री ।
मिले अतिहिं अतुराइ स्याम कौं, रीझे नटवर काछें री ॥ १ ॥
निमिष नाहिं लागत इकटक हीं, निसि बासर नहिं जानत री ।
निरखत अंग अंग की सोभा, ताही पै रुचि मानत री ॥ २ ॥
नैन परे परबस री माई, उन कौं इन्ह बस कीन्हे री ।
सूरज प्रभु सेवा करि रिझए, उन्ह अपने करि लीन्हे री ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्र तो हरिके ही पीछे पड़े हैं, ( उन ) नटवरवेश बनाये श्यामसुन्दरपर रीझ ( उनसे ) अत्यन्त आतुर होकर मिले हैं। ( वे ) पलक नहीं गिराते, सदा एकटक ही ( उन्हें देखते ) रहते हैं, रात-दिन ( का भेद ) न जानते हुए उनके प्रत्येक अङ्गकी शोभा देखते हैं और उसी ( शोभा ) में रुचि मानते हैं। सखी ! ( मेरे ये ) नेत्र परवश हो गये हैं, उन्हें इन्हीं ( मोहन ) ने वशमें कर लिया है। हमारे स्वामीको इन्हों ( नेत्रों ) ने अपनी सेवासे प्रसन्न कर लिया और उन्होंने ( प्रसन्न होकर ) इन्हें अपना बना लिया ।

राग कल्यान

[ १७५ ]

नैना हरि अंग रूप लुब्धे री माई ।
लोक लाज, कुल की मरजादा बिसराई ॥ १ ॥
जैसें चंदा चकोर, मृगी नाद जैसें ।
कंचुरि ज्यौं त्यागि फनिग फिरत नाहिं तैसें ॥ २ ॥
जैसें सरिता प्रवाह सागर कौं धावै ।
कोऊ स्रम कोटि करै, तहाँ फिरि न आवै ॥ ३ ॥

तन की गति पंगु किएँ सोचति ब्रजनारी।
तैसें ये मिले जाइ सूरज प्रभु ढारी ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—'अरी सखी! ( मेरे ) नेत्र ( तो ) श्यामसुन्दरके शरीर-सौन्दर्यपर लुब्ध हो गये हैं, इन्होंने लोककी लज्जा तथा कुलकी मर्यादा ( सब कुछ ) भुला दी है। जैसे चकोर चन्द्रमासे और हिरनी स्वरसे ( उनपर आसक्त होनेके कारण ) विरत नहीं होते, अथवा जैसे साँप केंचुलीको त्याग देनेपर उनकी ओर नहीं लौटता, वैसे ही ये श्यामके अङ्गोंसे नहीं लौटते हैं ( उन्हींमें लीन रहते हैं )। ( अथवा ) जैसे नदी-प्रवाह समुद्रकी ओर ( ही ) दौड़ता है, कोई कितना ही अधिक परिश्रम करे, वह वहीं ( उद्गमस्थानपर ) नहीं लौटता, वैसे ही ये ढुलककर ( अनुकूल होकर ) हमारे स्वामीसे जा मिले ( वहाँसे लौटनेका नाम भी नहीं लेते )। व्रजनारियाँ शरीरकी दशाको शिथिल ( गतिहीन ) बनाये ( इस प्रकार ) सोच रही हैं।

[ १७६ ]

लोचन भए स्यामहि बस, कहा करौं माई।
जितहीं वे चलत, तितहिं आपु जात धाई ॥ १ ॥
मुसकनि दै मोल लिए, किए प्रगट चेरे।
जोइ जोइ वे कहत करत, रहत सदाँ नेरे ॥ २ ॥
उन की परतीति स्याम मानत नहिं अबहूँ।
अलकन रजु बाँधि धरे, भाजैं जिनि कबहूँ ॥ ३ ॥
मन लै इन्हि उन्हैं दियौ, रहत सदा सँगहीं।
सूर स्याम रूप रासि, रीझे वा रँगहीं ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी! (ये मेरे) नेत्र श्यामके ही वश हो गये, अब मैं क्या करूँ। जहाँ वे चलते हैं, वहीं ( ये ) स्वयं दौड़ जाते हैं। ( श्यामने ) मुस्कराहटका मूल्य देकर इन्हें मोल

ले लिया और प्रत्यक्ष दास बना लिया है; जो-जो वे कहते हैं, वही ये करते तथा सदा ( उन्हींके ) पास रहते हैं। अब ( इतनेपर ) भी श्यामसुन्दर उनका विश्वास नहीं करते। ( उन्होंने ) अपनी अलकोंकी रस्सीसे ( इन्हें इसलिये ) बाँध रखा है कि कभी भाग न जायँ। मनने इन ( नेत्रों ) को लेकर उन्हें दे दिया, (तबसे) ये सदा उनके साथ ही रहते हैं। श्यामसुन्दर तो सौन्दर्यराशि हैं, ( अतः ) ये उनकी शोभापर ही रीझ गये हैं।

राग बिहागरौ

[ १७७ ]

नैना भए बजाइ गुलाम।
मन बेंच्यौ लै वस्तु हमारी, सुनौ सखी ये काम ॥ १ ॥
प्रथम भेद करि आयौ आपुन, माँगि पठायौ स्याम।
बेंचि दिए निधरक हरि लीन्हे, मृदु मुसकनि दै दाम ॥ २ ॥
यह बानी जहँ तहँ परकासी, मोल लए कौ नाम।
सुनौ सूर! यह दोष कौन कौ, यह तुम्ह कहौ न बाम ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—(सखी! मेरे) नेत्र ( तो ) डंकेकी चोट ( मोहन ) के दास बन गये। सखी! सुनो, मनने यह (लज्जाजनक) कार्य किया कि (उसने) हमारी वस्तु लेकर (मोहनको) बेंच दी। ( वह ) पहिले ( तो ) स्वयं इन्हें फोड़कर आया और कहा कि श्यामसुन्दरने इन्हें मँगवा भेजा है। ( फिर इसने ) बिना संकोचके ( वहाँ मेरे नेत्रोंको ले जाकर ) बेच दिया और श्यामसुन्दरने मधुर मुसकानरूपी मूल्य देकर ( इन्हें ) ले लिया। यह ( मोल लेनेकी ) बात ( उन्होंने ) जहाँ-तहाँ ( सर्वत्र ) प्रकट (भी) कर दी, ( जिससे ) मोल लेनेकी ख्याति हो गयी। (व्रजनारियो!) सुनो, (अब) यह तुम्हीं बतलाओ न कि यह दोष किसका है।

राग मारू

[ १७८ ]

कियौ यह भेद मन, और नाहीं।
पहिलेहीं जाइ हरि सौं कियौ भेद उहिं
और बेकाज कासौं बताहीं ॥ १ ॥

दूसरें आइ कैं इंद्रियन लै गयौ,
ऐसे अपदाव सब इनहिं कीन्हे।
मैं कह्यौ नैन मोकौं सँग देहिंगे,
इनहु लै जाइ हरि हाथ दीन्हे ॥ २ ॥
जो कछू कियौ सो मनहि सब करत है,
इहाँ कछु स्याम कौ दोष नाहीं।
सूर प्रभु नैन लै मोल अपबस किए,
आपु बैठे रहत तिनहि माहीं ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी! ) यह अन्तर ( मुझमें और नेत्रोंमें ) मनने उत्पन्न किया है, दूसरे किसीने नहीं। उस ( मन ) ने पहिले ही जाकर श्यामसुन्दरसे साँठ-गाँठ कर ली, भला बिना काम वे किससे बात करेंगे। ( फिर ) दूसरी बार आकर ( यह मन ) सब इन्द्रियोंको ले गया, ऐसी सब कुचालें इसीने कीं। मैंने समझा था कि नेत्र ( तो ) मेरा साथ देंगे; ( किंतु ) इनको भी ले जाकर ( इसने ) श्यामके हाथमें दे दिया। जो कुछ किया है, वह सब मन ही करता है; इसमें श्यामसुन्दरका कुछ भी दोष नहीं है। हमारे स्वामीने तो नेत्रोंको मोल लेकर अपने वश कर लिया है और ( अब ) स्वयं उन्हींमें बैठे ( समाये ) रहते हैं।

राग बिलावल

[ १७९ ]

कहा भए जो ऐसे लोचन,
मेरें तौ कछु काज नहीं।
मैं तौ ब्याकुल भई पुकारति,
वे सँग लै जु गए मनही ॥ १ ॥
त्रिभुवन में अति नाम जगायौ,
फिरत स्याम सँगहीं सँगहीं।
अपने सुख कौं कहा चाहिएँ,

बहुरि न आए मो तनहीं ॥ २ ॥
सो सपूत परिवार चलावै,
ये तौ लोभी, धिक इनहीं ।
एते पै ये सूर कहावत,
लाज नाहिं ऐसे जनहीं ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) ऐसे ( सुन्दर ) नेत्र हुए तो क्या, ( अब ) मेरा तो उनसे कोई प्रयोजन नहीं। मैं तो व्याकुल होकर ( इन्हें ) पुकारती रही, पर मन इन्हें अपने साथ ले ही गया। ( अब तो ) तीनों लोकोंमें ( इन्होंने ) बड़ा नाम कमा लिया और श्यामके साथ-ही-साथ घूमते हैं। अपने सुखके लिये ( इन्हें ) और क्या चाहिये, ( इसीलिये ) मेरी ओर फिर ( लौटकर ) आये ही नहीं। सुपुत्र वह है, जो ( अपना ) परिवार चलाये; ये तो लालची हैं, ( इसलिये ) इन्हें धिक्कार है ! इतनेपर भी ये वीर कहलाते हैं, ऐसे लोगोंको लज्जा ( तो ) होती नहीं।

राग कान्हरौ

[ १८० ]

इन्ह बातन कहुँ होति बड़ाई।
लूटत हैं छबि रासि स्याम की, नोखैं करि निधि पाई ॥ १ ॥
थोरेही मैं उघरि परैंगे, अतिहिं चले इतराई।
डारत खात देत नहिं काहू, ओछें घर निधि आई ॥ २ ॥
यह संपति है तिहू भुवन की, सब इनहीं अपनाई।
सूरदास प्रभु सँग लै धोखें, काहू नाहिं जनाई ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! ) ऐसी बातोंसे कहीं बड़ाई होती है। ( ये नेत्र ) श्यामकी छबि-राशि लूटते हैं, इन्होंने ( यह ) अनोखी ( अद्भुत ) सम्पत्ति पा ली है। ये अत्यन्त गर्विष्ठ हो चले हैं, अतः थोड़े ( सुख-सम्मान ) में ही उघड़ पड़ेंगे ( प्रकाशमें आ जायँगे )। ( स्वयं )

उस ( रूप-राशि ) का आस्वादन करते और गिराते ( भी ) हैं, पर किसी ( और ) को देनेका नहीं, ओछे ( अनुदार ) के घरमें सम्पत्ति ( जो ) आ गयी है। यह ( श्यामका सौन्दर्यरूपी ) सम्पत्ति तो तीनों लोकोंकी है, ( जो ) सब-की-सब इन्होंने अपनी बना ली है। हमारे स्वामीने ( इन्हें ) धोखेसे साथ ले लिया; किसीको बतलाया ( भी ) नहीं।

राग बिलावल

[ १८१ ]

नैन परे बहु लूटि मैं, नोखी निधि पाई।
छोह लगति यह समझि कैं, हम इन्हैं जिवाई ॥ १ ॥
इन कैं नेकु दया नहीं, हम पै रिस पावैं।
स्याम अछै निधि पाइ कैं, तउ कृपिन कहावैं ॥ २ ॥
ऐसे लोभी ये भए, तब इन्है न जान्यौ।
संगहिं संग सदाँ रहैं, अति हित करि मान्यौ ॥ ३ ॥
जैसी हम कौं इन्ह करी, यह करै न कोई।
सूर अनल कर जो गहै, डाढ़ै पुनि सोई ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्र अद्भुत ( दर्शन-सुखरूप ) सम्पत्ति पाकर ( उसे ) भरपूर लूटनेमें लगे हैं। यह समझकर ( मुझे इनपर ) दया लगती है कि इन्हें मैंने ही जिलाया ( पाला ) है; किंतु इनके हृदयमें थोड़ी भी दया नहीं, उल्टे हमपर क्रोध करते हैं। ( ये ) श्यामसुन्दररूपी अक्षय ( कभी न घटनेवाली ) सम्पत्ति पाकर भी कृपण कहलाते हैं, ये ऐसे लोभी हो गये हैं। तब ( पहिले ) ( हमने ) इन्हें ( ऐसा ) नहीं समझा था। ( ये हमारे ) सदा साथ-ही-साथ रहते थे, ( इसलिये हम ) इन्हें ( अपना ) अत्यन्त हितैषी मानती थीं। ( किंतु ) हमारे साथ जैसा व्यवहार इन्होंने किया, ऐसा ( तो ) और कोई नहीं कर सकता था। ( सच तो है ) जो हाथसे अग्नि पकड़ता है, वही जलता भी है ( हमने इन नेत्रोंका साथ किया, अतः वेदना भी हमें ही भोगनी है )।

राग कान्हरौ

[ १८२ ]

नैन आपने घर के री।
लूटन देहु स्याम अँग सोभा, जो हम पै वे तरके री ॥ १ ॥
यह जानी नीकें करि सजनी, नाहिं हमारे डर के री।
वे जानत हम सरि को त्रिभुवन, ऐसे रहत निधरके री ॥ २ ॥
ऐसी रिस आवति है उन्ह पै, करौं उन्हैं घर घर के री।
सूर स्याम के गरब भुलाने, वे उन्ह पै हैं ढरके री ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कहती है—( सखी ! ये मेरे ) नेत्र अपने घरके ( ही तो ) हैं। यदि वे हमसे पृथक् हो गये हैं, तो भी उन्हें श्यामके श्रीअङ्गोंकी शोभा लूटने दो। सखी ! यह तो हमने भली प्रकार समझ लिया कि वे ( अब ) हमारा भय माननेवाले नहीं हैं। वे ( तो ) ऐसे निधड़क ( संकोचहीन ) रहते हैं कि समझते हैं हमारी बराबरी करनेवाला ( अब ) तीनों लोकोंमें है ही कौन। उनपर ( मुझे ) ऐसा क्रोध आता है कि उन्हें घर-घरका ( भिखारी ) बना दूँ; ( किंतु वे तो ) श्यामसुन्दरके गर्वमें भूले हैं; क्योंकि वे ( मोहन ) उनपर प्रसन्न हो गये हैं।

राग गौरी

[ १८३ ]

नैना कह्यौ न मानैं मेरौ।
मो बरजत बरजत उठि धाए, बहुरि कियौ नहिं फेरौ ॥ १ ॥
निकसे जल प्रवाह की नाईं, पाछैं फिरि न निहारयौ।
भव जंजाल तोरि तरु बन के, पल्लव ह्वै बिदारयौ ॥ २ ॥
तबही तैं यह दसा हमारी, जब येऊ गए त्यागि।
सूरदास प्रभु सौं वे लुबधे, ऐसे बड़े सभागि ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्र मेरा कहना नहीं मानते, मेरे बार-बार मना करनेपर भी वे उठकर

( श्यामसुन्दरकी ओर ) दौड़ पड़े और फिर लौटकर ( इधर ) आये ही नहीं । ( वे ) जलके प्रवाहकी भाँति निकले तथा पीछे घूमकर देखातक नहीं। ( उन्होंने हमारे ) संसारके जंजाल ( सम्बन्ध ) रूपी वनके वृक्षोंको तोड़कर पल्लवके समान कोमल हृदयको विदीर्ण कर दिया । ( इस प्रकार ) जबसे ये ( नेत्र ) भी छोड़ गये, तभीसे हमारी यह दशा हो गयी है। ( ये तो ) ऐसे महान् भाग्यवान् हैं कि हमारे स्वामीपर लुब्ध ( मोहित ) हो गये हैं।

राग टोड़ी

[ १८४ ]

इन नैनन मोहि बहुत सतायौ।
अब लौं कानि करी मैं सजनी, बहुतै मूँड़ चढ़ायौ ॥ १ ॥
निदरें रहत गहें रिस मोसौं, मोही दोष लगायौ।
लूटत आपुन श्री अँग सोभा, ज्यौं निधनी धन पायौ ॥ २ ॥
निसिहूँ दिन ये करत अचगरी, मनहिं कहा धौं आयौ।
सुनौ सूर इन्ह कौं प्रतिपालत आलस नेक न लायौ ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—(सखी ! मेरे ) इन नेत्रोंने मुझे बहुत सताया है । सखी ! अबतक ( मैंने इनका ) मान रखा और ( इनको ) बहुत ही सिर चढ़ा लिया ( धृष्ट बना दिया )। ( ये ) मेरी उपेक्षा किये रहते हैं, मुझसे रोष रखते हैं और मुझे ही दोष लगाते हैं। जैसे कंगालने धन पा लिया हो, इस प्रकार स्व ( मोहनके ) श्रीअङ्गकी शोभा लूटते रहते हैं। ( ये ) रात-दिन ( मुझसे ) नटखटपन करते हैं; पता नहीं इनके मनमें क्या समाया है । सुनो ! इनका पालन-पोषण करनेमें मैंने तनिक भी आलस्य नहीं किया था।

राग रामकली

[ १८५ ]

लोचन भए स्याम के चेरे।
एते पै सुख पावत कोटिक, मो तन फेरि न हेरे ॥ १ ॥

हा हा करत, परत हरि चरननि, ऐसें बस भए उनहीं ।
उन कौ वदन बिलोकत निसि दिन, मेरौ कह्यौ न सुनहीं ॥ २ ॥
ललित त्रिभंगी छबि पै अँटके, फटके मोसौं तोरि ।
सूर दसा यह मेरी कीन्ही आपुन हरि सौं जोरि ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—(सखी! मेरे) नेत्र (तो) श्यामके दास हो गये हैं। इतनेपर (दास हो जानेपर) भी (ये) करोड़ों गुना (अमित) आनन्द पाते हैं, मेरी ओर (तो इन्होंने) घूमकर देखातक नहीं। (ये) श्यामसुन्दरके ऐसे वश हो गये हैं कि बार-बार 'हा हा' (अनुनय-विनय) करते तथा उनके चरणोंपर पड़ते हैं; रात-दिन उनका मुख ही देखते रहते हैं, मेरा कहना सुनते ही नहीं। इन्होंने मुझसे सम्बन्ध झटककर तोड़ दिया और (उन मोहनकी) ललित त्रिभङ्गी शोभामें उलझे हैं। इन्होंने अपनी प्रीति श्यामसुन्दरसे जोड़कर मेरी यह दशा कर दी है।

राग धनाश्री

[ १८६ ]

हरि छबि देखि नैन ललचाने ।
इकटक रहैं चकोर चंद ज्यौं, निमिष बिसरि ठहराने ॥ १ ॥
मेरौ कह्यौ सुनत नहिं स्रवननि, लोक लाज न लजाने ।
गए अकुलाइ धाइ मो देखत, नेकौ नाहिं सकाने ॥ २ ॥
जैसें सुभट जात रन सनमुख लरत न कबहुँ पराने ।
सूरदास ऐसी इन्हि कीन्ही, स्याम रंग लपटाने ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—(सखी! मेरे) नेत्र श्यामसुन्दरकी शोभा देखकर लुब्ध हो गये हैं, जैसे चकोर चन्द्रमाको एकटक होकर देखता है, उसी प्रकार ये पलकें गिराना भूलकर स्थिर हो गये हैं। मेरा कहना (ये) कानोंसे सुनते नहीं और समाजकी लज्जासे भी लज्जित नहीं होते। मेरे देखते-देखते (ये) आतुर होकर दौड़ गये, इन्होंने तनिक भी संकोच नहीं किया। जैसे अच्छा योद्धा युद्धमें सामने जाता है और

युद्ध करते हुए कभी भागता नहीं। ऐसा ही कार्य इन्होंने भी किया, ( ये ) श्यामसुन्दरके प्रेममें ही लिप्त हो गये।

राग गुंडमलार

[ १८७ ]

नैन तौ कहे मैं नाहिं मेरे।
बारहीं-बार कहि हटकि राखत कितक,
गए हरि संग, नहिं रहे घेरे ॥ १ ॥
ज्यौं व्याध-फंद तैं छुटत खग उड़ि चलत,
तहाँ फिरि तकत नहिं त्रास माने।
जाइ बन द्रुमनि मैं दुरत, त्यौं ही गए,
स्याम तनु रूप बन मैं समाने ॥ २ ॥
पालि इतने किए, आजु उन्ह के भए,
मोल करि लए अब स्याम उन्ह कौं।
सूर यह कहतिं ब्रजनारि ब्याकुल प्रेम,
नैन लै गए पछितातिं मन कौं ॥ ३ ॥

व्रजकी गोपियाँ ( श्यामसुन्दरके ) प्रेममें व्याकुल होकर ( परस्पर ) यह कहती हैं—'नेत्र तो हमारे कहनेमें नहीं हैं। बार-बार समझाकर कितना ही रोक रखती हूँ; फिर भी ( ये ) श्यामके साथ चले ही गये, रोकनेसे रुके नहीं। जैसे पक्षी व्याधके फंदेसे छूटनेपर उड़ चलता है, फिर त्रास मान ( डरकर ) वहाँ ( उधर ) देखता ( तक ) नहीं और जाकर वनके वृक्षोंमें छिप जाता है, वैसे ही जाकर ( ये मेरे नेत्र भी ) श्यामसुन्दरके अङ्ग-सौन्दर्यरूपी वनमें प्रविष्ट हो गये। पालकर तो ( इनको ) हमने बड़ा किया, पर हो गये आज उनके; श्यामसुन्दरने अब उनको मोल लिया है।' सूरदासजी कहते हैं—इस प्रकार ( गोपियोंके ) नेत्र तो ( मोहन ) ले ही गये, अब मनके लिये ( भी वे ) पश्चात्ताप करती हैं।

राग जैतश्री

[ १८८ ]

नैना हाथ न मेरे आली!
इत ह्वै गए ठगोरी लावत, सुंदर कमल नैन बनमाली ॥ १ ॥
वे पाछें ये आगें धाए, मैं बरजति बरजति पचि हारी।
मेरें तन वे फेरि न चितए, आतुरता वह कहौं कहा री ॥ २ ॥
जैसे बरत भवन तजि भजिऐ, तैसेहिं गए फेरि नहिं हेरी।
सूर स्याम रस रसे रसीले, पै पानी को करै निबेरौ ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी! (मेरे) नेत्र मेरे हाथ (वश) में नहीं हैं, (क्योंकि) परम सुन्दर कमललोचन वनमाली (इनपर) इधरसे ही मोहिनी डालते गये हैं। वे पीछे थे, ये (नेत्र) आगे दौड़ गये; मैं (इन्हें) रोकते-रोकते श्रम करके थक गयी। उन्होंने मेरी ओर फिरकर देखा (भी) नहीं, (उनकी) उस आतुरताका क्या वर्णन करूँ। जैसे जलते हुए मकानको छोड़कर भागना चाहिये, उसी प्रकार वे गये और लौटकर देखातक नहीं। (वे) श्यामसुन्दरके प्रेमके रसिक बनकर दूधमें पानी (के समान) उन्हींमें निमग्न हो गये; (अब भला, उन्हें) अलहदा (पृथक्) कौन कर सकता है।

राग रामकली

[ १८९ ]

स्याम रँग रँगे रँगीले नैन।
धोए छुटत नाहिं यह कैसेहुँ, मिले पिघलि ह्वै मैन ॥ १ ॥
औचकहीं आँगन ह्वै निकसे, दै गए नैनन सैन।
नख सिख अंग अंग की सोभा निरखि लजत सत मैन ॥ २ ॥
ये गीधे नहिं टरत उहाँ तैं, मोसौं लैन न दैन।
सूरज प्रभु के सँग सँग डोलत, नेकहुँ करत न चैन ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! ) मेरे अनुरागी नेत्र श्याम (-प्रेम ) के रंगमें ( ऐसे ) रँग गये कि अब किसी प्रकार धोनेसे भी यह रंग छूटता नहीं, मोमके समान पिघलकर ये उसीमें मिल गये। ( वे मोहन ) अचानक ही ( मेरे ) आँगन (-द्वार ) के सामनेसे निकले और नेत्रोंसे संकेत कर गये; ( उस समय ) उनके नखसे चोटीतक अङ्ग-प्रत्यङ्गकी शोभा देखकर सैकड़ों कामदेव लज्जित होते थे। ये ( नेत्र ) वहीं परच गये हैं; वहाँसे हटते ही नहीं; ( अब ) मुझसे ( उनका ) ( कोई ) लेना-देना ( सम्बन्ध ) ही न रहा। वे हमारे स्वामीके साथ-ही-साथ घूमते, तनिक भी विश्राम नहीं करते।

राग ईमन

[ १९० ]

नैन भए हरिही के।
जब तैं गए फेरि नहिं चितए, ऐसे गुन इनही के ॥ १ ॥
और सुनौ इन्ह के गुन सजनी, सोऊ तुम्हैं सुनाऊँ।
मोसौं कहत तुहू नहिं आवै, सुनत अचंभौ पाऊँ ॥ २ ॥
मन भयौ ढीठ, इनहु कौ कीन्हौ, ऐसे लोनहरामी।
सूरदास प्रभु इन्है पत्याने, आखिर बड़े निकामी ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! ) मेरे नेत्र ( तो ) श्यामके ही हो गये; इनके ऐसे ही गुण हैं कि जब ( यहाँ ) से गये, फिर ( इधर ) देखा ही नहीं। सखी ! इनके और गुण सुनो, वे भी तुम्हें सुनाती हूँ। ये मुझसे कहते हैं—'तू भी नहीं आ जाती !' यह सुनकर मैं आश्चर्यचकित होती हूँ। मन धृष्ट हो गया और इनको भी ( उसने ) ढीठ बना दिया, ये ऐसे नमकहरामी हैं। हमारे स्वामीने इनका विश्वास किया; ( किंतु ) वास्तवमें ( ये ) बड़े ही निकम्मे निकले।

राग बिलावल

[ १९१ ]

नैना लुब्धे रूप कौं अपने सुख माई।
अपराधी अपस्वारथी मोकौं बिसराई ॥ १ ॥
मन इंद्री तहईं गए, कीन्ही अधमाई।
मिले धाइ अकुलाइ कैं, मैं करति लराई ॥ २ ॥
अतिहिं करी उन्ह अपतई, हरि सौं सुपत्याई।
वे इन सौं सुख पाइ कैं, अति करैं बड़ाई ॥ ३ ॥
अब वे भरुहाने फिरैं, कहुँ डरत न माई।
सूरज प्रभु मुँह पाइ कैं भए ढीठ बजाई ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी ! अपने सुखके लिये ( मेरे ) नेत्र ( उन श्यामसुन्दरके ) रूपपर लुब्ध हुए हैं, ( इन ) अपना ही स्वार्थ चाहनेवाले अपराधियोंने मुझे भुला दिया। मन और इन्द्रियोंने ( भी ) अधमता की, ( वे ) वहीं चले गये। मैं झगड़ा करती ही रही और वे आतुरतापूर्वक दौड़कर मोहनसे जा मिले। उन्होंने श्यामसुन्दरपर भली प्रकार विश्वास करके ( बड़ी ) धृष्टता की तथा वे ( श्यामसुन्दर ) इनसे ( भली प्रकार ) सुख पाकर इनकी अत्यधिक बड़ाई करते हैं। सखी ! अब वे भ्रमित हो घूमते हैं, कहीं डरते नहीं। हमारे स्वामीका रुख पाकर ( वे ) डंकेकी चोट ढीठ हो गये हैं।

राग सारंग

[ १९२ ]

ढीठ भए ये डोलत हैं।
मौन रहत मो पै रिस पाएँ, हरि सौं खेलत बोलत हैं ॥ १ ॥
कहा कहौं निठुराई इन्ह की, सपनेहुँ ह्याँ नहिं आवत हैं।
लुब्धे जाइ स्याम सुंदर कौं, उनही के गुन गावत हैं ॥ २ ॥

**जैसें इन्ह मोकौं परितेजी, कबहूँ फिरि न निहारत हैं।**
**सूर भले कौ भलौ होइगौ, वे तो पंथ बिगारत हैं ॥ ३ ॥**

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! ) ये ( मेरे नेत्र ) ढीठ हुए घूमते हैं, मुझसे ( तो ) रुष्ट हुए मौन रहते हैं और श्यामके साथ खेलते-बोलते हैं। इनकी निष्ठुरता क्या कहूँ, स्वप्नमें भी ( ये ) यहाँ नहीं आते; श्यामसुन्दरके ( पास ) जाकर उन्हींपर लुब्ध हुए उन्हींका गुणगान करते हैं। जैसे ( इन्होंने ) मुझे त्याग दिया हो, ( इस प्रकार ये ) फिर कभी लौटकर ( भी मेरी ओर ) नहीं देखते हैं। जो भला है, उसका तो भला ही होगा, पर वे तो मार्ग ( नियम ) बिगाड़ते हैं।

राग बिलावल

[ १९३ ]

**सुनि सजनी ! तू भई अयानी।**
**या कलियुग की बात सुनाऊँ, जानति तोहि सयानी ॥ १ ॥**
**जो तुम्ह करौ भलाई कोटिक, सो नहिं मानै कोई।**
**जे अनभले बड़ाई तिन्ह की, मानैं जोई सोई ॥ २ ॥**
**प्रगट देखि का दूरि बताऊँ, हमहु स्याम कौं ध्यावैं।**
**सुनौ सूर सब ब्याकुल डोलैं, नैन तुरत फल पावैं ॥ ३ ॥**

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सुन सखी! तू तो नासमझ हो गयी है, मैं तो तुझे समझदार समझती थी। सुन! तुझे इस कलियुगकी दशा सुनाऊँ। यदि तुम करोड़ों उपकार करो, तो भी ( इस युगमें ) उसे कोई मानता नहीं। ( किंतु ) जो बुरे लोग हैं, उनकी बड़ाई होती है; जिसे लोग मान लें, वही श्रेष्ठ माना जाता है। दूरकी बात क्या बताऊँ, प्रत्यक्ष देख ले। श्यामसुन्दरका ध्यान तो हम भी करती हैं; ( किंतु ) सुनो ! हम सब तो व्याकुल ( बनी ) घूमती हैं और नेत्र तुरंत फल ( दर्शन-लाभ ) पा लेते हैं।

[ १९४ ]

नैन करैं सुख, हम दुख पावैं।
ऐसौ को पर बेदन जानै, जासौं कहि जु सुनावैं ॥ १ ॥
तातैं मौन भलौ सबही तैं, कहि कैं मान गँवावैं।
लोचन मन इंद्री हरि कौं भजि, तजि हम कौं सुख पावैं ॥ २ ॥
वे तौ गए आपने कर तैं, वृथा जीव भरमावैं।
सूर स्याम हैं चतुर सिरोमनि, तिन सौं भेद जनावैं ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखियो ! हमारे ) नेत्र तो आनन्द करते हैं और हम ( सब ) दुःख पाती हैं; ऐसा कौन है, जो दूसरेकी पीड़ा समझ सके, जिसे हम उसे कहकर सुनायें। इसलिये सबसे अच्छा चुप रहना ही है, कहकर तो अपना सम्मान खोना है। नेत्र, मन तथा इन्द्रियाँ तो हमें छोड़ श्यामसुन्दरसे प्रेम करके आनन्द मनाती हैं। वे ( नेत्रादि इन्द्रियाँ ) तो अपने हाथसे गयीं ही, ( अब ) व्यर्थ अपने चित्तको भ्रममें क्यों डालें। श्यामसुन्दर तो चतुर-शिरोमणि हैं, उन्हींको सब रहस्य बता दें।

राग धनाश्री

[ १९५ ]

इन्ह नैनन की कथा सुनावैं।
इन्ह कौ गुन औगुन हरि आगें, तिल तिल भेद जनावैं ॥ १ ॥
इन्ह सौं तुम्ह परतीति बढ़ावत, ये हैं अपने काजी।
स्वारथ मानि लेत रति करि कैं, बोलत हाँ जी, हाँ जी ॥ २ ॥
ये गुन नहिं मानत काहू कौ, अपने सुख भरि लेत।
सूरज प्रभु ये पहलैं हित करि फिरि पाछैं दुख देत ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! ) इन नेत्रोंकी कहानी ( मोहनको ) सुनायें, श्यामसुन्दरके आगे इनका गुण तथा अवगुण

तिल-तिल करके ( सम्पूर्ण ) रहस्य प्रकट कर दें ! ( श्यामसुन्दरसे कहें—) "तुम ( तो ) इनसे विश्वास बढ़ाते ( इनका दृढ़ विश्वास करते ) हो; किंतु ये अपना ही स्वार्थ देखनेवाले हैं। तुमसे प्रेम करके ये अपना स्वार्थ मान रहे हैं; इसीलिये 'हाँ जी, हाँ जी' कहते हैं। ये किसीका गुण ( उपकार ) मानते नहीं, अपना ही सुख भरे लेते ( अपना ही स्वार्थ सिद्ध करते ) हैं। हमारे स्वामी ! ये पहिले प्रेम करते हैं, फिर पीछे दुःख देते हैं।"

राग सोरठी

[ १९६ ]

ये नैना यौं आहिं हमारे।
इतने तैं इतने हम कीन्हे, बारे तैं प्रतिपारे ॥ १ ॥
धोवति पुनि अंचल लै पोंछति, आँजति इन्है बनाइ।
बड़े भए तब लोन मानि ये जहँ तहँ चलत भगाइ ॥ २ ॥
ऐसे सेवक कहाँ पाइहौ, यहै कहैं हरि आगें।
ये अब ढीठ भए ह्याँ डोलत, इन्है बनै परित्यागें ॥ ३ ॥
सूर स्याम तुम्ह त्रिभुवन नायक, दुखदायक तुम्ह नाहीं।
ज्यौं त्यौं करि ए हमैं मिलावौ, यहै कहैं बलि जाहीं ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! ) यों ( तो ) ये नेत्र हमारे हैं; ( क्योंकि ) मैंने ( इन्हें ) बचपनसे पाल-पोसकर इतने ( छोटे ) से इतना ( बड़ा ) किया है। इन्हें ( मैं ) धोती थी, फिर अञ्चल लेकर पोंछती थी और ( फिर ) भलीभाँति इन्हें आँजती ( अञ्जन लगाती ) थी; ( अब ये ) बड़े हुए तब उपकार मानकर ( व्यङ्गसे कृतघ्न बनकर ) जहाँ-तहाँ भाग चलते हैं। ( अतः ) श्यामके सामने हम यही कहें कि 'तुम ऐसे ( नमकहराम ) सेवक कहाँ पाओगे। अब ये ढीठ हुए यहाँ ( तुम्हारे पास ) घूमते हैं, ( अन्तमें तुम्हें भी ) इनको ( ऐसी आदतें देखकर ) छोड़ते ही बनेगा ( इनका त्याग करना ही पड़ेगा )। श्यामसुन्दर ! तुम तीनों

लोकोंके स्वामी हो, तुम ( किसीको ) दुःख देनेवाले नहीं हो; जैसे-तैसे करके इन ( नेत्रों ) को हमसे मिला दो, यही प्रार्थना करके हम तुम्हारी बलिहारी जाती हैं !'

राग सूही

[ १९७ ]

नैनन कौं अब नाहिं पत्याउँ।
बहुर्‌यौ उन्ह कौं बोलति हौ तुम्ह, हाय हाय लीजै नहिं नाउँ ॥ १ ॥
अब उन कौं मैं फेरि बसाऊँ, मेरैं उन कौं नाहीं ठाँउँ।
ब्याकुल भई डोलिहौं ऐसेहिं, वे जहँ रहैं तहाँ नहिं जाउँ ॥ २ ॥
खाइ खवाइ बड़े जब कीन्हे, बसे जाइ अब औरेहिं गाउँ।
अपने किए फलै पावैंगे, मैं काहें उन कौं पछिताउँ ॥ ३ ॥
जैसें लोन हमारौ मान्यौ, कहा कहौं, कहि काहि सुनाउँ।
सूरदास मैं इन्ह बिन रहिहौं, कृपा करैं, उन कौं सिर नाउँ ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें पहली गोपी कहती है—( सखी ! ) अपने नेत्रोंका अब मैं विश्वास नहीं करूँगी। हाय, हाय, तुम उनको फिरसे बुला रही हो, उनका ( तो ) नाम ( भी ) नहीं लेना चाहिये। अब मैं उन्हें फिर बसा लूँ ? ( अब ) मेरे ( पास तो ) उनके लिये स्थान ही नहीं है। मैं ( तो ) इसी प्रकार व्याकुल हुई घूमती रहूँगी; ( किंतु ) वे जहाँ रहते हैं, वहाँ नहीं जाऊँगी। खिला-पिलाकर जब ( उन्हें ) बड़ा कर दिया, ( तो ) अब वे दूसरे ही गाँवँ ( दूसरेके पास ) जा बसे। वे अपने कियेका फल पायेंगे, मैं उनके लिये क्यों पश्चात्ताप करूँ ? इन्होंने जैसा हमारा उपकार माना, वह क्या कहूँ और किसको वर्णन करके सुनाऊँ। ( अब तो मैं ) इनके बिना ही रहूँगी, ( वे मुझपर ) अब कृपा ही करें, मैं उनको नमस्कार करती हूँ।

[ १९८ ]

सतर होति काहे कौं माई !
आपें नैन धाइ कैं लीजै,
आवत अब वे ह्याँ बेहाई ! ॥ १ ॥
जिन्ह अपनौ घर दर परित्याग्यौ,
उन्ह तौ उहाँ कछू निधि पाई।
परे जाइ वा रूप लूटि मैं,
जानति हौं उन्ह की चतुराई ॥ २ ॥
बिन कारन तुम्ह सोर लगावति,
बृथा होति कापै रिसहाई।
सूर स्याम मुख मधुर हँसनि पै,
बिबस भए वे तन बिसराई ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक दूसरी गोपी कह रही है—सखी ! ( नेत्रोंपर इतनी ) रुष्ट क्यों होती है ? यदि नेत्र ( अपने पास ) आयें तो दौड़कर ( उन्हें ) लेना ( उनका स्वागत करना ) चाहिये; ( क्योंकि ) अब वे यहाँ निर्लज्ज होकर ( ही तो ) आयेंगे । जिन्होंने अपना घर-द्वार छोड़ा है, उन्होंने वहाँ कुछ सम्पत्ति तो पायी ( ही ) होगी, ( तभी तो छोड़ा ) । मैं उनकी चतुरता जानती हूँ, वे उस सौन्दर्य-की लूटमें जा पड़े । बिना कारण ही तुम हल्ला ( शिकायत ) करती हो । व्यर्थ किसपर रोष करती हो, वे ( नेत्र ) तो श्यामसुन्दरकी मधुर हँसीपर अपने शरीरकी सुधि भूलकर विवश हो गये हैं ( उनका कोई दोष नहीं है ) ।

राग बिहागरौ

[ १९९ ]

लोचन आइ कहा ह्याँ पावैं !
कुंडल झलक कपोलन रीझे, स्याम पठाएहूँ नहिं आवैं ॥ १ ॥

जिन्ह पायौ अंमृत घट पूरन, छिन छिन घात अघात।
ते तुम सौं फिरि कैं रुचि मानैं, कहति अचंभौ बात ॥ २ ॥
रस लंपट वे भए रहत हैं, ब्रज घर घर यह बानी।
हमहू कौं अपराध लगावैं, येऊ भईं दिवानी ॥ ३ ॥
लूटैं ए इंद्री मन मिलि कैं, त्रिभुवन नाम हमारौ।
सूर कहाँ हरि रहत, कहाँ हम, यह काहें न बिचारौ ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—(सखी!) ये मेरे नेत्र यहाँ आकर क्या पायेंगे? वे (तो वहाँ मोहनके) कपोलोंपर पड़ती हुई कुण्डलोंकी कान्तिपर रीझ गये हैं, अतः श्यामसुन्दरके भेजनेपर भी (वे यहाँ) नहीं आयेंगे। जिन्होंने अमृतसे भरा पूर्ण घड़ा पा लिया है और प्रत्येक क्षण उसे पीकर परितृप्त होते रहते हैं, वे लौटकर तुमसे रुचि मानेंगे (प्रेम करेंगे)? यह तो तुम आश्चर्यकी बात कहती हो। वे रसके लालची बने रहते हैं, यह व्रजके सभी घरोंमें चर्चा है; हमको भी (वे) दोष लगाते हैं; (लोग कहते हैं—) ये भी पगली हो गयी हैं! इन्द्रियों तथा मनसे मिलकर (श्यामसुन्दरके सांनिध्यका) सुख तो ये लूटते हैं और तीनों लोकोंमें नाम हमारा (बदनाम) होता है, (तुम) यह क्यों विचार नहीं करते हो कि कहाँ श्यामसुन्दर रहते हैं और कहाँ हम रहती हैं!

राग धनाश्री

[ २०० ]

नैनन तैं यह भई बड़ाई।
घर घर यहै चबाउ चलावत, हम सौं भेंट न माई ॥ १ ॥
कहाँ स्याम मिलि बैठी कबहूँ, कहनावति ब्रज ऐसी।
लूटैं ये, उपहास हमारौ, यह तौ बात अनैसी ॥ २ ॥
येई घर घर कहत फिरत हैं, कहा करैं पचि हारी।
सूर स्याम यह सुनत हँसत हैं, नैन किए अधिकारी ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! ) यह ( हमारी ) बड़ाई ( व्यंगसे अपयश ) नेत्रोंके कारण ही हुई है; सखी ! हमसे ( तो उन मोहनकी ) भेंट ही नहीं; ( किंतु ) घर-घर यही निन्दा ये चलवाते रहते हैं । व्रजमें चर्चा तो ऐसी सुनी जाती है, किंतु हम श्यामसुन्दरसे कभी मिलकर कहाँ बैठी हैं ? यह तो बहुत बुरी बात है कि सुख ( तो ) ये नेत्र लूटते हैं और हँसी हमारी होती है । ये ही घर-घर ( ऐसी बात ) कहते घूमते हैं; क्या करें, हम प्रयत्न करके हार गयीं । श्यामसुन्दर तो यह सुनकर हँस देते हैं, ( उन्होंने ) नेत्रोंको ( अपने दर्शनका ) अधिकारी बना दिया है ।

राग सारंग

[ २०१ ]

नैन भए अधिकारी जाइ ।
यह तुम्ह बात सुनी सखि नाहीं,
मन आए गए भेद बताइ ॥ १ ॥
जब आवैं कबहूँ ढिग मेरे,
तब तब यहै कहत हैं आइ ।
हमहीं लै मिलयौ, हम देखत
स्याम रूप मैं गए समाइ ॥ २ ॥
अब वेऊ पछितात बात कहि,
उनहू कौं वे भए बलाइ ।
अपनौ कियौ तुरत फल पायौ,
ऐसी मन कीन्ही अधमाइ ॥ ३ ॥
इंद्री मन अब नैनन पाछैं,
ऐसे उन्ह बस किए कन्हाइ ।
सूरदास लोचन की महिमा,
कहा कहैं कछु कही न जाइ ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! हमारे ) नेत्र ( श्यामके पास ) जाकर अधिकारी बन गये हैं। सखी ! तुमने यह बात नहीं सुनी ? (हमारा) मन आया था, वही यह रहस्य बता गया है। जब कभी वह ( मन ) मेरे पास आता है, तब-तब आकर यही कहता है—नेत्रोंको हमने ( ही तो ) ले जाकर ( मोहनसे ) मिलाया और हमारे देखते-देखते वे श्यामसुन्दरके रूपमें लीन हो गये ( हमें भी उन्होंने नहीं पूछा )। यह बात कहकर अब वह भी पश्चात्ताप करता है, उसके लिये भी वे ( नेत्र ) विपत्तिस्वरूप बन गये हैं; ( अतः मनने ) अपने कियेका फल तुरंत पा लिया, ऐसी अधमता मनने ( ही ) की थी। अब इन्द्रिय और मन नेत्रोंके पीछे ( चलनेवाले ) हो गये, उन्होंने कन्हैयाको ( इस प्रकार) वशमें कर लिया है। इन नेत्रोंकी महिमा क्या कहूँ, कुछ कही नहीं जाती ।

राग रामकली

[ २०२ ]

जब तैं हरि अधिकार दियौ।  
तबही तैं चतुरई प्रकासी, नैनन अतिहिं कियौ ॥ १ ॥  
इंद्रिनि पै मन नृपति कहावत, नैनन यहै डरात।  
काहे कौं मैं इन्हैं मिलाए जानि-बूझि, पछितात ॥ २ ॥  
अब सुधि करन हमारी लाग्यौ, उन्ह की प्रभुता देखि।  
हियौ भरत कहिं इन्है टराऊँ, वे इकटक रहे पेखि ॥ ३ ॥  
अब मानत हैं दोष आपनौ, हमही बैच्यौ आइ।  
सूरदास प्रभु के अधिकारी येई भए बजाइ ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—(सखी!) जबसे श्यामसुन्दरने इन ( नेत्रों ) को अधिकार दिया है, तभीसे इन्होंने अपनी चतुरता प्रकट की है। ( इन ) नेत्रोंने ( तो ) अति कर दी ( सीमासे बाहर अन्याय कर डाला )। इन्द्रियोंके ऊपर मन राजा कहा जाता है; ( किंतु ) नेत्रोंसे

वह भी डरता है और अब पश्चात्ताप करता है कि 'इनको मैंने जान-बूझकर ( श्यामसुन्दरसे ) क्यों मिलाया ?' अब उन ( नेत्रों ) का प्रभुत्व देखकर ( मन ) हमारी याद करने लगा; बार-बार हृदय भरता ( सोचता ) है कि ( अब ) 'इन ( नेत्रों ) को ( कैसे ) हटाऊँ ? ये तो अपलक ( श्यामसुन्दरको ) देख रहे हैं ।' अब ( मन ) अपना दोष मानता है कि हमने ( ही ) आकर ( इन नेत्रोंको ) बेंच दिया; ये ( नेत्र ) ही ( अब ) डंकेकी चोट हमारे स्वामीके अधिकारी बन गये ।

राग बिलावल

[ २०३ ]

जद्यपि नैन भरत ढरि जात ।
इकटक नैक नाहिं कहुँ टारत, तृपति न होत अघात ॥ १ ॥
अपनेहीं सुख भरत निस दिन, जद्यपि पूरन गात ।
लै लै भरत आपने भीतर, औरहि नाहिं पत्यात ॥ २ ॥
जोइ लीजै सोई है अपनौ, जैसें चोर भगात ।
सुनौ सूर ऐसे ये लोभी, धन्नि इन्ह के पितु मातु ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—(सखी ! ) यद्यपि ( हमारे ) नेत्र भरते ही ढुलक जाते ( अश्रु गिरा देते ) हैं, ( फिर भी ) अपलक बने रहते हैं, कहीं तनिक भी हटते नहीं, ( मोहनको देखनेमें ) भली प्रकार तृप्त होते ही नहीं । यद्यपि इनका शरीर ( उस रससे ) पूर्ण है, तब भी रात-दिन अपने सुखके लिये ही भरते रहते हैं । ( मनमोहनकी छवि ) ले-लेकर अपने भीतर भरते रहते हैं, दूसरे किसीपर विश्वास ( ही ) नहीं करते । जैसे भागता हुआ चोर समझता है कि जो ले लिया जाय, वही अपना है, सुनो ! ये ( नेत्र ) भी वैसे ही लोभी हैं, इनके पिता-माता धन्य हैं !

राग सोरठ

[ २०४ ]

नैना अतिहीं लोभ भरे।
संगै संग रहत वे जहँ तहँ, बैठत चलत खरे ॥ १ ॥
काहू की परतीति न मानत, जानत सबहिनि चोर।
लूटत रूप अखूट दाम कौं, स्याम वस्य यौं भोर ॥ २ ॥
बड़े भागमानी यह जानी, कृपन न इन्ह तैं और।
ऐसी निधि मैं नाम न कीन्हौं, कहँ लैहैं, कहँ ठौर ॥ ३ ॥
आपुन लेहिं औरहू देते, जस लेते संसार।
सूरदास प्रभु इन्है पत्याने, को कहै बारंबार ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! हमारे ) नेत्र ( तो ) अत्यन्त लोभसे भर गये हैं; जहाँ-तहाँ ( सर्वत्र ) बैठते, चलते तथा खड़े ( सभी दशाओंमें श्यामसुन्दरके ) साथ-ही-साथ रहते हैं। ( ये नेत्र ) किसीका विश्वास नहीं करते, सभीको चोर समझते हैं; श्यामसुन्दर भोलेपनसे इनके ऐसे वश हो गये हैं कि ( उनके ) अक्षय मूल्यका सौन्दर्य ( ये ) लूटते रहते हैं ( और वे कुछ नहीं कहते )। ( मैं तो इनको ) बड़ा भाग्यवान् ( ऐश्वर्यशाली ) समझती थी, ( परंतु ) इनसे ( अधिक ) कृपण ( तो ) दूसरा है ही नहीं। ऐसी सम्पत्ति पाकर भी ( इन्होंने ) नाम ( यश ) नहीं कमाया; ( अन्ततः ) कहाँतक लेंगे और ( उसे रखनेको इनके पास ) स्थान ( भी ) कहाँ है। ( इनको चाहिये था ) स्वयं ( उस रूप-रसको ) लेते, दूसरेको भी देते और संसारमें सुयश लेते। ( किंतु ) हमारे स्वामीने इनका ही विश्वास किया, ( अतः ) बार-बार कौन कहे।

राग कान्हरौ

[ २०५ ]

ऐसे आपस्वारथी नैन।
अपनौइ पेट भरत हैं निसि-दिन, और न लैन न दैन ॥ १ ॥

वस्तु अपार परी ओछे कर, ये जानत घटि जैहै।
को इन्ह सौं समझाइ कहै यह, दीन्हें ही अधिकैहै॥ २॥
सदाँ नाहिं रैहैं अधिकारी, नाउँ राखि जो लेते।
सूर स्याम सुख लूटैं आपुन, औरनहू कौं देते॥ ३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—(सखी! ये हमारे) नेत्र ऐसे अपना ही स्वार्थ देखनेवाले हैं कि रात-दिन अपना ही पेट भरते हैं, दूसरे (किसी) से लेना-देना ही नहीं (रखते)। अपार वस्तु ओछे हाथों पड़ गयी है; ये समझते हैं कि (वह) कम हो जायगी। इनको समझाकर यह कौन कहे कि वह देनेसे ही अधिकाधिक बढ़ेगी। (ये) सदा अधिकारी तो रहेंगे नहीं; (अच्छा होता) यदि (ये) अपना नाम (यश) रख लेते (कमा लेते) और श्यामसुन्दरका आनन्द स्वयं (तो) लूटते (ही), दूसरोंको भी (वह आनन्द) देते।

राग बिलावल

[ २०६ ]

जे लोभी ते देहिं कहा री।
ऐसे निठुर नाहिं मैं जाने, जैसे नैन महा री॥ १॥
मन अपनौ कबहूँ वरु ह्वैहै, ये नहिं होहिं हमारे।
जब तैं गए नंद नंदन ढिग, तब तैं फिरि न निहारे॥ २॥
कोटि करौं वे हमैं न मानैं, गीधे रूप अगाध।
सूर स्याम जौ कबहूँ त्रासैं, रहै हमारी साध॥ ३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक दूसरी गोपी कहती है—सखी! जो लोभी हैं, वे (दूसरेको) क्या दे सकते हैं। (ये मेरे) नेत्र, जैसे महान् निष्ठुर हैं, ऐसे निष्ठुर (उन्हें) मैं नहीं जानती थी। मन तो कभी-न-कभी अपना हो जायगा, पर ये (नेत्र) हमारे नहीं होंगे; (क्योंकि) जबसे ये नन्दनन्दनके पास गये, तबसे इन्होंने लौटकर (हमारी ओर) देखा ही नहीं। चाहे (मैं) करोड़ों

उपाय कर लूँ, पर वे हमें माननेवाले नहीं हैं, वे तो अगाध ( अपार ) सौन्दर्यपर परच गये हैं। यदि श्यामसुन्दर ( ही ) उन्हें कभी भय दिखायें तो हमारी चाह पूरी हो जाय।

राग नट

[ २०७ ]

नैना भरे घर के चोर।
लेत नहिं कछु बनै इन्ह सौं, देखि छबि भयौ भोर ॥ १ ॥
नाहिं त्यागत नहीं भागत, रूप जाग प्रकास।
अलक डोरन बाँधि राखे, तजौ उन्ह की आस ॥ २ ॥
मैं बहुत करि बरजि हारी, निदरि निकसे हेरि।
सूर स्याम बँधाइ राखे, अंग अँग छबि घेरि ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—(सखी! हमारे) नेत्र भरे (सम्पन्न) घरके चोर हो गये। इनसे कुछ लेते बनता नहीं, (उस) शोभाको देखते-देखते ही सवेरा हो गया। (अतः) सौन्दर्यरूपी प्रकाशके जाग्रत् हो जानेके कारण (वहाँ इनसे) न तो (उसे) छोड़ते (बना) और न भागते बना। (फिर क्या था, श्यामसुन्दरने इन्हें अपनी) अलकोंकी रस्सीसे बाँध लिया, (अतः) उनकी आशा (अब) छोड़ (ही) दो। मैं बहुत प्रयत्न करके रोकते-रोकते हार गयी, पर (मेरा) अनादर करके (श्यामसुन्दरको) देखते ही निकल पड़े; (अब तो) श्यामसुन्दरने अपने अङ्ग-प्रत्यङ्गकी शोभासे घेरकर (उन्हें) बाँध रखा है।

राग बिलावल

[ २०८ ]

भली करी उन्ह स्याम बँधाए।
बरज्यौ नाहिं कर्‌यौ उन्ह मेरौ, अति आतुर उठि धाए ॥ १ ॥

अल्प चोर, बहु माल लुभाने, संगी सबनि धराए।
निदरि गए तैसौ फल पायौ, अब वे भए पराए ॥ २ ॥
हम सौं इन्ह अति करी ढिठाई, जो करि कोटि बुझाए।
सूर गए हरि रूप चुरावन, उन्ह अपबस करि पाए ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—(सखी!) श्यामसुन्दरने उन्हें (हमारे नेत्रोंको) बँधवा लिया, यह अच्छा (ही) किया। उन्होंने मेरी हटक (तो) मानी नहीं और अत्यन्त आतुरतासे उठकर दौड़ पड़े थे। (ये मेरे नेत्ररूप) छोटे चोर बहुत सम्पत्ति देखकर लालचमें पड़ गये और उन्होंने (अपने) सभी साथियोंको पकड़वा दिया। ये (जैसा) मेरा अनादर करके गये, वैसा फल पाया—अब (तो) वे दूसरेके हो गये। यद्यपि हमने इन्हें करोड़ों उपाय करके समझाया था, हमसे इन्होंने अत्यन्त धृष्टता की। ये गये (तो) थे श्यामसुन्दरका रूप चुराने, पर उन्होंने इन्हें अपने वशमें कर लिया।

राग बिहागरौ

[ २०९ ]

लोचन चोर बाँधे स्याम।
जातहीं उन्ह तुरत पकरे, कुटिल अलकन दाम ॥ १ ॥
सुभग ललित कपोल आभा गिधे दाम अपार।
और अँग छबि लोग जागे, अब नहीं निरवार ॥ २ ॥
सँग गए वे सबै अटके लटकि अंग अनूप।
एक एकै नाहिं जानत परे सोभा कूप ॥ ३ ॥
जो जहाँ सो तहाँ डार्‌यौ, नैक तन सुधि नाहिं।
सूर गुरुजन डरै मानत, यहै कहि पछिताहिं ॥ ४ ॥

(कोई गोपी कह रही है—सखी!) श्यामसुन्दरने (मेरे) चोर नेत्रों-को बाँध लिया, (उनके) जाते ही अपनी घुँघराली अलकोंकी रस्सियोंसे

बाँधकर ( उन्होंने ) तुरंत पकड़ लिया ! ये ( तो उनके ) मनोहर कपोलों-की अपार मूल्यवान् कान्तिपर ललचाये हुए ( उसे लेना चाहते ) थे, परंतु दूसरे-दूसरे अङ्गोंकी शोभारूपी लोग जाग गये ( और ये पकड़े गये ); अब इनका छुटकारा नहीं। जो ( इन्द्रिय ) साथ गये थे, वे (भी) सब श्यामसुन्दर-के अनुपम अङ्गोंकी शोभामें उलझकर रुक गये; उस सौन्दर्यके कूपमें पड़े हुए वे एक दूसरेकी दशा नहीं जानते । जो जहाँ था, उसे वहीं पटक दिया, किसीको ( अपने ) शरीरकी तनिक भी सुधि नहीं रही । सूरदासजी कहते हैं—( गोपियाँ ) यही कहकर पश्चात्ताप करती हैं कि ये गुरुजनों ( बड़ों ) का भय तो मानते ।

राग जैतश्री

[ २१० ]

लोचन भए पखेरू माई ।
लुबधे स्याम रूप चारे कौं अलक फंद परे जाई ॥ १ ॥
मोर मुकुट टाटी मानौ, यह बैठनि ललित त्रिभंग ।
चितवन लकुट, लास लटकन पिय काँपा अलक तरंग ॥ २ ॥
दौर गहन मुख मृदु मुसकावनि, लोभ पींजरा डारे ।
सूरदास मन ब्याध हमारौ, गृह बन तै जु बिसारे ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी ! नेत्र तो पक्षी हो गये; श्यामसुन्दरके सौन्दर्यरूपी चारे ( भोजन ) पर लुब्ध हुए उनकी अलकोंके फंदे ( जाल ) में जा पड़े । ( मोहनका ) मयूरमुकुट ही मानो ( पक्षी फँसाने-की ) टटिया है और उनकी ललित त्रिभङ्गी ( पक्षीके ) बैठनेका स्थान है, देखनेकी भङ्गी ( पक्षी फँसानेके ) बाँस हैं, प्रियतमका झुकना गोंद है और अलकोंकी तरङ्गें बाँसकी पतली तीली ( जिनमें गोंद लगा होता है ) । ( उनके ) मुखकी मन्द मुस्कराहट ही दौड़कर पकड़ना था, ( अतः सौन्दर्य-के ) लोभरूपी पिंजड़ेमें ( पकड़कर ) डाल दिये । ( इस प्रकार )

हमारे मनरूपी व्याधने घररूपी वनसे उन्हें विस्मृत करा ( पृथक् हटा ) दिया ।

राग गुंडमलार

[ २११ ]

कपट कन दरस खग नैन मेरे ।
चुनन निरखन तुरत आपुहीं उड़ि मिले,
परयौ चारौ पेट मंत्र केरे ॥ १ ॥
निरखि सुंदर बदन मोहिनी सिर परी,
रहे इकटक निरखि, डरत नाहीं ।
लाज कुल कानि बन फेरि आवत कबहुँ,
रहत नहिं नैकहूँ, उतै जाहीं ॥ २ ॥
मृदु हँसन व्याध पढ़ि मंत्र बोलन मधुर,
स्रवन धुनि सुनत इत कौन आवैं ।
सूर प्रभु स्याम छवि धामही मैं रहैं,
गेह बन नाम मन तैं भुलावैं ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! मोहनके ) दर्शनरूपी कपटके दाने ( भोजन ) के लिये मेरे नेत्र पक्षी ( बन गये ) हैं । उन्हें देखना ही ( दाने ) चुगना है, ( अतः ) ये तुरंत स्वयं उड़कर उनसे जा मिले और अभिमन्त्रित चारा इनके पेटमें पड़ गया । ( मानो ) उनका सुन्दर मुख देखकर ( इनके ) सिर ( पर ) मोहिनी पड़ गयी, ( अब ये उन्हें ) एकटक देखते हैं, डरते नहीं । ( यदि ) कभी लज्जा और कुल-की मर्यादारूपी वनमें लौटकर आते ( भी ) हैं तो तनिक ( देर ) भी ( यहाँ ) रहते नहीं, वहीं चले जाते हैं । मन्द मुस्कराहटरूपी व्याधने मधुर वाणीरूपी मन्त्र पढ़ दिया है, ( अतः ) वह ध्वनि कानोंसे सुनते हैं; ( फिर ) इधर कौन आये । ( वे तो ) हमारे स्वामीकी शोभा ( रूपी ) भवनमें ही रहते हैं, घर ( रूपी ) वनका नाम ( तो ) मनसे ( भी ) विस्मृत कर देते हैं ।

राग मारू

[ २१२ ]

नैन खग स्याम नीकें पढ़ाए।
किए बस कपट कन मंत्र कौं डारि कैं,
लए अपनाइ मनु इन्ह बढ़ाए ॥ १ ॥
वे गिधे उनहि सौं रूप रस पान करि,
नैकहूँ टरत नहिं चीन्हि लीन्हे।
गए हम कौं त्यागि, बहुरि कबहुँ न फिरे,
कैंचुरी उरग ज्यौं छाँड़ि दीन्हे ॥ २ ॥
एक ह्वै गए हरदी चून रंग ज्यौं,
कौन पै जात निरवारि माई!
सूर प्रभु कृपामय कियौ उन्ह बास रचि
निज देह बन सघन सुधि भुलाई ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—(सखी!) श्यामसुन्दरने (मेरे) नेत्ररूपी पक्षियोंको भलीप्रकार शिक्षित कर लिया है, छलपूर्ण अभिमन्त्रित दाने डाल (उन्हें) वशमें कर लिया और इस प्रकार अपना बना लिया मानो इन्हींने (पाल-पोसकर) बड़े किये हों। वे (उनके) सौन्दर्य-रसको पीकर उन्हींसे हिल-मिल गये हैं, उन्हें ऐसा पहिचान लिया है कि (अब वे वहाँसे) तनिक भी हटते नहीं; जैसे सर्पने केंचुल छोड़ दी हो, इस प्रकार हमें छोड़कर (वे) चले गये और फिर नहीं लौटे। (वे मोहनसे) हल्दी और चूनेके (मिले) रंगके समान एक हो गये, सखी! (भला, वे) किससे पृथक् किये जा सकते हैं। (उन्होंने मेरे) देहरूप सघन वनका स्मरण भूलकर हमारे स्वामीकी कृपाके कारण (उनके ही) शरीरको घर बनाकर (उसमें) निवास कर लिया है।

राग बिहागरौ

[ २१३ ]

नैना ऐसे हैं बिसवासी।
आपु काज कीन्हौ हम कौं तजि, तव तें भई निरासी ॥ १ ॥
प्रतिपालन करि बड़े कराए, जानि आपने अंग।
निमिष-निमिष मैं धोवति आँजति, सिखए भाव तरंग ॥ २ ॥
हम जान्यौ हम कौं ये ह्वैहैं, ऐसे गए पराइ।
सुनौ सूर बरजतहीं बरजत चेरे भए बजाइ ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! ) मेरे नेत्र ऐसे विश्वासपात्र ( व्यङ्गसे विश्वासघाती ) हैं कि हम ( मुझ ) को छोड़कर इन्होंने अपना काम बना लिया, तभीसे ( मैं ) निराश हो गयी। ( मैंने ) अपने अङ्ग समझकर ( इन्हें ) पालन-पोषण करके बड़ा किया था; पल-पलमें इन्हें धोती, अञ्जन लगाती और भावोंकी तरङ्गें ( कटाक्षादि ) सिखायीं। हमने समझा था कि ये हमारे ( कामके ) होंगे; ( किंतु ) ये तो इस प्रकार भाग गये। सुनो ! हमारे रोकते-रोकते भी ये डंकेकी चोट ( श्यामसुन्दरके ) दास हो गये।

राग जैतश्री

[ २१४ ]

नैना भए प्रगटहीं चेरे।
ताकौ कछु उपकार न मानत, जिन्ह ये किए बड़ेरे ॥ १ ॥
जौ बरजौं यह बात भली नहिं, हँसत न नैक लजात।
फूले फिरत सुनावत सब कौं, एते पै न डरात ॥ २ ॥
यहौ कही हम कौं जिन छाँड़ौ, तुम बिन तन बेहाल।
तमकि उठे यह बात सुनतहीं, गीधे गुन गोपाल ॥ ३ ॥

मुक़ट लटक भौंहन की मटकन, कुंडल झलक कपोल ।
सूर स्याम मृदु मुसकनि ऊपर लोचन लीन्हे मोल ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! ) मेरे नेत्र प्रत्यक्ष ही ( श्यामसुन्दरके ) दास हो गये । जिसने इन्हें ( इतना ) बड़ा किया, उसका ( मेरा ) कुछ भी उपकार नहीं मानते । यदि रोकती हूँ तो 'यह बात अच्छी नहीं' कहकर हँसते हैं, तनिक भी लज्जा नहीं करते । फूले ( गर्विष्ठ ) हुए सबको सुनाते घूमते हैं और इतनेपर भी डरते नहीं । यह भी ( मैंने ) कहा कि 'हमको मत छोड़ो, तुम्हारे बिना शरीर व्याकुल रहता है ।' यह बात सुनते ही गोपालके गुणोंपर लुब्धे हुए ( वे ) रुष्ट हो उठे । श्यामसुन्दरने ( अपने ) मुकुटके झुकाव, भौंहोंके चलाने, कपोलोंपर पड़ती हुई कुण्डलकी आभा और मन्द मुस्कराहटके बदले ( द्वारा ) नेत्रोंको मोल ले लिया है ।

राग सोरठ

[ २१५ ]

लोचन मेरे भृंग भए री ।
लोक लाज बन घन बेली तजि आतुर ह्वै जु गए री ॥ १ ॥
स्याम रूप रस बारिज लोचन तहाँ जाइ लुबधे री ।
लपटे लटकि पराग बिलोकनि संपुट लोभ परे री ॥ २ ॥
हँसन प्रकास बिभास देखि कैं निकसत पुनि तहँ पैठत ।
सूर स्याम अंबुज कर चरनन जहाँ तहाँ भ्रमि बैठत ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी ! मेरे नेत्र भौंरे हो गये हैं, ( वे ) लोक-लज्जारूपी वनकी सघन लताको छोड़कर आतुर बने ( शीघ्रतापूर्वक ) जो चले गये । श्यामसुन्दरके सौन्दर्यरूपी सरोवरमें भरे आनन्द-रसमें उत्पन्न कमल-लोचनोंके पास जाकर वहीं लुब्ध ( मोहित ) हो गये तथा ( मोहनकी ) झुककर देखनेकी भङ्गीरूपी परागमें लिपट गये और

ओष्ठरूप सम्पुटके लोभमें पड़ गये। हँसीरूप प्रकाशकी कान्ति देखकर निकलते हैं और फिर वहीं प्रविष्ट हो जाते हैं। श्यामसुन्दरके हाथ तथा चरण (भी) कमलके समान हैं, अतः घूम (फिर)-कर वे (नेत्र) वहीं जहाँ-तहाँ बैठ जाते हैं।

राग रामकली

[ २१६ ]

लोचन भृंग कोस रस पागे।
स्याम कमल पद सौं अनुरागे ॥ १ ॥
सकुच काँनि बन वेली त्यागी।
चले उड़ाइ सुरति रति लागी ॥ २ ॥
मुकुति पराग रसै इन्ह चाख्यौ।
भव सुख फूल रसै इन्ह नाख्यौ ॥ ३ ॥
इन्ह तैं लोभी और न कोई।
जो पटतर दीजै कहि सोई ॥ ४ ॥
गए तबहि तैं फेरि न आए।
सूर स्याम वे गहि अटकाए ॥ ५ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी! मेरे नेत्ररूपी भौंरे श्यामसुन्दरके चरणरूप कमल-कलियोंके रसमें निमग्न होकर (उनमें ही) अनुरक्त हो रहे हैं। (उन्होंने) संकोच एवं मर्यादा (रूपी) वनकी लताएँ छोड़ दीं और (वे मोहनके) प्रेममें (ही चित्तकी) प्रीति लगनेसे उड़ चले। इन्होंने (उनके चरणोंमें रहकर) मुक्तिरूपी परागका रस चखा है और संसारके सुख (रूपी) पुष्प-रसको इन्होंने फेंक दिया है। इनसे अधिक लोभी और कोई नहीं है, जिससे इनकी तुलना की जाय, उसे बताओ (तो)। जबसे (ये हमारे पाससे) गये, तबसे फिर (लौट)-कर आये नहीं, श्यामसुन्दरने (इन्हें) पकड़कर रोक रखा है।

राग सारंग

[ २१७ ]

नैना बीधे दोऊ मेरे।
मानौ परे गयंद पंक मैं, महा सबल बल केरैं ॥ १ ॥
निकसत नाहिं अधिक बल कीन्हें, जतन न बनै घनेरैं।
स्याम सुँदर के दरस परस तें, इत उत फिरत न फेरे ॥ २ ॥
लंपट लीन हटक नहिं मानत, चंचल चपल अरे रे।
सूरदास प्रभु निगम अगम सत, सुनि सुमिरत बहुतेरे ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! ) मेरे दोनों नेत्र ( मनमोहनके सौन्दर्यमें ऐसे ) फँस गये हैं, मानो अत्यन्त बलवान् गजराज बलपूर्वक ( गहराईतक ) कीचड़में पड़ गये हों। अधिक बल लगाने-पर भी ( वे ) निकल नहीं पाते, बहुत-से उपायोंसे भी कुछ बनता नहीं ( सफलता नहीं मिलती )। ( वे ) श्यामसुन्दरके दर्शन एवं स्पर्शसे इधर-उधर ( कहीं ) हटानेसे ( भी ) हटते नहीं। ( ये ) लम्पट ( वहाँ ऐसे ) लीन हो गये हैं कि मेरा बरजना भी मानते नहीं; अरे, ये बड़े ही चञ्चल तथा चुलबुले हैं। हमारे स्वामी तो वेदोंके लिये भी अगम्य-सत्ता हैं; ( उनका गुण ) सुनकर बहुत ( लोग ) उनका स्मरण करते हैं ( किंतु इन नेत्रोंके समान तो कोई उन्हींमें लीन नहीं रहता )।

राग धनाश्री

[ २१८ ]

मेरे नैन कुरंग भए।
जोवन बन तैं निकसि चले ये, मुरली नाद रए ॥ १ ॥
रूप ब्याध, कुंडल दुति ज्वाला, किंकिनि घंटा घोष।
ब्याकुल ह्वै एकै टक देखत, गुरुजन तजि संतोष ॥ २ ॥
भौंह कमान, नैन सर साधन, मारन चितवनि चारि।
ठौर रहे नहिं टरत सूर वे, मंद हँसन सिर डारि ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! ) मेरे नेत्र हिरन बन गये हैं, ( मोहनकी ) वंशीध्वनिसे मस्त होकर ( ये ) यौवनरूपी वनसे निकलकर चल पड़े। ( श्यामका ) सौन्दर्य ( इनके लिये ) व्याघ है, ( उनके ) कुण्डलकी कान्ति अग्नि-ज्वाला है और ( उनकी ) करधनी-की ध्वनि घण्टानाद है, ( इनसे ) व्याकुल होकर एकटक ( उन्हें ) देखते हैं और गुरुजनोंको त्याग देनेमें इन्हें संतोष है। ( श्यामकी ) भौंहें धनुष ( के समान ), नेत्र ( ही ) बाण-सन्धान और ( उनके ) देखनेकी मनोहर भंगी ही चोट करना है। ( इतनेपर भी ) ये ( अपने ) स्थानपर स्थिर रहे, हटते नहीं; ( श्यामसुन्दरके ) मन्द हास्यके सामने ( इन्होंने ) सिर झुका दिया है।

राग रामकली

[ २१९ ]

नैन भए बस मोहन तैं।<br>
ज्यौं कुरंग बस होत नाद के,टरत नाहिं ता गोहन तैं ॥ १ ॥<br>
ज्यौं मधुकर बस कमल कोस के,ज्यौं बस चंद चकोर।<br>
तैसेहिं ये बस भए स्याम के, गुड़ी बस्य ज्यौं डोर ॥ २ ॥<br>
ज्यौं बस स्वाति बूँद के चातक,ज्यौं बस जल के मीन।<br>
सूरज प्रभु के बस्य भए ये छिन छिन प्रीति नवीन ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्र मोहनके ( इस प्रकार ) वश हो गये हैं, जैसे मृग संगीत( स्वर ) के वश होकर उसके साथ ( पास ) से नहीं हटता। जैसे भौंरे कमल-कोशके वश होते हैं, जैसे चकोर चन्द्रमाके वशमें होता है, वैसे ही ये धागेके वश पतंगकी भाँति श्यामसुन्दरके वश हो गये। ( अथवा ) जैसे चातक स्वातीकी बूँदके वश होता है, जैसे मछली जलके वश होती है, ( वैसे ही ) ये हमारे स्वामीके वश हो गये हैं; प्रतिक्षण ( इनका ) प्रेम ( उनके प्रति ) नया ही बना रहता है।

राग टोड़ी

[ २२० ]

ऐसे बस्य न काहुहि कोऊ।
जैसे बस्य नंद नंदन के ये नैना मेरे दोऊ ॥ १ ॥
चंद चकोर नाहिं सरि इन्ह की, एकौ पल न बिसारत।
नाद कुरंग कहा पटतर इन्ह, ब्याध तुरत हीं मारत ॥ २ ॥
ये बस भए सदाँ सुख लूटत, चतुर चतुरई कीन्हे।
सूरदास प्रभु त्रिभुवन के पति, ते इन्ह वस करि लीन्हे ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! ) इस प्रकार तो कोई किसीके वशमें नहीं होता, जैसे ये मेरे दोनों नेत्र नन्दनन्दनके वश ( में ) हो गये हैं। चन्द्रमा और चकोर ( का उदाहरण ) इनकी समताके योग्य नहीं, ये ( तो ) एक पलके लिये भी ( श्यामको ) भूलते नहीं हैं। और नाद ( स्वरके वशीभूत ) मृग ( भी ) इनकी तुलनामें क्या हैं, ( जिन्हें ) व्याध तुरंत ही मार देता है। ( किंतु ) ये तो ( उन श्यामसुन्दर ) के वश होकर सदा आनन्द लूटते रहते हैं। इन चतुरोंने ऐसी चतुराई की कि हमारे स्वामी जो त्रिभुवननाथ हैं, उन्हें ( इन्होंने ) वशमें कर लिया।

राग जैतश्री

[ २२१ ]

ये नैना अपस्वारथ के।
और इन्हें पटतर क्यों दीजै, जे हैं वस परमारथ के ॥ १ ॥
बिना दोष हम कौं परित्याग्यौ, सुख कारन भए चेरे।
मिले धाइ बरज्यौ नहिं मान्यौ, तक्यौ न दैनें डेरे ॥ २ ॥
इन कौं भलौ होइगौ कैसें, नैक न सेवा मानी।
सूर स्याम इन्ह पै का रीझे, इन्ह की गति नहिं जानी ॥ ३ ॥

राग नट

[ २२५ ]

लोचन भए अतिहीं ढीठ।
रहत हैं हरि संग निसि दिन, अतिहिं नवल अहीठ ॥ १ ॥
बदत काहू नाहिं निधरक, निदरि मोहि न गनत।
बार बार बुझाइ हारी, भौंह मो पै तनत ॥ २ ॥
ज्यौं सुभट रन देखि टरत न, लरत खेत प्रचारि।
सूर छवि सनमुखै धावत निमिष अस्त्रन डारि ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्र अत्यन्त ढीठ ( निःशङ्क ) हो गये हैं, ( ये ) अत्यन्त नये हठीले रात-दिन श्यामके साथ ही रहते हैं। इतने निडर हैं कि किसीको कुछ गिनते ही नहीं, मेरी उपेक्षा करके मुझे भी कुछ नहीं गिनते। बार-बार समझाकर हार गयी, ( उलटे ) मुझपर ही भौंहें चढ़ाते ( रोष करते ) हैं। जैसे उत्तम योद्धा युद्ध देखकर हटता नहीं, युद्धभूमिमें ( शत्रुको ) ललकारकर लड़ता है, वैसे ही ये पलक गिरानारूप अस्त्रोंको फेंक ( अपलक हो ) ( श्यामसुन्दरकी ) शोभाके सम्मुख दौड़ते हैं।

राग बिलावल

[ २२६ ]

सुभट भए डोलत ये नैन।
सनमुख भिरत, मुरत नहिं पाछैं, सोभा चमू डरैं न ॥ १ ॥
आपुन लोभ अस्त्र लै धावत, पलक कवच नहिं अंग।
हाव भाव सर लरत कटाच्छन, भृकुटी धनुष अपंग ॥ २ ॥
महाबीर ये उत अँग अँग बल रूप सैन पै धावत।
सुनौ सूर ये लोचन मेरे इकटक पलक न लावत ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) ये नेत्र योधा बने घूमते हैं, सम्मुख भिड़ते हैं, पीछे मुड़ते नहीं और ( श्यामसुन्दरकी ) शोभारूपी सेनासे डरते ( भी ) नहीं । ( ये ) अपंग ( अङ्गहीन ) अपने ( कृष्ण-दर्शनका ) लोभरूपी हथियार लेकर दौड़ते हैं, ( इनके ) शरीरपर पलक गिरानारूप कवच ( भी ) नहीं है और ये भौंहरूपी ( सुदृढ़ ) धनुष-पर चढ़े हाव-भाव एवं कटाक्षरूपी बाणोंसे लड़ते हैं । ये महान् वीर हैं, उधर ( श्यामसुन्दरके ) प्रत्येक अङ्गका सौन्दर्यरूप बलवान् सेना है, उसीके ऊपर ये दौड़ते हैं । सुनो, ( फिर भी ) मेरे ये नेत्र एकटक रहते हैं, ( मनमोहनको देखनेमें ) पलकें ( भी ) नहीं गिराते ।

राग जैतश्री

[ २२७ ]

सेवा इन की बृथा करी ।
ऐसे भए दुखदाइक हम कौं, याहीं सोच मरी ॥ १ ॥
घूँघट ओट महल मैं राखति, पलक कपाट दिएँ ।
ये जोइ कहैं करैं हम सोई, नाहिन भेद हिएँ ॥ २ ॥
अब पाई इन्ह की लँगराई, रहते पेट समाने ।
सुनौ सूर लोचन बटपारी, गुन जोइ सोइ प्रगटाने ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! मैंने ) इन ( नेत्रों ) की सेवा व्यर्थ की; ये हमारे लिये ऐसे दुःख देनेवाले हो गये कि ( मैं ) इसी चिन्तामें मरी जाती हूँ । ( मैं ) इन्हें घूँघटकी आड़रूपी महलमें पलकोंका किवाड़ बंद करके रखती हूँ और जो-जो ये कहते हैं, वही हम करती हैं । हमारे हृदयमें ( इनसे कोई ) भेद नहीं है । ( किंतु ) अब इनका नटखटपन हमने पा ( जान ) लिया, जिसे ये पेटमें ( मनमें ) छिपाये रहते थे । सुनो, ये नेत्र ( तो ) ठग हैं; इनके जो भी गुण थे, वे ही ( अब ) प्रकट हो गये हैं ।

राग गौरी

[ २२८ ]

नैना हैं री ये बटपारी।
कपट नेह करि करि इन हम सौं गुरुजन तैं करी न्यारी ॥ १ ॥
स्याम दरस लाडू कर दीन्हौं, प्रेम ठगोरी लाइ।
मुख परसाइ हँसन माधुरता, डोलत संग लगाइ ॥ २ ॥
मन इन्ह सौं मिलि भेद बतायौ, विरह फाँस गर डारी।
कुल लज्जा संपदा हमारी लूटि लई इन्ह सारी ॥ ३ ॥
मोह विपिन मैं परी कराहति, नेह जीव नहिं जात।
सूरदास गुन सुमरि सुमरि वे अंतरगत पछतात ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है— सखी! ये ( मेरे ) नेत्र ( बड़े ) ठग हैं, इन्होंने बार-बार हमसे छलपूर्ण स्नेह करके ( हमें ) गुरुजनोंसे पृथक् कर दिया। श्यामसुन्दरके दर्शनका लड्डू हाथमें देकर ( इन्होंने हमपर ) प्रेमका जादू चला दिया और ( उनके ) हास्यकी मधुरताका ( हमारे ) मुखसे स्पर्श कराकर ( अब ) साथ लगाये ( लिये ) घूमते हैं! मनने इनसे मिलकर ( हमारा सारा ) रहस्य बतला दिया, ( तब ) वियोगरूपी फंदा ( इन्होंने ) गलेमें डाल दिया और कुल-लज्जा-रूप हमारी समस्त सम्पत्ति इन्होंने लूट ली। अब हम मोहरूपी वनमें पड़ी कराह रही हैं; प्रेमरूपी प्राण जाते ( प्रेम छूटता ) नहीं और हम इन ( नेत्रों ) के गुण बार-बार स्मरण करके भीतर-ही-भीतर पश्चात्ताप करती हैं।

राग बिहागरौ

[ २२९ ]

तिन कौं स्याम पत्याने सुनियत।
ह्वाऊँ जाइ अकाज करैंगे यह गुनि गुनि सिर धुनियत ॥ १ ॥
विवस भई तन की सुधि नाहीं, बिरह फाँस गए डारि।

लगन गाँठि बैठी नहिं छूटति, मगन मूरछा भारि ॥ २ ॥
प्रेम जीव निसरत नहिं कैसेहुँ, अंतर अंतर जानति ।
सूरदास प्रभु क्यौं सुधि पावैं, बार बार गुन गानति ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी! ) सुना जाता है कि ( मेरे ) उन ( नेत्रों ) का श्यामने विश्वास कर लिया है; ( किंतु ) ये वहाँ जाकर भी बुरा काम ( ही ) करेंगे, यही सोच-सोचकर सिर पीटती ( पछताती ) हूँ । हम ( तो ) विवश हो गयी हैं, अतः शरीरकी सुधि नहीं है; ( किंतु ) वे ( हमारे गलेमें ) वियोगकी फाँसी डाल गये हैं । ( अब ) लगनकी गाँठ बैठ गयी है ( दृढ़ प्रीति हो गयी है ), जो छूटती नहीं है; इससे भारी मूर्छामें डूबी हूँ । प्रेमरूपी जीव किसी प्रकार निकलता ( प्रेम छूटता ) नहीं । भीतर-ही-भीतर ( यह सब ) जानती ( अनुभव करती ) हूँ; ( किंतु ) स्वामी ( मेरा ) समाचार कैसे पायें कि मैं उनका गुण बार-बार गा रही हूँ ?

राग सारंग

[ २३० ]

रोम रोम ह्वै नैन गए री ।
ज्यौं जलधर परबत पै बरषत,
बूँद बूँद ह्वै निचटि द्रए री ॥ १ ॥
ज्यौं मधुकर रस कमल पान करि
मोतैं तजि उनमत्त भए री ।
ज्यौं कैंचुरी भुअंगम तजहीं,
फिरि न तकैं जु गए सु गए री ॥ २ ॥
ऐसी दसा भई री उन्ह की,
स्याम रूप मैं मगन भए री ।
सूरदास प्रभु अगनित सोभा
ना जानौं किहिं अंग छए री ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! मेरा तो ) प्रत्येक रोम नेत्र हो गया है; जैसे मेघ पर्वतपर वर्षा करते हों, वैसे ही बूँद-बूँद द्रवित होकर वे समाप्त हो गये हैं। ( अथवा ) जैसे भ्रमर कमलके रसको पीकर उन्मत्त हो जाते हैं, ऐसे ही मुझे छोड़कर वे उन्मत्त हो गये हैं। ( अथवा ) जैसे सर्प केंचुल छोड़ देता है और लौटकर उधर नहीं देखता, वैसे ही वे जो गये सो गये ( फिर नहीं लौटे )। उन ( नेत्रों ) की ऐसी दशा हो गयी है कि ( वे ) श्यामसुन्दरके रूपमें डूब गये। हमारे स्वामीकी शोभा ( तो ) अपार है; पता नहीं, ( वे ) उनके किस अङ्गमें निवास कर रहे हैं।

[ २३१ ]

नैन निरखि, अजहूँ न फिरे री।
हरि मुख कमल कोस रस लोभी,
मनौ मधुप मधु माँति गिरे री ॥ १ ॥
पलकन सूल सलाक सही है,
निसि-बासर दोउ रहत अरे री।
मानौ बिबर गए चलि कारे,
तजि कैंचुरी भए निनरे री ॥ २ ॥
ज्यौं सरिता परवत की खोरी
प्रेम पुलक स्रम सेद झरे री।
बूँद बूँद ह्वै मिले सूर प्रभु,
ना जानौं किहिं घाट तरे री ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्र तो देखकर अबतक नहीं लौटे। वे श्यामसुन्दरके मुखरूपी कमल-कोषके रसके ( ऐसे ) लोभी हो गये, मानो भौंरे ( कमल- ) मधुसे मतवाले ( मूर्छित ) होकर गिर पड़े हों। पलकोंने ( अञ्जन लगानेकी ) शलाकाकी पीड़ा सही है,

( फिर भी वे ) दोनों रात-दिन ( इस भाँति ) अड़े ही रहते हैं, मानो काले ( सर्प ) केंचुल छोड़कर ( और उससे ) पृथक् हो बिलमें चले गये हों। ( अथवा ) जैसे पर्वत-मार्गसे नदी प्रेमसे पुलकित होकर पसीनेकी बूँदें टपकाती हो, उसी प्रकार बूँद-बूँद होकर ( ये नेत्र ) स्वामीसे ( जा ) मिले; नहीं जानती कि ( उस शोभा-सिन्धुके ) किस घाट ये तरे ( डूबे )।

[ २३२ ]

**नैन गए सु फिरे नहिं फेरि।**
**जद्यपि घेरि घेरि मैं राखत, रहे नाहिं पचि हारी टेरि ॥ १ ॥**
**कहा कहौं सपनेहुँ नहिं आवत, वस्य भए हरिही के जाइ।**
**मोतैं कहा चूक उन्ह जानी, जातैं निपट गए बिसराइ ॥ २ ॥**
**छिनहू की पहचान मानिऐ, उन्ह कौं हम प्रतिपाले प्रेम।**
**जौ तजि गए हमारैं वैसे, उन्ह त्याग्यौ, हम हैं उहिं नेम ॥ ३ ॥**
**मात पिता संगै प्रतिपालै, संगै संग रहे निसि जाम।**
**सुनौ सूर ए बाल सँघाती, प्रेम बिसारि मिले ढरि स्याम ॥ ४ ॥**

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी, मेरे ) नेत्र जबसे गये, तबसे लौटानेपर भी नहीं लौटे। यद्यपि मैं ( उन्हें ) घेर-घेरकर रोकती हुई पुकारनेका श्रम करके हार गयी, ( किंतु वे ) रुके नहीं। क्या कहूँ, ( अब वे ) स्वप्नमें भी ( यहाँ ) नहीं आते और जाकर श्यामसुन्दरके ही वशमें हो गये हैं। उन्होंने मुझसे क्या भूल हुई समझी, जिससे वे मुझे सर्वथा भूलकर चले गये ? ( लोग कहते हैं ) एक क्षणके परिचयको भी आदर देना चाहिये, उनको ( तो ) हमने प्रेमपूर्वक पालन किया था। यदि छोड़कर चले भी गये, तो भी हमारे लिये तो ( वे ) वैसे ही ( अपने ) हैं; उन्होंने ( हमें ) छोड़ा है, पर हम तो उसी ( उनके पालनके ) नियम-पर स्थिर हैं। माता-पिताने ( हमारे ) साथ ही ( नेत्रोंका ) पालन-पोषण किया था और रात-दिन हम साथ-ही-साथ रहे। सुनो ! ये हमारे बचपनके साथी हैं;

किंतु ( आज ) हमारे प्रेमको भूलकर ( अब ) श्यामसुन्दरके अनुकूल बन ( उनसे ) मिल गये हैं।

राग नट

[ २३३ ]

नैनन्न देखिवे की ठौरि।
नंद गोप कुमार सुंदर किएँ चंदन खौरि ॥ १ ॥
सीस पीड़ सिखंड राजत, नख सिखै छवि औरि।
सुभग गावन, मृदु वजावन वेनु ललित सु गौरि ॥ २ ॥
कुटिल कच मृगमद तिलक छवि वचन मंत्र ठगोरि।
सूर प्रभु नट रूप नागर निरखि लोचन बौरि ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी! मेरे ) नेत्रोंके देखनेके ( एकमात्र ) स्थान ( तो ) श्रीनन्दरायके सुन्दर कुमार हैं, ( जो ) चन्दनकी खौर ( पूरे ललाटपर ) बनाये हैं। ( उनके ) मस्तकपर मयूर-पिच्छकी कलँगी शोभा दे रही है, नखसे चोटीतक शोभा कुछ और ही ( निराली ) है और ( उनका ) मन्दस्वरमें वंशी बजाते हुए सुन्दर गौरी राग गाना ( तो अति ) मनोहर है। घुँघराले बाल, कस्तूरीके तिलककी छटा और वाणी ( सब ) वशीकरण मन्त्र ( ही ) हैं। ( ऐसे ) नटवर-वेष परम चतुर स्वामीको देखकर नेत्र पागल हो गये हैं।

राग मलार

[ २३४ ]

तब तैं नैन रहे इकटकहीं।
जब तैं दृष्टि परे नँद नंदन, नैक न अंत मटकहीं ॥ १ ॥
मुरली धरैं अरुन अधरन पै, कुंडल झलक कपोल।
निरखत इकटक पलक भुलाने, मनौ बिकाने मोल ॥ २ ॥
हम कौं वे काहें न विसारैं, अपनी सुधि उन्ह नाहिं।
सूर स्याम छबि सिंधु समाने, बृथा तरुनि पछिताहिं ॥ ३ ॥

(एक गोपी कह रही है—सखी!) तभीसे (मेरे) नेत्र एकटक (अपलक) रह गये हैं, जबसे नन्द-नन्दन उन्हें दिखायी पड़े। तनिक भी कहीं (वे) हटते नहीं। लाल-लाल ओठोंपर वंशी रखे और कपोलोंपर कुण्डल-की आभा धारण किये मोहन (की उस छटा) को देखते ही नेत्र (इस भाँति) एकटक हो पलक गिराना भूल गये, मानो मोल बिक गये हों। वे भला, हमको क्यों न भूल जायँ, (जब कि) उन्हें अपनी (ही) सुधि नहीं है। सूरदासजी कहते हैं—इनके नेत्र (तो) श्यामसुन्दरकी शोभाके सिन्धुमें लीन हो गये हैं, (ये व्रज-) तरुणियाँ व्यर्थ पश्चात्ताप करती हैं।

[ २३५ ]

**नैना नैनन माँझ समाने।**
**टारें टरत न इक पल, मधुकर ज्यौं रस मैं अरुझाने ॥ १ ॥**
**मन गति पंगु भई, सुधि बिसरी, प्रेम पराग लुभाने।**
**मिले परसपर खंजन मानौ झगरत निरखि लजाने ॥ २ ॥**
**मन बच क्रम पल ओट न भावत, छिन छिन जुग परमाने।**
**सूर स्याम के बस्य भए ये, जिहि बीतै सो जानै ॥ ३ ॥**

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—(सखी! मेरे) नेत्र (मोहनके) नेत्रोंमें ही समा (लीन हो) गये; (अब वे) एक पलके लिये भी हटानेसे (उसी प्रकार) नहीं हटते, जैसे (कमलके) रसमें उलझे हुए भौंरे। प्रेमके परागमें वे लुब्ध हो गये हैं, जिससे (उनके) मनकी गति पङ्गु (शिथिल) होकर उन्हें (अपनी) सुधि (इस प्रकार) भूल गयी, मानो दो खञ्जन मिलकर झगड़ते देखकर लज्जित हो गये हों। उन्हें मन, वाणी तथा कर्मसे भी पलककी ओटमें होना अच्छा नहीं लगता (और पलक गिरनेपर उनको) प्रत्येक क्षण युगके समान जान पड़ता है।

ये ( नेत्र तो ) श्यामसुन्दरके वश हो गये; जिसपर बीततो ( जिसपर कष्ट आता ) है, वही ( उसकी पीड़ा ) जानता है।

राग गौरी

[ २३६ ]

मेरे माई! लोभी नैन भए।
कहा करौं ये कह्यौ न मानत, बरजतहीं जु गए ॥ १ ॥
रहत न घूँघट ओट भवन मैं, पलक कपाट दए।
लए फँदाइ बिहंगम मानौ, मदन ब्याध बिधए ॥ २ ॥
नहिं परमिति मुख इंदु सुधा निधि सोभा नितै नए।
सूर स्याम तन पीत बसन छबि अंग अंग जितए ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी! मेरे नेत्र लोभी हो गये हैं। क्या करूँ ? ये कहना मानते नहीं, रोकनेपर भी चले गये। घूँघटकी आड़रूपी भवनमें पलकोंके किवाड़ दे दिये; फिर भी ये रहे नहीं, इस प्रकार कूद गये, मानो मदनरूपी व्याधके द्वारा ( बाणसे ) बींधे गये पक्षी हों। ( श्यामसुन्दरके ) चन्द्रमुखरूपी अमृत निधिकी शोभाकी कोई सीमा ( ही ) नहीं, ( वह ) नित्य नवीन रहती है। श्यामसुन्दरके शरीरपर पीताम्बरकी शोभा और ( उनके ) अङ्ग-प्रत्यङ्गोंने ( इन नेत्रोंको ) जीत लिया है।

राग बिहागरौ

[ २३७ ]

नैना लोभै लोभ भरे।
जैसें चोर भरें घर पैठत बैठत उठत खरे ॥ १ ॥
अंग अंग सोभा अपार निधि लेत न सोच परे।
जोइ देखै सोइ सोइ निरमोलै, कर लै तहीं धरे ॥ २ ॥
त्यौं लुब्धे ये टरत न टारे, लोक लाज न डरे।
सूर कछू उन्ह हाथ न आयौ, लोभ जाग पकरे ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्र लोभ-ही-लोभसे पूर्ण हैं। जैसे चोर सम्पत्तिपूर्ण घरमें घुस जाता है तो ( वहाँ अपार सम्पत्तिको देखकर कभी बैठता है, कभी उठता है, कभी ( यह सोचता हुआ ) खड़ा रहता है ( कि क्या लूँ, क्या छोड़ूँ ? ), उसी प्रकार ( श्यामसुन्दरके ) अङ्ग-प्रत्यङ्गमें सौन्दर्यकी अपार निधिको देखकर नेत्र उसे ले नहीं पाते, चिन्तामें पड़ गये हैं। उपर्युक्त चोर जिस-जिस वस्तुको देखता है, वही-वही ( उसे ) अमूल्य दीखती है; अतः हाथमें ले ( फिर उसे ) वहीं रख देता है। उसी प्रकार ( उस चोरके समान ) ये लुब्ध हो गये हैं और हटानेसे हटते नहीं, लोकलज्जासे भी नहीं डरते। इतनेपर भी उनके हाथ कुछ नहीं लगा, लोभरूपी जाग हो जानेसे वे पकड़े गये।

राग सोरठ

[ २३८ ]

नैना ओछे चोर अरी री।
स्याम रूप निधि नोखैं पाई, देखत गए भरी री ॥ १ ॥
अंग अंग छवि चित्त चलायौ, सो कछु रहति परी री।
कहा लेहिं, का तजैं, विवस भए, तैसिय करनि करी री ॥ २ ॥
पुनि पुनि जाइ एक इक लेते, आतुर धरनि धरी री।
भोरे भए भोर सौ ह्वै गयौ, धरें जगार परी री ॥ ३ ॥
जो कोउ काज करैं विन बूझे, पेलनि लहत हरी री।
सूर स्याम बस परे जाइ कैं, ज्यौं मोहि तजी खरी री ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—अरी सखी ! ( मेरे ) नेत्र ओछे ( अल्प ) चोर हैं, श्यामसुन्दरके सौन्दर्यकी अद्भुत सम्पत्ति पाकर उसके दर्शनसे ( ही ) तृप्त ( पूर्णकाम ) हो गये। उनके अङ्ग-अङ्गकी शोभा ( को बटोरनेके लिये ) इच्छा की; पर वह ( श्यामसुन्दरकी अपार शोभा ) क्या ( इनके लिये ) पड़ी रह सकती है ? जैसे चोर ( अपार सम्पदामेंसे ) क्या लें और क्या छोड़ें ? ( इस चिन्तामें ) विवश हो

जाता है, वैसी ही करनी इन्होंने की। ( अरे ) वे बार-बार जाकर एक-एक अङ्गको पकड़ते ( निरखते ) हैं और फिर अधीर होकर उससे चिपट जाते हैं, ऐसे भोले ( विचारहीन ) हो गये। ( इतनेमें ) सबेरा-जैसा हो गया और लोग जग गये तथा ये पकड़े गये। जो कोई बिना समझे-बूझे काम करता है, क्या हठ करनेसे वह श्रीहरिको पा ( वशमें कर ) सकता है ? ( फल यह हुआ कि ) जैसे मुझे इन्होंने सर्वथा त्याग दिया था, वैसे ही ये ( नेत्र भी ) जाकर श्यामसुन्दरके वशमें पड़ गये।

राग मलार

[ २३९ ]

नैना मारेहू पै मारत।
राखी छबि दुराइ हिरदै मैं, तिन्ह कौं हिय भरि ढारत ॥ १ ॥
आपु न गए, भली कीन्ही, अब उन्है इहाँ तैं टारत।
बरबसहीं लै जान कहत हैं, पैज आपनी सारत ॥ २ ॥
ऐसे खोज परे पहलैं हैं, आवत जात न हारत।
इन कौ गुन कैसैं कहि आवै, सूर पयारहि झारत ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ये ) नेत्र ( मुझ ) घायलपर भी मार ( प्रहार ) करते हैं। जो छबि मैंने हृदयमें छिपा रखी थी, उसे ( ये ) जी भरके ढुलका रहे हैं। मोहनके पास स्वयं नहीं गये, यह अच्छा किया; पर अब उन्हें यहाँसे हटा रहे हैं। बलपूर्वक उन्हें ले जानेको कहते हैं, अपना हठ ही चलाते हैं ! पहलेसे ( ही मोहनके ) ऐसे पीछे पड़े कि आते-जाते थकते ही नहीं, इनका गुण कैसे कहा जा सकता है। ये तो पुआल ( धान आदिके सूखे डंठल ) झाड़ते ( जहाँ कुछ नहीं, वहाँ भी खोज करके कुछ पाना चाहते ) हैं।

[ २४० ]

नैना खोज परे हैं ऐसे।
नैंक रही हरि मूरति हिरदैं, डाह मरत हैं जैसे ॥ १ ॥

मन तौ गयौ इंद्रियन लैकैं, बुधि मति ग्यान समेत।
जिन्ह की आस सदाँ हम राखैं, तिन्ह दुख दीन्हौ जेत ॥ २ ॥
आपुन गए, कौन सो चालै, करत ढिठाई और।
नैक रही छबि दुति हिरदै मैं, ताहि लगावत ठौर ॥ ३ ॥
गए रहे आए इहिं कारज, भरि ढारत हैं ताहि।
सूरदास नैनन की महिमा, को है कहिये जाहि ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! ये ) नेत्र ( मेरे ) ऐसे पीछे पड़े हैं कि श्यामसुन्दरकी तनिक-सी मूर्ति ( जो ) हृदयमें रह गयी है, उसीको देख-देखकर जैसे ( यह रह कैसे गयी ? इस ) डाहमें मरे जाते हों। मन ( तो ) इन्द्रियोंको लेकर बुद्धि, सोचने तथा समझनेकी शक्ति-सहित चला (ही) गया था; ( अब ) जिन ( नेत्रों ) की हम सदा आशा लगाये रहती थीं, उन्होंने ( भी ) जितना बना, उतना दुःख (ही) दिया। स्वयं चले गये—इसकी चर्चा कौन करता है; ( किंतु ) और भी धृष्टता (यह) करते हैं कि तनिक-सी ( श्यामसुन्दरकी ) शोभाकी चमक ( जो ) हृदयमें रह गयी है, उसे भी ठिकाने लगा रहे ( नष्ट कर रहे ) हैं। ये तो चले गये थे, ( अब ) आये ही इसी कार्यसे हैं और ( जी ) भरकर ( आँसूके रूपमें ) उसे गिरा रहे हैं। ऐसा कौन है, जिससे इन नेत्रोंकी महिमा ( दोष ) कही जाय।

राग सारंग

[ २४१ ]

नैना, इहिं ढंग परे, कहा करौं माई !
आए फिरि कौन काज, कवै मैं बुलाई ॥ १ ॥
अब लौं इहिं आस रही, मिलिहैं ये आई।
भाँवरि सी पारि फिरे, नारि ज्यौं पराई ॥ २ ॥
आवत हैं लोभ भरे कपट नेह धाई।
तनक रूप चोरि हिऐं धर्‌यौ हौं दुराई ॥ ३ ॥
आए हैं ताहि लैन, ऐसे दुखदाई।

मारे कौं मारत हैं बड़े लोग भाई ॥ ४ ॥
अतिहीं ये करत फिरत दिनै दिन ढिठाई ।
सूरदास प्रभु आगें चलौ कहैं जाई ॥ ५ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्र इस ढंगके हो ( ही ) गये हैं, मैं करूँ तो क्या । ( यदि जाना ही था तो ) फिर किसलिये आये थे और मैंने ( इन्हें ) बुलाया ही कब था । अबतक ( मैं ) इस आशामें थी कि ये आकर मिलेंगे; ( किंतु ) ये तो कुछ फेरे-से डालकर लौट गये, जैसे मैं ( कोई ) परायी स्त्री हूँ । ( ये ) लोभसे भरे छलपूर्ण स्नेह दिखाते दौड़े आते हैं; तनिक-सा ( मोहनका ) रूप चुराकर मैंने हृदयमें छिपाकर रखा था, उसीको ये लेने आये हैं—ऐसे ये दुःख देनेवाले हैं; भाई ! ( यह सच है कि ) बड़े लोग मारे हुए ( दुर्बल ) को ही मारते हैं । ये दिनोंदिन अधिकाधिक धृष्टता करते जाते हैं; अतः चलो ! स्वामीके सामने जाकर ( इनकी सब बातें ) कहें ।

राग गौरी

[ २४२ ]

यह तौ नैननहीं जु कियौ ।
सरवस जो कछु रह्यौ हमारैं, सो लै हरिहि दियौ ॥ १ ॥
बुधि बिबेक कुल कानि गँवाई, इंद्रिनि कियौ बियौ ।
आपुन जाइ बहुरि आए इहँ, चाहत रूप लियौ ॥ २ ॥
अब लागे जिय घात करन कौं, ऐसौ निठुर हियौ ।
सुनौ सूर प्रतिपाले कौ गुन बैरइ मानि लियौ ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! ) यह काम तो ( मेरे ) नेत्रोंने ही किया कि हमारा जो कुछ सर्वस्व था, वह ले जाकर श्यामसुन्दरको दे दिया । बुद्धि, विचार, कुल-मर्यादा—सब ( कुछ ) खो दिया और इन्द्रियोंको पराया बना दिया तथा स्वयं जाकर यहाँ लौट आये

हैं एवं ( हृदयमें छिपे हुए मोहनके ) रूपको ( भी ) छीन लेना चाहते हैं। ( इनका ) हृदय ऐसा निष्ठुर है कि अब ( मेरे ) जीवन ( को भी ) नष्ट कर देना चाहते हैं। इन्हें पालने-पोसनेके फल सुनो, इन्होंने ( तो ) शत्रुताको ही उसका फल मान लिया है।

राग नट

[ २४३ ]

मेरे नैन चकोर भुलाने।
अह निसि रहत पलक सुधि विसरें, रूप सुधा न अघाने ॥ १ ॥
पल घटिका, घटि जाम, जाम दिन, दिनही जुग बर जाने।
स्वाद परे निमिषौ नहिं त्यागत, ताही माँझ समाने ॥ २ ॥
हरि मुख बिधु पीवत ये ब्याकुल, नैकौ नाहिं थकाने।
सूरदास प्रभु निरखि ललित तन अंग अंग अरझाने ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! ) मेरे नेत्ररूपी चकोर ( अपने आपको ) भूल गये हैं, ( वे ) रात-दिन पलक गिरानेकी सुधि भूले ( निरखते ) रहते हैं। इतनेपर भी ये ( श्यामसुन्दरके ) सौन्दर्य-रूपी अमृतसे तृप्त नहीं हुए। एक घड़ीको क्षण, प्रहरको घड़ी, दिनको प्रहर और एक युगको एक दिनके समान ( मोहनको देखते समय ) समझते हैं। ( उसके ) स्वादमें ऐसे लगे हैं कि एक पलको भी उसे छोड़ते नहीं और उसीमें लीन हो रहे हैं। श्यामसुन्दरके मुखचन्द्रका आतुरतापूर्वक पान करते हुए ये तनिक भी थकते नहीं। स्वामीका मनोहर शरीर देखकर ( ये ) उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें उलझ गये हैं।

राग सारंग

[ २४४ ]

हरि मुख विधु, मेरी अँखियाँ चकोरी।
राखें रहति ओट पट जतननि,

तऊ न मानति कितिक निहोरी ॥ १ ॥
बरबसहीं इन्ह गही मूढ़ता,
प्रीति जाइ चंचल सौं जोरी।
बिबस भईं चाहति उड़ि लागन,
अटकति नैक अँजन की डोरी ॥ २ ॥
बरबसहीं इन्ह गही चपलता,
करत फिरत हमहू सौं चोरी।
सूरदास प्रभु मोहन नागर,
बरषि सुधा रस सिंधु झकोरी ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी! ) श्यामसुन्दर-का मुख चन्द्रमाके और मेरी आँखें ( दो ) चकोरोंके समान हैं। मैं इन्हें यत्नपूर्वक वस्त्र ( घूँघट ) की आड़में रखे रहती हूँ; कितना ( ही ) अनुनय ( मैंने ) किया, फिर भी ये मानते ही नहीं। बलपूर्वक इन्होंने मूर्खता पकड़ और उस चञ्चल ( मनमोहन ) से जाकर प्रीति जोड़ ली तथा ऐसी विवश ( व्याकुल ) हो गयी हैं कि उड़कर वहीं लग जाना चाहती हैं, ( किंतु ) तनिक अञ्जनरूपी डोरीमें बँधी होनेसे रुक रही हैं। इन्होंने हठपूर्वक चञ्चलता अपना ली है, हमसे भी चोरी करती फिरती हैं। हमारे स्वामी नटनागर ( मन-) मोहनने अमृतकी वर्षा करके रसके समुद्रमें ( इन्हें ) झकझोर ( डुबो ) दिया है।

राग बिहागरौ

[ २४५ ]

लोचन लालच तैं न टरे।
हरि सारँग सौं सारँग गीधे, दधि सुत काज जरे ॥ १ ॥
ज्यौं मधुकर बस परे केतकी, नहिं ह्वाँ तैं निकरे।
ज्यौं लोभी लोभै नहिं छाँड़त, ए अति उमँग भरे ॥ २ ॥
सनमुख रहत, सहत दुख दारुन, मृग ज्यौं नाहिं डरे।
वे धोखैं, यह जानत हैं सब, हित चित सदाँ करे ॥ ३ ॥

ज्यौं पतंग फिरि परत प्रेम बस, जीवत मुरछि मरे।
जैसें मीन अहार लोभ तैं, लीलत परै गरे॥ ४॥
ऐसेहिं ये लुबधे हरि छबि पै, जीवत रहत भिरे।
सूर सुभट ज्यौं रन नहिं छाँड़त, जब लौं धरनि गिरे॥ ५॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्र लोभसे हटते ही नहीं। श्यामसुन्दररूपी दीपकपर ( उसे ) चन्द्रमा समझकर मुग्ध हुए ये पतंगके समान जल रहे ( संतप्त हो रहे ) हैं। जैसे भौंरा केतकी पुष्पके वशमें पड़नेपर वहाँसे नहीं निकल पाता, ( अथवा ) जैसे लोभी व्यक्ति लालच नहीं छोड़ता, ( वैसे ही ) ये भी अत्यन्त उमंगमें भरे हैं। ( स्वरपर मुग्ध ) मृगके समान ( श्यामसुन्दरके ) सम्मुख ही रहते हैं। कठोर दुःख सहते हैं, डरते नहीं। वे ( मोहन तो ) धोखा देते हैं, यह सब जानते हुए भी ( ये ) सदा चित्तसे ( उनसे ) प्रेम ( ही ) करते हैं। जैसे जीवित रहते पतिंगा प्रेमवश बार-बार घूमकर ( दीपकपर ) गिरता और मूर्च्छित होकर अन्तमें मर जाता है, जैसे मछली चारेके लोभसे कँटिया निगल जाती है और वह उसके गलेमें फँस जाती है, ( अथवा ) जैसे उत्तम योधा ( तबतक ) युद्ध नहीं छोड़ता, जबतक ( वह ) पृथ्वीपर ( घायल होकर ) गिर नहीं जाता। उसी प्रकार ये ( नेत्र ) श्यामसुन्दरकी शोभापर लुब्ध हो जीते-जी वहीं भिड़े ( लगे ) रहते हैं।

राग नट

[ २४६ ]

नैनन कोउ समुझावै री।
अपनौ घर तुम्ह छाँड़ें डोलत, मेरे ह्याँ लै आवै री॥ १॥
यहौ बूझि देखै नीकें करि, जहाँ जात कछु पावै री।
देखत के सब साँचे लागत, ताहि छुवत नहिं आवै री॥ २॥
बृथाँ फिरत नट के गुर देखत, नाना रूप बनावै री।
सूर स्याम अँग अंग माधुरी, सत सत मदन लजावै री॥ ३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी ! कोई (मेरे) नेत्रोंको समझाये और 'तुम अपने घरको छोड़कर घूमते हो' यह कहकर (उन्हें) मेरे यहाँ ले आये। (उनसे) यह भी भली प्रकार पूछकर देखे कि (वे) जहाँ जाते हैं, वहाँ कुछ पाते भी हैं (या नहीं)। देखनेमें तो (मोहनके अङ्ग-रूप) सब सच्चे ही लगते हैं; किंतु उस (नटखट) को छूते नहीं बनता है। (वे उस) नटकी चतुराई देखते व्यर्थ घूमते हैं, वह (तो) नाना प्रकारके रूप बना लेता है। श्यामसुन्दरके अङ्ग-प्रत्यङ्गकी मधुरिमा सैकड़ों कामदेवोंको लज्जित करती है।

[ २४७ ]

हरि छवि अंग नट के ख्याल।
नैन देखत प्रगट सब कोउ, कनक मुक्ता लाल ॥ १ ॥
छिनक मैं मिटि जात सो पुनि, और करत विचार।
त्यौं हिएँ छबि और औरै, रचत चरित अपार ॥ २ ॥
लहै तब जब हाथ आवै, दृष्टि नहिं ठहरात।
बृथाँ भूले रहत लोचन, इन्ह कहै कोउ बात ॥ ३ ॥
रहत निसि दिन संग हरि के, हरष नाहिं समात।
सूर जब जब मिले हम कौं, महा बिह्वल गात ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—(सखी!) श्यामके शरीरकी शोभा तो नटके खेल (स्वाँग) के समान (बदलती रहती) है। नेत्रोंसे सब कोई सोने, मानिक तथा मोतियोंका शृङ्गार प्रत्यक्ष देखते हैं; (किंतु) क्षणभरमें ही वह (सब) मिट जाता है, (तब) नट कुछ दूसरा ही विचार (संकल्प) कर लेता है। उसी प्रकार हृदयमें (श्यामसुन्दरकी) शोभा (भी) और-की-और (क्षण-क्षण नवीन) होती अपार चरित्र किया करती है। (नेत्र) कुछ पायें तब, जब (वह शोभा) हाथ (पकड़में) आये; वहाँ तो दृष्टि टिकती ही नहीं। (ये) नेत्र व्यर्थ भूले रहते हैं, इनसे कोई (यह) बात कह दे। (ये) रात-दिन श्यामके

साथ ही रहते आनन्दमें समाते नहीं हैं; ( किंतु ) हमसे ( तो ) जब-जब ( ये ) मिले, तब-तब ( इनका ) शरीर अत्यन्त विह्वल ( व्याकुल देखा गया ) था ।

राग कान्हरौ

[ २४८ ]

भई गई ये नैन न जानत ।
फिरि फिरि जात लहत नहिं सोभा, हारेहुँ हार न मानत ॥ १ ॥
बूझौ जाइ रहत निसि बासर, नैक रूप पहचानत !
सुनौ सखी ! सतरात इते पै, हम पै भौंहैं तानत ॥ २ ॥
झूठैं कहत स्याम-अँग सुंदर, बातैं गढ़ि गढ़ि बानत ।
सुनौ सूर छबि अति अगाध गति, निगम नेति जिहि गानत ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! ) ये ( मेरे ) नेत्र ( कुछ ) हुई-गयी ( वस्तुस्थिति ) जानते ही नहीं । ये बार-बार ( श्यामसुन्दरके समीप ) जाते हैं, पर उनकी शोभा ले नहीं पाते; ( और इस प्रकार ) हार जानेपर भी पराजय नहीं मानते । इनसे जाकर पूछो तो कि 'तुम रात-दिन ( श्यामसुन्दरके साथ ) रहते हो, पर ( उनके ) ( स्व ) रूपको तनिक भी पहचानते हो ?' सखी ! सुनो, इतने ( पूछने ) पर ( ये ) क्रोध करते हैं और हमारे ऊपर ही भौंहें चढ़ाते हैं । लोग झूठ ही कहते हैं कि 'श्यामसुन्दरका शरीर सुन्दर है; वे गढ़-गढ़कर बातें बनाते हैं । सुनो, उस शोभाकी तो अत्यन्त अगम्य गति है । ( वहाँतक किसीकी पहुँच नहीं ); वेद भी ( उसे ) 'नेति-नेति' ( अन्त नहीं, अन्त नहीं ) कहकर ( उसका ) गान ( वर्णन ) करते हैं ।

राग बिहागरौ

[ २४९ ]

स्याम छबि लोचन भटकि परे ।
अतिहीं भए बिहाल सखी री, निसि दिन रहत खरे ॥ १ ॥

हम तैं गए लूटि लैबे कौं, ह्याँ सो परे अगोट।
अपनौ कियौ तुरत फल पायौ, राखति घूँघट ओट ॥ २ ॥
इकटक रहत पराए बस भए, दुख सुख समझि न जाइ।
सूर कहौ ऐसौ को त्रिभुवन, आवै सिंधु थहाइ ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्र ( तो ) श्यामसुन्दरकी शोभामें भटक गये हैं। अरी सखी ! वे अत्यन्त ही बेहाल ( व्याकुल ) हो रात-दिन खड़े ( देखनेमें तत्पर ) ही रहते हैं। हमारे पाससे तो वहाँ लूट ( का माल ) लेने गये थे, ( किंतु ) वहाँ ( वे ) बन्धनमें पड़ गये ( बाँध लिये गये ); अतः अपने कियेका फल ( उन्होंने ) तुरंत ( ही ) पा लिया। मैं तो उन्हें घूँघटकी आड़में ( सुरक्षित ) रखती थी, ( वहाँ वे ) दूसरेके वशमें होकर निर्निमेष बने रहते हैं; उन्हें ( वहाँ ) दुःख है या सुख—यह जाना नहीं जाता। तुम्हीं कहो कि तीनों लोकोंमें ऐसा कौन है, जो समुद्रकी थाह ले आये ( श्यामकी शोभा समुद्रके समान अथाह है, उसमें जाकर नेत्र वहीं डूब गये )।

राग नट

[ २५० ]

नैन भए वोहित के काग।
उड़ि उड़ि जात पार नहिं पावत, फिरि आवत तिहि लाग ॥ १ ॥
ऐसी दसा भई री इन्ह की, अब लागे पछितान।
मो बरजत बरजत उठि धाए, नहिं पायौ अनुमान ॥ २ ॥
वे समुद्र ये ओछे बासन, धरैं कहाँ सुख रासि।
सुनौ सूर ये चतुर कहावत, वह छवि महा प्रकासि ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्र जहाजके कौए ( जहाजपर बैठे कौएके समान ) हो गये। ये बार-बार उड़कर जाते हैं; ( किंतु श्यामकी शोभारूपी समुद्रका ) पार नहीं पाते और फिर इसीलिये

लौट आते हैं। सखी ! इनकी जब ऐसी दशा हो गयी, तब अब पश्चात्ताप करने लगे हैं। ( पहले तो ) मेरे रोकते-रोकते उठकर दौड़ पड़े ( तथा इस दशाका ) अनुमान ही नहीं कर पाये। वे ( मोहन तो ) समुद्र ( के समान ) हैं और ये ( नेत्र ) छोटे बर्तन ( के समान ); उस ( अतुल ) आनन्द-राशिको ( ये ) रखें कहाँ। सुनो, ये ( नेत्र ) चतुर कहे जाते हैं; ( किंतु ) वह ( श्यामसुन्दरकी ) शोभा ( तो ) महान् प्रकाशमयी है ( वहाँ ये टिक ही नहीं पाते )।

राग गौरी

[ २५१ ]

हारि जीति नैना नहिं जानत।  
धाए जात तहीं कौं फिरि फिरि,  
वे कितनौ अपमानत ॥ १ ॥  
परे रहत द्वारें सोभा के,  
वेई गुन गुनि गानत।  
हरषित रहत सबन कौं निदरैं,  
नैकहुँ लाज न आनत ॥ २ ॥  
अब ये रहत निघरई कीन्हें,  
जद्यपि रूप न जानत।  
दुख सुख बिरह सँजोग समिति जनु  
सूरदास यह गानत ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! ) मेरे नेत्र हार-जीत कुछ नहीं समझते; वे ( श्यामसुन्दर ) कितना भी अपमान करें, ( किंतु ) ये वहीं बार-बार दौड़े जाते हैं। उन श्यामसुन्दरकी शोभाके द्वारपर पड़े रहते हैं और उन्हींके गुण सोच-सोचकर गाते रहते हैं; दूसरे सबका निरादर ( उपेक्षा ) करके हर्षित रहते हैं, तनिक भी लज्जा नहीं मानते। यद्यपि ( वे

उनका ) स्वरूप नहीं जानते, ( और अब ) निर्लज्जता किये रहते हैं। ये उस ( शोभा ) का वर्णन इस प्रकार करते हैं, मानो वह दुःख-सुख और वियोग-संयोगकी समिति ( सम्मिलित रूप ) है।

राग रामकली

[ २५२ ]

नैना मानऽपमान सह्यौ।
अति अकुलाइ मिले री बरजत, जद्यपि कोटि कह्यौ॥ १॥
जाकी बानि परी सखि! जैसी, सो तिहिं टेक रह्यौ।
ज्यौं मरकट मूठी नहिं छाँड़त, नलिनी सुवा गह्यौ॥ २॥
जैसें नीर प्रवाह समुद्रै माँझ बह्यौ सु बह्यौ।
सूरदास इन्ह तैसिय कीन्ही, फिरि मो तन न चह्यौ॥ ३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी! मेरे ) नेत्रोंने मान-अपमान ( सब ) सहा। सखी! यद्यपि मैंने करोड़ों बार कहा, तो भी मेरे रोकनेपर भी अत्यन्त व्याकुल होकर ( ये श्यामसुन्दरसे ही ) जा मिले। सखी! जिसका जैसा स्वभाव पड़ा होता है, वह वैसा ही हठ पकड़े रहता है। जैसे बंदर ( अनाजसे भरे बर्तनके भीतर हाथ डालकर दाने मुट्ठीमें लेकर हाथ फँस जानेपर भी ) मुट्ठी नहीं छोड़ता और ( जैसे ) तोता नलिनी ( यन्त्रमें फँसे न होनेपर भी उस ) को पकड़े रहता है, अथवा जैसे जलका प्रवाह समुद्रकी ओर जो प्रवाहित हुआ सो प्रवाहित हो गया ( लौटता नहीं ), उसी प्रकार इन ( नेत्रों ) ने किया—( मोहनके पास जाकर ) फिर मेरी ओर ताकातक नहीं।

राग सोरठ

[ २५३ ]

यह नैनन की टेव परी।
जैसें लुबधति कमल कोस मैं, भ्रमर की भ्रमरी॥ १॥

ज्यौं चातक स्वातिहिं रट लावै, तैसिय धरनि धरी।
निमिष नाहिं मिलवत पल एकौ, आप दसा बिसरी ॥ २ ॥
जैसें नारि भजै पर पुरुषै, ताकें रंग ढरी।
लोक वेद आरज पथ की सुधि, मारगहू न डरी ॥ ३ ॥
ज्यौं कँचुरी त्यागि उहिं मारग अहि घरनी न फिरी।
सूरदास तैसेहिं ये लोचन का धौं परनि परी ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्रोंकी यह टेव ( बान ) पड़ गयी है। जैसे कमलकोषमें भ्रमरकी भ्रमरी लुब्ध हो जाती है, ( अथवा ) जैसे चातक स्वाती-जलके लिये रट लगाये रहता है, ( बस ) वैसी ही हठ इन्होंने भी पकड़ ली है। एक क्षणके लिये भी पलकोंको नहीं गिराते, अपनी दशा ही ( इन्हें ) भूल गयी है। जैसे ( कुलटा ) स्त्री पराये पुरुषका सेवन करती है और उसीके प्रेमके अनुकूल रहती है, लोक ( की लज्जा ), वेद ( की मर्यादा ) और आर्य-पथ ( श्रेष्ठ पुरुषोंके मार्ग ) का स्मरण भूलकर कुमार्गसे भी डरती नहीं। जैसे सर्पिणी कैंचुल छोड़कर फिर उस मार्गसे नहीं लौटती, उसी प्रकार इन नेत्रोंको पता नहीं कौन-सा स्वभाव पड़ गया है।

राग बिहागरौ

[ २५४ ]

नैन गए न फिरे री माई।
ज्यौं मरजादा जाइ सुपत की, बहुरयौ फेरि न आई ॥ १ ॥
ज्यौं बालापन बहुरि न आवै, फिरै नाहिं तरुनाई।
ज्यौं जल ढरत फिरत नहिं पाछें, आगें आगें जाई ॥ २ ॥
ज्यौं कुलवधू बाहिरी परि कैं कुल मैं फिरि न समाई।
वैसी दसा भई इनहू की सूर स्याम सरनाई ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी ! ( मेरे ) नेत्र गये, सो फिर लौटे ( ही ) नहीं। जैसे प्रतिष्ठित ( भले ) व्यक्तिकी मर्यादा नष्ट

हो जाय तो पुनः लौटकर नहीं आती, जैसे बचपन फिर नहीं आता और युवावस्था भी ( बीत जानेपर ) दुबारा नहीं आती, जैसे ढुलकता हुआ पानी पीछे नहीं लौटता, आगे-आगे ही जाता है, जैसे कुलवधू अपने कुलसे ( आचारभ्रष्ट होकर ) बहिष्कृत हो जानेपर पुनः अपने कुलमें सम्मिलित नहीं हो पाती, वैसी ही दशा श्यामसुन्दरकी शरणमें जानेपर इन ( नेत्रों ) की भी हो गयी है।

राग सूही

[ २५५ ]

जब तैं नैन गए मोहि त्यागि।
इंद्रीं गईं, गयौ तन तैं मन,
उनहि बिना अवसेरी लागि ॥ १ ॥
वे निरदई, मोह मेरे जिय,
कहा करौं मैं भई बिहाल।
गुरुजन तजे, इहाँ इन्ह त्यागी,
मेरे बाँटें पर्‌यौ जँजाल ॥ २ ॥
इत की भई न उत की सजनी,
भ्रमत भ्रमत मैं भई अनाथ।
सूर स्याम कौं मिले जाइ सब,
दरसन करि वे भए सनाथ ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! ) जबसे ( मेरे )नेत्र मुझे छोड़कर गये, ( तभीसे इनके साथ ) इन्द्रियाँ ( भी ) चली गयीं, शरीरसे मन चला गया; ( अब ) उनके बिना ( मुझे ) चिन्ता लगी है। वे ( नेत्र ) तो निर्दय हैं, ( किंतु ) मेरे चित्तमें ( उनके प्रति ) मोह है; क्या करूँ, मैं व्याकुल हो गयी हूँ। ( वहाँ तो ) गुरुजनोंने ( मुझे ) छोड़ दिया और यहाँ इनके द्वारा ( भी ) मैं त्याग दी गयी; मेरे हिस्सेमें तो केवल जंजाल ही आया। सखी ! मैं न इधरकी रही न उधरकी, भटकते-भटकते अनाथ हो गयी; ( किंतु ) वे सब ( नेत्र, इन्द्रियाँ, मन )

जाकर श्यामसुन्दरसे मिल गये और उनका दर्शन करके सनाथ हो गये ( यही सुन्दर हुआ )।

राग बिहागरौ

[ २५६ ]

नैना मेरे मिलि चले, इंद्री औ मन संग।
मोकौं व्याकुल छाँड़ि कैं, आपुन करैं जु रंग ॥ १ ॥
अपनौ नहिं कबहूँ करैं, अधमन के ये काम।
जनम गँवायौ साथहीं, अब हम भईं निकाम ॥ २ ॥
धिक जन ऐसे जगत मैं, यह कहि कहि पछिताति।
धरम हृदै जिन कैं नहीं, धिक तिन्ह की है जाति ॥ ३ ॥
मनसा बाचा करमना गए बिसारि बिसारि।
सूर सुमरि गुन नैन के बिलपति हैं ब्रजनारि ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! ) मेरे नेत्र ( मेरी ) इन्द्रियों और मनके साथ मिलकर चले गये; ( अब वे ) मुझे व्याकुल छोड़कर ( वहाँ ) स्वयं मौज उड़ाते हैं। ( ये ) कभी अपनेपनका ( कार्य ) नहीं करते, यह ( तो ) अधम लोगोंका काम है। हमारे साथ ही इन्होंने जीवन बिताया, पर अब हम बेकार हो गयीं। 'संसारमें ऐसे लोगोंको धिक्कार है।' बार-बार यह कहकर पश्चात्ताप करती हूँ। ( यही नहीं ) जिनके हृदयमें धर्म ( का विचार ) नहीं है, उनका जन्म धिक्कारके योग्य है। ( ये नेत्र तो हमें ) मन, वाणी तथा कर्मसे भूल-भूलकर चले गये। इस प्रकार नेत्रोंके गुण ( कर्म ) का स्मरण करके ( अनेक ) व्रजकी गोपियाँ विलाप कर रही हैं।

राग बिलावल

[ २५७ ]

नैनन सौं झगरौ करिहौं री।
कहा भयौ जौ स्याम संग हैं,

बाँह पकरि सनमुख लरिहौं री ॥ १ ॥
जनमहि तैं प्रतिपालि बड़े किए,
दिन दिन कौ लेखौ करिहौं री ।
रूप लूट कीन्ही तुम्ह काहैं,
अपने बाँटे कौ धरिहौं री ॥ २ ॥
एक मात पितु भवन एक रहे,
मैं काहैं उन्ह कौं डरिहौं री ।
सूर अंस जौं नाहिं देहिंगे,
उन के रंग मैंहूँ ढरिहौं री ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—(सखी!) मैं (अपने) नेत्रोंसे झगड़ा करूँगी; क्या हुआ जो वे श्यामसुन्दरके साथ हैं; मैं उनकी भुजा पकड़कर उनसे आमने-सामने लड़ूँगी। जन्मसे ही पालन-पोषण करके मैंने उन्हें बड़ा किया, अब प्रत्येक दिन (के उपकार) का हिसाब करूँगी। (कहूँगी) 'तुमने रूपकी लूट क्यों की?' और अपने हिस्सेका (रूप) (मैं) रख लूँगी। (मेरे और नेत्रोंके) एक ही माता-पिता हैं और (हम) एक ही घरमें साथ रहे हैं; (ऐसी दशामें) मैं उनसे भला क्यों डरूँगी। यदि वे मेरा भाग नहीं देंगे तो मैं भी उन्हींके रंगमें ढल जाऊँगी (उन्हींके समान निष्ठुर बन जाऊँगी)।

राग आसावरी

[ २५८ ]

मोहू तैं वे ढीठ कहावत ।
जबही लौं मैं मौन धरैं हौं,
तब लौं वे कामना पुरावत ॥ १ ॥
मैं उन कौं पहलैं करि राख्यौ,
वे मोकौं काहैं बिसरावत ।
आप काज कौं उन्हे चले मिलि,

बाँटौ देत रोइ अब आवत ॥ २ ॥
बहुतै कान करी मैं सजनी !
अब देखौ, मरजाद घटावत ।
जो जैसौ, तासौं त्यौं चलिये,
हरि आगें गढ़ि बात बनावत ॥ ३ ॥
मिले रहैं, नहिं उन कौं चाहति,
मेरौ लेखौ क्यौं न बुझावत ।
सूर स्याम सँग गरब बढ़ायौ,
उनही के बल बैर बढ़ावत ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! ) मुझसे भी ( मेरे ) वे ( नेत्र ) ढीठ कहे जाते हैं ( मेरे साथ भी ढिठाई करते हैं ); जबतक मैं मौन धारण किये ( चुप ) हूँ तभीतक वे अपनी इच्छा पूरी कर रहे हैं। मैंने उनको आगे कर रखा है, फिर वे मुझे क्यों भूलते हैं ? अपने काम ( स्वार्थ ) के लिये तो ( वे ) मुझसे मिलकर चले और अब मेरा भाग देते उन्हें रोना आता है । सखी ! मैंने उनका बहुत संकोच किया; पर अब देखो ! वे ही ( स्वयं अपनी ) मर्यादा कम कर रहे हैं। जो जैसा हो, उसके साथ वैसा ( ही ) व्यवहार करना चाहिये। ये ( नेत्र ) श्यामसुन्दरके आगे गढ़-गढ़कर बातें बनाते हैं । वे उन ( श्यामसुन्दर ) से ही मिले रहें, मैं उनको नहीं चाहती; ( किंतु ) मेरा हिसाब क्यों नहीं समझा देते ? ( बात यह है कि ) श्यामसुन्दरके सङ्गने इनका गर्व बढ़ा दिया है और उन्हींके बलपर ये ( हमसे ) शत्रुता बढ़ाते हैं।

राग धनाश्री

[ २५९ ]

नैना रहैं न मेरे हटकें ।
कछु पढ़ि दियौ सखी ! उहिं ढोटा, घूँघरवारी लटकें ॥ १ ॥
कज्जल कुलफ मेलि मंदिर मैं, पल सँदूक पट अटकें ।

निगम नेति कुल लाज टुटे सब मत्त गयंद के झटकें ॥ २ ॥
मोहनलाल करी वस अपनें हौं निमेष के मटकें ।
सूरदास पुर नारि फिरावत संग लगाए नट कें ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है--( सखी ! ) मेरे नेत्र मेरे रोकनेसे रुके नहीं । सखी ! ( कुछ ऐसा जान पड़ता है कि ) उस घुँघराली अलकोंवाले ( नन्दके ) लड़केने कुछ ( मन्त्र ) पढ़ दिया है । मैंने तो ( उन्हें ) ( घूँघटके ) वस्त्रमें अटका—लपेटकर पलकोंके संदूकमें रखकर और अंजन रूपी ताला लगा भवनमें ( घरके भीतर ) बंद कर दिया था; ( किंतु ) मनरूपी हाथीके झटका देनेसे वेद-मर्यादाकी रस्सी और कुलकी लज्जाका बन्धन आदि सब टूट गया । मोहनलालने अपने पलकोंको मटका ( कटाक्षपूर्वक देख )-कर मुझे अपने वशमें कर लिया । ( अतः ) नटकी भाँति पुर ( व्रज ) की नारियोंको संग लगाये ( वशीभूत किये ) फिराते ( घुमाते ) हैं ।

राग सारंग

[ २६० ]

नैना निपट बिकट छवि अटके ।
टेढ़ी कटि, टेढ़ी कर मुरली, टेढ़ी पाग, लर लटके ॥ १ ॥
देखि रूप रस सोभा रीझे, फेरे फिरत न घटके ।
पारत बचन कमल दल लोचन, लाल के मोदन अटके ॥ २ ॥
मंद मंद मुसकात सखन मैं, रहत न काहू हटके ।
सूरदास प्रभु रूप लुभाने, ये गुन नागर नट के ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्र ( श्यामसुन्दरकी ) अत्यन्त दुर्गम शोभामें उलझ गये हैं, वे उनकी टेढ़ी कमर, हाथमें ( ली हुई ) टेढ़ी मुरली और ( सिरपर ) टेढ़ी पाग तथा ( उसपर बँधी मोतियोंकी ) लड़ीमें लटक रहे हैं । ( वे उनके ) रूप, रस ( माधुर्य ) और

सौन्दर्यपर ( ऐसे ) रीझ गये हैं कि हृदयद्वारा लौटाये जानेपर भी ( वे ) लौटते नहीं; उन कमल-दल-लोचनके वचन ( आदेश ) का पालन करते ( उन ) लालके आनन्दमें ही उलझे हैं । ( वे तो अपने ) सखाओंके बीचमें मन्द-मन्द मुसकराते रहते हैं, किसीके द्वारा रोके रुकते नहीं; उन्हीं नटनागर स्वामीके रूप एवं गुणोंपर ये ( नेत्र ) लुब्ध हो गये हैं ।

राग काफी

[ २६१ ]

नैना अटके रूप मैं, पल रहत बिसारे ।
निसि बासर नहिं सँग तजैं, भरि भरि जल ढारे ॥ १ ॥
अरुन अधर, दुज चमकहीं चपला चकचौंधनि ।
कुटिल अलक छबि घूँघरे, सुमना सुत सौंधनि ॥ २ ॥
चंपकली सी नासिका रँग स्यामै लीन्हे ।
नैन बिसाल समुद्र से, कुंडल श्रुति दीन्हे ॥ ३ ॥
तहँ ये रहे लुभाइ कैं, कछु समझि न जाई ।
सूर स्याम बेबस किए मोहिनी लगाई ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्र ( मोहनके ) रूपमें ऐसे उलझे हैं कि पलकें गिराना भी भूले रहते हैं; रात-दिन ( उनका ) सङ्ग नहीं छोड़ते, बार-बार आँसू भरकर ढुलकाते रहते हैं । ( उन श्यामसुन्दरके ) ओठ लाल-लाल हैं, दन्तावली बिजलीके समान चकाचौंध करती चमक रही है और चमेलीके इत्रसे सुवासित घुँघराली कुटिल अलकें ( निराली ) शोभा दे रही हैं । श्याम रंग लिये चम्पाकी कलीके समान नासिका तथा समुद्रके समान विशाल नेत्र हैं, कानोंमें कुण्डल पहने हैं । वहीं ये ( नेत्र ) लुब्ध होकर रह रहे हैं, कुछ समझ नहीं पड़ता; श्यामसुन्दरने मोहिनी ( जादू ) डालकर ( इन्हें ) विवश कर दिया है ।

राग जैतश्री

[ २६२ ]

लोचन भूलि रहे तहँ जाई।
अंग अंग छबि निरखि माधुरी इकटक पल बिसराई ॥ १ ॥
अति लोभी अँचवत अघात हैं, तापै पुनि ललचात।
देत नाहिं काहू कौं नैकौ, आपुहिं डारत खात ॥ २ ॥
ओछैं हाथ परी अपार निधि, काहू काम न आवै।
सूर स्याम इनही कौं सौंपी, यह कहि कहि पछितावै ॥ ३ ॥

( एक गोपी कह रही है—सखी ! मेरे ) नेत्र वहीं ( श्यामके समीप ) जाकर आत्मविस्मृत हो गये हैं, ( उनके ) अङ्ग-प्रत्यङ्गकी शोभा एवं मधुरिमा-को देखकर पलकें गिराना भूलकर स्थिर हो रहे हैं। ( ये ) अत्यन्त लोभी ( नेत्र ) उस ( शोभा ) को पीते हुए तृप्त होकर भी फिर उसे पान करनेको ललचाते हैं; स्वयं ही उसे गिराते-खाते हैं, पर किसीको थोड़ा भी देते नहीं। ओछे ( संकीर्ण हृदयवाले ) के हाथ यह अपार सम्पत्ति पड़ गयी है, जो किसीके काम नहीं आती। श्यामसुन्दरने भी इन्हींको वह ( छवि ) सौंप दी है। सूरदासजी कहते हैं कि यह कह-कहकर ( गोपियाँ ) पश्चात्ताप कर रही हैं।

राग धनाश्री

[ २६३ ]

नैनन यह कुटेव पकरी।
लूटत स्याम रूप आपुनहीं, निसि दिन पहर घरी ॥ १ ॥
प्रथमै इन्ह यह नोखें पाई, गए अतिहिं इतराइ।
मिले अचानक बड़भागी ह्वै पूरन दरसन पाइ ॥ २ ॥
लोभी बड़े, कृपन को इन्ह सरि, कृपा भई यह न्यारी।
सूर स्याम उन्ह कौं भए भोरे, हम कौं निठुर मुरारी ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—(सखी!) मेरे (नेत्रोंने) यह बुरा स्वभाव पकड़ लिया है कि रात-दिन, प्रत्येक प्रहर, प्रत्येक घड़ी स्वयं ही श्यामसुन्दरके सौन्दर्यको लूटते रहते हैं। पहले-पहल ही इन्होंने यह अद्भुत सम्पत्ति पायी है, जिससे (ये) अत्यन्त गर्विष्ठ हो गये हैं। अचानक (श्यामसुन्दरसे) मिले और उनका पूर्ण दर्शन पाकर महान् भाग्यशाली हो गये; किंतु ये बड़े लोभी हैं, इनके समान कृपण भला, कौन है! इनपर तो यह (मोहनकी) अद्भुत ही कृपा हुई। श्यामसुन्दर उन (नेत्रों) के लिये तो भोले बन गये और हमारे लिये (वे) मुरारि निष्ठुर हो गये हैं।

राग भैरव

[ २६४ ]

सुनि सजनी! मोसौं इक बात।
भाग बिना कछु नाहिं पाइऐ, काहे तू पुनि पुनि पछितात ॥ १ ॥
नैनन बहुत करी री सेवा, पल पल घरी पहर दिन रात।
मन, बच, क्रम दृढ़ताई जाकें, धन्य धन्य इन की है जात ॥ २ ॥
कैसे मिले स्याम इन्ह कौं ढरि, जैसें सुत कौं हित कै मात।
सूरदास प्रभु कृपा सिंधु वे, सहज बड़े हैं त्रिभुवन तात ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक अन्य गोपी कह रही है—सखी! मुझसे एक बात सुन! तू क्यों बार-बार पश्चात्ताप करती है, (अरी) भाग्यके बिना (तो) कुछ पाया नहीं जा सकता। सखी! नेत्रोंने रात-दिन प्रत्येक क्षण, प्रत्येक घड़ी, प्रत्येक प्रहर (श्यामसुन्दरकी) बहुत सेवा की और जिसकी मन, वचन, कर्मसे ऐसी दृढ़ता है, इनकी (यह) जाति धन्य है, धन्य है। श्यामसुन्दर (इनपर) द्रवित होकर इनसे कैसे मिले हैं, जैसे माता पुत्रपर प्रेम करके (उससे) मिलती है। हमारे स्वामी तो स्वभावसे बड़े हैं, वे तीनों लोकोंके पिता और कृपाके सागर हैं।

[ २६५ ]

नैन स्याम सुख लूटत हैं।
यहै बात मोकौं नहिं भावै, हम तैं काहें छूटत हैं ॥ १ ॥
महा अछै निधि पाइ अचानक आपुहि सवै चुरावत हैं।
अपने हैं तातैं यह कहियत, स्याम इन्है भरुहावत हैं ॥ २ ॥
यह संपदा कहौ क्यौं पचिहै, बाल सँघाती जानत हैं।
सूरदास जौ देते कछु इक, कहौ कहा अनुमानत हैं ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी! ) मेरे नेत्र श्याम ( के दर्शन ) का आनन्द लूट रहे हैं ( यह ठीक है )। पर हमें यह बात अच्छी नहीं लगती कि हमसे ( वे ) क्यों बिछुड़ रहे हैं। वे महान् अक्षय ( कभी न घटनेवाली ) सम्पत्ति अचानक पाकर स्वयं ( ही ) सब चुरा रहे हैं। ये अपने हैं, इसलिये इसे यह कहनेमें आता है ( कि यह आदत ठीक नहीं। किंतु लगती है कि ) श्यामसुन्दर ही इन्हें बहकाते हैं। यह सम्पत्ति बताओ तो ( अकेले इन्हें ) कैसे पचेगी? क्योंकि हमें वे ( अपने ) बचपनकी साथिन जानते हैं; अतः यदि कुछ थोड़ी ( हमें भी ) दे देते ( तो क्या ही अच्छा होता ); कहो, ( सखी! तुम इस विषयपर ) क्या अनुमान करती हो—क्या सोचती हो।

राग रामकली

[ २६६ ]

सजनी! मोतैं नैन गए।
अब लौं आस रही आवन की, हरि कें अंग छए ॥ १ ॥
जब तैं कमल बदन उन्ह दरस्यौ, दिन दिन और भए।
मिले जाइ हरदी चूना ज्यौं, एकै रंग रए ॥ २ ॥
मोकौं तजि भए आपुस्वारथी वा रस मत्त भए।
सूर स्याम के रूप समाने, मानौ बूँद तए ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी ! ( मेरे ) नेत्र मुझसे ( मेरे पाससे ) ( तो ) गये। अबतक ( तो ) उनके आनेकी आशा थी, किंतु ( अब ) वे श्यामसुन्दरके अङ्गोंमें ही बस गये हैं ( अतः उनके लौटनेकी आशा नहीं )। जबसे (उन्होंने मोहनका) कमल-मुख देखा, (तभीसे) दिनों-दिन वे कुछ दूसरे ही होते गये। ( वे ) जाकर ( श्यामसुन्दरसे ) हल्दी-चूनेके समान मिल गये, एक ( उनके ) ही रंगमें रँग गये। उस आनन्दमें ऐसे मतवाले हो गये कि मुझे छोड़कर अपना ही स्वार्थ चाहने लगे। ( अब तो ) वे श्यामसुन्दरके रूपमें ऐसे लीन हो गये हैं, मानो ( गरम ) तवेपर बूँद लीन हो जाती है।

राग बिहागरौ

[ २६७ ]

नैन गए री अति अकुलात।
ज्यौं धावत जल नीचै मारग कहूँ नाहिं ठहरात ॥ १ ॥
कहा कहौं ऐसी आतुरता, पवन बस्य ज्यौं पात।
ज्यौं आएँ रितुराज सखी-री, बेलि द्रुमन झहरात ॥ २ ॥
आइ बसी ऐसी जिय उन्ह कैं, मैं ब्याकुल पछितात।
सूरदास कैसेहुँ नहिं बहुरे, गीधे स्यामल गात ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्र अत्यन्त अधीर होकर ऐसे गये, जैसे निचाईके रास्तेसे जल दौड़ता है और कहीं रुकता नहीं। क्या कहूँ, ( उनकी ) ऐसी अकुलाहट ( जल्दबाजी ) थी जैसी वायुके अधीन पत्तेकी होती है, अथवा अरी सखी ! जैसे वसन्त ऋतु आनेपर लताएँ वृक्षोंसे खड़खड़ाकर गिरती हैं। ऐसी ही( मोहनसे आतुरता-पूर्वक जा मिलनेकी ) बात उनके चित्तमें आ बसी, जब कि मैं व्याकुल होकर पश्चात्ताप कर रही हूँ, वे ( तो उस ) साँवरे शरीरसे ( ऐसे ) परक गये कि किसी प्रकार फिर लौटे ही नहीं।

राग रामकली

[ २६८ ]

लोभी नैन हैं मेरे।
उतै स्याम उदार मन के, रूप निधि टेरे ॥ १ ॥
जातहीं उन्ह लूटि पाई, तृषा जैसें नीर।
छुधा मैं ज्यौं मिलत भोजन, होत जैसें धीर ॥ २ ॥
वै भए री निठुर मोकौं, अब परी यह जानि।
अष्ट सिधि नव निद्धि हरि तजि लेहिं ह्याँ का आनि ॥ ३ ॥
आपने सुख के भए वे हैं जु, जुग अनुमान।
सूर प्रभु करि लियौ आदर, बड़े परम सुजान ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! ) मेरे नेत्र ( तो ) लोभी हैं और उधर श्यामसुन्दर उदार चित्तवाले हैं, ( अतः ) उनकी सौन्दर्य-सम्पत्तिने ( नेत्रोंको ) पुकार लिया। जाते ही उन्हें लूटनेको ( ऐसी शोभा-सम्पत्ति ) मिल गयी जैसे प्यासमें जल मिल जाय, अथवा जैसे भूखमें भोजन मिल जानेपर धैर्य ( स्थिरता ) हो जाती है ( वैसी ही स्थिरता नेत्रोंकी हो गयी )। सखी ! अब यह बात समझ पड़ी कि वे ( नेत्र ) मेरे प्रति निष्ठुर हो गये हैं। ( वे ) आठों सिद्धियों तथा नवों निधियोंके मूर्तरूप श्यामसुन्दरको छोड़कर यहाँ आकर ( भला, ) क्या लेंगे। मेरे ये दो अनुमान ( विचार ) हैं कि या तो वे ( नेत्र ) अपना ही सुख देखनेवाले हो गये हैं अथवा हमारे परम चतुर स्वामीने उन्हें बड़े सम्मानसे अपना लिया है।

राग आसावरी

[ २६९ ]

नैननि तैं हरि आपु स्वारथी आजु बात यह जानी।
ये उन्ह कौं, वे इन्ह कौं चाहत, मिले दूध औ पानी ॥ १ ॥
सुनियत परम उदार स्यामघन, रूप रासि उन्ह माहीं।

कीजै कहा कृपन की संपति, नैन नहीं जु पत्याहीं ॥ २ ॥
बिलसत डारत रूप सुधा निधि, उन्ह की कछु न चलावै ।
सुनौ सूर हम स्वाति बूँद लौं रट लागीं नहिं पावैं ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! ) आज यह बात ( हमने ) जान ली कि श्यामसुन्दर नेत्रोंसे भी बड़े अपना स्वार्थ देखने-वाले हैं। ये उन ( नेत्रों ) को और वे इन ( श्यामसुन्दर ) को चाहते हैं तथा ( दोनों ) ऐसे मिल गये हैं ( जैसे ) दूध और पानी। सुना जाता है कि घनश्याम परम उदार हैं और उनमें राशि-राशि सौन्दर्य भरा है; किंतु कृपण ( कंजूस ) की सम्पत्तिका क्या किया जाय। वे ( स्वयं ही उस ) रूप-सुधाकी सम्पत्तिका उपभोग करते और ( उसे ) गिरा ( भी ) देते हैं; पर उन ( श्याम ) का इसमें कुछ वश नहीं चलता। सुनो, ( इधर ) हम ( श्यामसुन्दरके लिये ) उसी प्रकार रट लगाये हैं जैसे चातक स्वातीकी बूँदके लिये; किंतु ( उन्हें ) पाती नहीं हैं। ये नेत्र जब किसीका विश्वास ही नहीं करते।

### राग सारंग

### [ २७० ]

जातैं पर्‌यौ स्याम घन नाउँ ।
इन तैं निठुर और नहिं कोऊ, कबि गावत उपमाउँ ॥ १ ॥
चातक के रट नेह सदाँ, वह रितु अनरितु नहिं हारत ।
रसना तारू सौं नहिं लावत, पीवै पीव पुकारत ॥ २ ॥
वे बरषत डूँगर बन धरनी सरिता कूप तड़ाग ।
सूरदास चातक मुख नैसें बूँद नाहिं कहुँ लाग ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! ) इसीसे ( तो उनका ) घनश्याम नाम पड़ा है; ( क्योंकि ) इनसे निष्ठुर और कोई नहीं है; ( इसीलिये ) कवि भी ( इनकी यह ) उपमा गाते हैं। ( देखो, ) चातकका सदा ( पिउ-पिउ ) रटनेसे प्रेम है। वह ऋतु ( वर्षा ) में तथा अनऋतु ( बिना

वर्षा—बेमौसिम) भी (रटनेसे) हारता (थकता) नहीं, (अपनी) जीभ तालूसे नहीं लगाता, 'पीव! पीव!' (प्रियतम! प्रियतम!) ही पुकारता रहता है। वे (मेघ) पहाड़ोंपर, वनोंमें, पृथ्वीपर, नदियोंमें, कुँओंमें, सरोवरोंमें वर्षा करते हैं; पर जैसे चातकके मुखमें कहीं एक बूँद भी नहीं लाती (पहुँचती), वैसे ही ये घनश्याम हमारे निरन्तर रट लगानेपर भी हमारी उपेक्षा ही करते हैं।

राग मलार

[ २७१ ]

स्याम घन ऐसे हैं री माई!
मोकौं दरस नाहिं सपनेहूँ, धरैं रहत निठुराई॥ १॥
षट रितु व्रत तन गारि कियौ क्यौं, चातक ज्यौं रट लाई।
उहै नेम चित सदाँ हमारैं, नैकु नाहिं बिसराई॥ २॥
इंद्री मन लूटत लोचन मिलि, इन्ह कौं वे सुखदाई।
सूर स्वाति चातक की करनी, ऐसे हमै कन्हाई॥ ३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी! घनश्याम ऐसे हैं कि मुझे तो स्वप्नमें भी दर्शन नहीं देते और निष्ठुरता धारण किये रहते हैं। चातकके समान रट लगाकर छहो ऋतुओंमें जिसके लिये हमने शरीर गलाकर व्रत किया, वही नियम (प्रेम किसलिये) हमारे चित्तमें सदा है; उसे हमने तनिक भी भुलाया नहीं है। (किंतु) इन्द्रिय और मन नेत्रके साथ मिलकर आनन्द लूटते हैं, इनके लिये तो वे (मोहन) सुखदायक हो गये हैं! स्वाती नक्षत्र चातकके साथ जैसा (निष्ठुरताका) व्यवहार करता है, ऐसे ही हमारे लिये कन्हाई (हो गये) हैं।

राग सारंग

[ २७२ ]

नैनन हरि कौं निठुर कराए।
चुगली करी जाइ उन्ह आगैं, हम तैं वे उचटाए॥ २॥

यहै कह्यौ हम उन्है बुलावत, वे नाहिंन ह्याँ आवति।
आरज पंथ, लोक की संका तुम्ह तन आवत पावति ॥ २ ॥
यह सुनि कैं उन्ह हमैं बिसारी, राखत नैनन साथ।
सेवा बस करि कै लूटत हैं, बात आपने हाथ ॥ ३ ॥
संगै रहत, फिरत नहिं कितहूँ, आपुस्वारथी नीके।
सुनहु सूर वे येऊ तैसेइ, बड़े कुटिल हैं जी के ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी! मेरे ) नेत्रोंने ( ही ) श्यामसुन्दरको ( हमारी ओरसे ) निष्ठुर करा दिया है; ( इन्होंने ) उनके सामने जाकर हमारी चुगली की और हमसे उनका मन उचटा दिया ( उदासीन बना दिया )। ( उन्होंने वहाँ ) यही कहा कि हम तो उन्हें बुलाते हैं, पर वे यहाँ नहीं आती हैं। तुम्हारी ओर आनेमें आर्यपथ ( शिष्टोंके मार्ग ) का विचार करती तथा लोगोंका भय मानती हैं। यह सुनकर उन ( मोहन )ने हमें मनसे हटा दिया और ( तबसे ) वे नेत्रोंको साथ रखते हैं। ( मोहनको ) अपनी सेवाके वश करके ( उनका सौन्दर्य-सुख ) लूटते हैं। अब बात ( उनके ) अपने हाथ ( वश ) में है। वे ( नेत्र ) भली प्रकार अपना ही स्वार्थ देखनेवाले हैं। सदा ( मोहनके ) साथ ही रहते हैं, कहीं हटते नहीं। सुनो! जैसे वे ( श्यामसुन्दर ) हैं, वैसे ही ये ( नेत्र ) भी हैं; ( दोनों ही ) हृदयके बड़े ( ही ) कुटिल हैं।

राग बिहागरौ

[ २७३ ]

कपटी नैनन तैं कोउ नाहीं।
घर कौ भेद और के आगैं क्यौं कहिबे कौं जाहीं ॥ १ ॥
आपु गए निधरक ह्वै हम तैं, बरजि बरजि पचि हारी।
मन कामना भई परिपूरन, ढरि रीझे गिरिधारी ॥ २ ॥
इन्है बिना वे, उन्है बिना ये, अंतर नाहीं भावत।
सूरदास यह जुग की महिमा, कुटिल तुरत फल पावत ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी! मेरे ) नेत्रोंसे अधिक कपटी कोई नहीं है; ( भला, ये ) अपने घरका रहस्य दूसरेके सामने कहने क्यों जाते हैं। हम ( उन्हें ) रोकते-रोकते प्रयत्न करके हार गयीं, पर ( वे ) हमसे संकोचहीन होकर चले गये। उनकी मनोकामना भली-भाँति पूरी हुई; ( क्योंकि ) गिरधारीलाल कृपापूर्वक उनपर रीझ गये हैं। इन ( नेत्रों ) के बिना उन्हें और उन ( श्यामसुन्दर ) के बिना इन ( दोनों ) को ( ही परस्पर ) वियुक्त होना अच्छा नहीं लगता। यह ( इस ) युगका माहात्म्य है कि जो कुटिल हैं, वे तुरंत ( अपना अभीष्ट ) फल पा लेते हैं।

राग बिलावल

[ २७४ ]

कहा भयौ जौ आपस्वारथी,
नैनन अपनी निंद कराई।
जो यह सुनत कहत सोई धिक,
तुरतै ऐसी भई बड़ाई ॥ १ ॥
कहा चाहिऐ अपने सुख कौं,
इन्ह तौ सीखी यहै भलाई।
अजहूँ जाइ कहै कोउ उन्ह सौं,
काहे कौं तुम्ह लाज गँवाई ॥ २ ॥
अचरज कथा कहति हौ सजनी,
ऐसी है तुम सौं चतुराई।
सुनौ सूर जे भजि उबरे हैं,
तिन कौं अब चाहति है माई ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी! ) जो अपना ही स्वार्थ देखता है, उसके होनेसे क्या लाभ! नेत्रोंने ( इससे ) अपनी ही निन्दा करायी है; जो ( भी ) यह ( उनके स्वार्थीपनकी बात ) सुनता है, वही

( उन्हें ) धिक्कार देता है, ( उनकी ) तुरंत ही ऐसी बड़ाई ( व्यङ्गमें अपकीर्ति ) हुई। अपने सुखके लिये इन्हें ( और अधिक ) क्या चाहिये था; परंतु इन्होंने तो यही भलाई ( अपनी स्वार्थपरता ही ) सीखी है। अब भी कोई जाकर उनसे कहे—'तुमने किसलिये लज्जा खो दी ?' ( दूसरी गोपी कहती है—) 'सखी ! तुम ( भी ) आश्चर्यकी बात कहती हो ! तुम्हारे साथ भी ( वे ) ऐसी चतुरता चलते हैं ? सुनो ! जो ( हमसे ) भागकर ( विरहानलमें जलनेसे ) बच गये हैं, उन्हींको अब ( तुम पुनः जलनेको लौटाना ) चाहती हो !'

राग बिहागरौ

[ २७५ ]

सजनी ! नैना गए भगाइ ।
अरवाती कौ नीर बड़ेरी, कैसें फिरिहै धाइ ॥ १ ॥
बरत भवन जैसें तजियत है, निकसे त्यौं अकुलाइ ।
सोउ अपनौ नहिं, पथिक पंथ कैं बासा लीन्हौ आइ ॥ २ ॥
ऐसी दसा भई है इन्ह की, सुख पायौ ह्वाँ जाइ ।
सूरदास प्रभु कौं ये नैना, मिले निसान बजाइ ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी ! ( हमारे ) नेत्र ( हमारे पाससे ) भाग गये हैं; ( भला, ) छप्परसे गिरता पानी कैसे बँड़ेरी ( छप्परके ऊँचे भाग ) की ओर दौड़कर लौटेगा। जैसे जलते हुए घरको छोड़ दिया जाता है, उसी प्रकार ( ये ) व्याकुल होकर निकल पड़े; ( किंतु ) ऐसे ( नेत्र ) भी अपने नहीं रहे। जैसे मार्ग चलते राहीने आकर ( कुछ देरके लिये ) डेरा लगा लिया हो, ऐसी अवस्था इन ( नेत्रों ) की हो गयी है। वहाँ ( श्यामसुन्दरके पास ) जाकर ( ही ) इन्होंने सुख पाया है, ( इसलिये ) स्वामी ( श्रीकृष्ण ) से ये नेत्र डंकेकी चोट ( सबके सामने प्रकट रूपमें ) मिल गये।

राग बिलावल

[ २७६ ]

मोहन बदन बिलोकि थकित भए,
माई री ! ये लोचन मेरे।
मिले जाइ अकुलाइ अगमने,
कहा भयौ जो घूँघट घेरे ॥ १ ॥
लोक लाज कुल कानि छाँड़ि कै
बरबस चपल चपरि भए चेरे।
काहें बादिहिं बकति बावरी,
मानत कौन मते अब तेरे ॥ २ ॥
ललित त्रिभंगी तनु छबि अटके,
नाहिन फिरत कितौऊ फेरे।
सूर स्याम सनमुख रति मानत,
गए मग बिसरि दाहिने डेरे ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—अरी सखी ! मेरे ये नेत्र श्यामसुन्दरका मुख देखकर मुग्ध हो गये हैं। ( मैंने ) इन्हें घूँघटसे रोक रखा था, इससे क्या हुआ; ये ( तो ) अधीर होकर स्वयं आगे जाकर उनसे मिले। लोककी लज्जा और कुलकी मर्यादा छोड़कर बलपूर्वक चपलतासे मिलकर ( सर्वथा ) उनके दास हो गये। ( तब दूसरी गोपी बोली—) पगली ! अब किस लिये बेमतलब बकती और झगड़ती है, अब तेरा मत ( सलाह ) मानता कौन है। वे ( नेत्र तो मोहनके ) ललित त्रिभङ्गी शरीरकी शोभामें उलझे हैं; कितना भी लौटाये जानेपर लौटेंगे नहीं। ( अब तो ) वे श्यामसुन्दरके सम्मुख ( अनुकूल ) रहनेमें ही प्रीति मानते हैं, अपने निवास ( हम सब ) के दाहिने ( अनुकूल ) होनेका मार्ग ही वे भूल गये हैं।

राग रामकली

[ २७७ ]

थकित भए मोहन मुख नैन।
घूँघट ओट न मानत कैसेहुँ, बरजत कीन्हौ गैन ॥ १ ॥
निदरि गए मरजादा कुल की, अपनौ भायौ कीन्हौ।
मिले जाइ हरि कौं आतुर ह्वै, लूटि सुधा रस लीन्हौ ॥ २ ॥
अब तू बकति बादि री माई, कह्यौ मानि रहि मौन।
सुनौ सूर अपनौ सुख तजि कैं हमैं चलावै कौन ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्र मोहनके मुखपर मुग्ध हो गये हैं, घूँघटकी आड़ ( रुकावट ) किसी प्रकार भी नहीं मानते और मेरे रोकनेपर ( भी ) वे चले गये। वे कुलकी मर्यादाका अनादर ( उपेक्षा ) करके गये, जो अपनेको ( उन्हें ) प्रिय लगा, वही ( उन्होंने ) किया; आतुर होकर श्यामसे जा मिले और उनकी रूप-सुधाका सुख लूट लिया। ( दूसरी गोपी उसे उत्तर देती है—) सखी ! अब तू व्यर्थं बकवाद करती है, मेरा कहना मानकर चुप रह। सुनो ! ( अब उन नेत्रोंके अतिरिक्त ) अपना सुख छोड़कर हमें कौन चलाता ( हमारे गमनागमनमें सहायता करता ) है।

राग देवगंधार

[ २७८ ]

मेरे इन्ह नैनन इते करे।
मोहन बदन चकोर चंद ज्यौं, इकटक तैं न टरे ॥ १ ॥
प्रमुदित मनि अवलोकि उरग ज्यौं अति आनंद भरे।
निधिहि पाइ इतराइ नीच ज्यौं, त्यौं हम कौं निदरे ॥ २ ॥
जौ अटके गोचर घूँघट-पट, सिसु ज्यौं अरनि अरे।
धरैं न धीर निमेष रुदन-बल सौं हठ करनि परे ॥ ३ ॥
रही ताड़ि खिझि लाज लकुट लै, एकौ डर न डरे।
सूरदास गथ खोटौ, काहैं पारखि दोष धरे ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! ) मेरे इन नेत्रोंने इतना ( अनर्थ ) किया, ये मोहनके मुखको एकटक देखनेसे उसी प्रकार नहीं हटे, जैसे चकोर चन्द्रमाको देखनेसे नहीं हटता । जैसे मणिको देखकर सर्प आनन्दित हो जाता है, वैसे ही ( श्यामसुन्दरको देखकर ) ये नेत्र अत्यन्त आनन्दसे भर गये हैं। ( वे ) सम्पत्ति पाकर नीचोंके समान गर्वमें आ स्वजनोंकी उपेक्षा करते हैं, उसी प्रकार ( इन्होंने ) हमारी उपेक्षा की । जब ( श्यामसुन्दरके दर्शनसे ) घूँघटके वस्त्रद्वारा रोके गये, तब शिशुके समान हठ पकड़कर अड़ गये । एक पल ( भी ) धैर्य नहीं रखते, (केवल) रोनेके बलपर ( ही ) ( इन्होंने ) हठ पकड़ लिया है । खीझकर लज्जा ( रूपी ) छड़ी लेकर ( मैंने इन्हें ) दण्ड भी दिया; किंतु एक भी भयसे ये डरे नहीं । ( क्या करें ) जब अपना ही माल ( नग आदि ) खोटा ( अपने ही नेत्रोंमें दोष ) है, तब रत्न-पारखी ( श्यामसुन्दर ) को किसलिये दोष दिया जाय !

राग जैतश्री

[ २७९ ]

नैनन दसा करी यह मेरी ।
आपुन भए जाइ हरि चेरे, मोहि करत हैं चेरी ॥ १ ॥
जूठौ खैए मीठे कारन, आपुहिं खात अड़ावत ।
और जाइ सो कौन नफा कौं, देखन तौ नहिं पावत ॥ २ ॥
काज होइ तौ यहौ कीजिए, वृथाँ फिरै को पाछैं ।
सूरदास प्रभु जब जब देखत, नट सवाँग सौ काछैं ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्रोंने मेरी यह दशा की । स्वयं तो जाकर श्यामके दास हो गये और ( अब ) मुझे भी उनकी दासी बना रहे हैं । मीठेके लिये ( मीठा मिलता हो तो ) जूठा भी खा लिया जाता है; पर ये तो ( उस रूप-सुधाको ) स्वयं खाते और गिराते हैं ( दूसरेको देते नहीं ) । ( अतः ) वहाँ दूसरा ( कोई ) जाय

तो किस लाभके लिये ! वह तो ( मोहनको ) देख भी नहीं पाता । यदि कुछ काम बनता हो तो यह ( दासीपना ) भी किया जाय, ( पर ) व्यर्थ कौन पीछे लगी घूमे । मैं तो स्वामीको जब-जब देखती हूँ, तभी वे नट-जैसा ( नित्य नवीन ) वेश बनाये रहते हैं ।

राग विलावल

[ २८० ]

को इन्ह की परतीति बखाने ।
नैना धौं काहे तैं अटके, कौन अंग ढरकाने ॥ १ ॥
इन्ह के गुन बारेहि तैं सजनी मैं नीकें करि जाने ।
चेरे भए जाइ ये तिन्ह के, कैसें तिन्हैं पत्याने ॥ २ ॥
छिन छिन मैं औरै गति जिन्ह की, ऐसे आप सयाने ।
सूर स्याम अपनें गुन सोभा को नहिं बस करि आने ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) इन नेत्रोंके विश्वासका वर्णन कौन करे । पता नहीं ( ये ) नेत्र श्यामसुन्दरकी किस बातसे आकर्षित हुए और किस अङ्गपर ढुलक पड़े । सखी ! इन ( नेत्रों ) के गुण तो मैंने बचपनसे भली प्रकार जान रखे हैं; पता नहीं ये कैसे उन ( मोहन ) के पास जाकर उनके दास हो गये और कैसे उनपर इन्होंने विश्वास कर लिया । जिनकी दशा ( शोभा ) क्षण-क्षणमें और ही होती रहती है—जो स्वयं ऐसे चतुर हैं, उन श्यामसुन्दरने अपने गुण तथा सौन्दर्यसे किसे वशमें नहीं कर लिया है ।

राग रामकली

[ २८१ ]

नैनन कठिन बानि पकरी ।
गिरिधर लाल रसिक बिन देखें रहत न एक घरी ॥ १ ॥
आवति ही जमुना जल लीन्हें, सखी ! सहज डगरी ।
वे उलटे मग मोहि देखि कैं, हौं उलटी लै गगरी ॥ २ ॥

वह मूरत तब तैं इन्ह बल करि लै उर माँझ धरी।
ते क्यौं तृप्त होत अब रंचक, जिनि पाई सगरी ॥ ३ ॥
जग उपहास लोक-लज्जा तजि रहे एक जक री।
सूर पुलक अँग अंग प्रेम भरि संगति स्याम करी ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्रोंने कठिन स्वभाव पकड़ रखा है—ये रसिकशिरोमणि गिरिधरलालको देखे बिना एक घड़ी भी नहीं रहते । सखी ! मैं यमुना-जल लेकर स्वाभाविक मार्गसे आ रही थी । मार्गमें मुझे देखकर वे मेरी ओर घूमे और मैं भी घड़ा लिये ( उन्हें देखने ) उनकी ओर मुड़ी । उस मूर्तिको तभीसे इन ( नेत्रों ) ने बलपूर्वक लेकर हृदयमें रख लिया । जिन्होंने सम्पूर्ण ( झाँकी ) पायी है, वे भला, अब तनिक-सी ( झाँकी ) से क्यों तृप्त होने लगे । संसारके उपहास और लोक ( समाज ) की लज्जा ( का विचार ) छोड़कर इन्होंने एक ही हठ पकड़ रखा है । इनका प्रत्येक अङ्ग इस बातपर प्रेमसे पूर्ण होकर पुलकित होता है कि हमने श्यामका साथ किया है ।

राग रामकली

[ २८२ ]

नैनन बान परी नहिं नीकी।
फिरत सदाँ हरि पाछें पाछें, कहा लगन उन्ह जी की ॥ १ ॥
लोक लाज, कुल की मरजादा अतिहीं लागति फीकी।
जो बीतति मोकौं री सजनी, कहौं काहि या ही की ॥ २ ॥
अपने मन उन्ह भली करी है, मोहि रहै है बीकी।
सूरदास ये जाइ लुभाने मृदु मुसिकन हरि पी की ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्रोंको यह अच्छी टेव नहीं पड़ी कि वे सदा श्यामके ही पीछे-पीछे घूमते हैं; पता नहीं उनके हृदयमें कैसी लगन ( प्रीति ) है । समाजकी लज्जा और कुलकी मर्यादा इन्हें अत्यन्त नीरस लगती है; सखी ! मुझपर जो बीतती है, वह

( अपने ) इस हृदयकी बात किससे कहूँ। अपनी समझसे तो उन्होंने ( नेत्रोंने ) अच्छा ही किया है, पर मुझे वे फेंक ( त्याग ) रहे हैं। ये ( स्वयं ) प्रियतम श्यामसुन्दरकी मन्द मुस्कराहटपर जाकर लुब्ध हो गये हैं।

राग धनाश्री

[ २८३ ]

ऐसे निठुर नाहिं जग कोई।
जैसे निठुर भए डोलत हैं मेरे नैना दोई ॥ १ ॥
निठुर रहत ज्यौं ससि चकोर कौं, वे उन्ह बिन अकुलाहीं।
निठुर रहत दीपक पतंग ज्यौं, उड़ि परि परि मरि जाहीं ॥ २ ॥
निठुर रहत जैसें जल मीनै, तैसिय दसा हमारी।
सूरदास धिक धिक है तिन्ह कौं, जिन्है न पीर परारी ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! ) संसारमें ऐसा निष्ठुर कोई नहीं है जैसे निष्ठुर बने ये मेरे दोनों नेत्र घूमते हैं। जैसे चन्द्रमा चकोरके प्रति निष्ठुर रहता है, पर ( इसके विपरीत ) वे ( चकोर ) उस ( चन्द्र ) के बिना व्याकुल रहते हैं; जैसे दीपक पतंगोंके प्रति निष्ठुर रहता है, पर वे उड़कर और उसपर गिर-गिरकर मर जाते हैं; जैसे जल मछलियोंके प्रति निष्ठुर रहता है, वैसी ही हमारी अवस्था है। जिनको दूसरोंकी पीड़ाका ध्यान नहीं, उनको बार-बार धिक्कार है।

राग ललित

[ २८४ ]

नैना घूँघट मैं न समात।
सुंदर वदन नंदनंदन कौ, निरख निरख न अघात ॥ १ ॥
अति रस लुब्ध महा मधु लंपट, जानत एक न बात।
कहा कहौं दरसन सुख माते, ओट भएँ अकुलात ॥ २ ॥
बार बार बरजत हौं हारी, तऊ टेव नहिं जात।
सूर तनक गिरिधर बिन देखें पलक कलप सम जात ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्र घूँघटमें समाते ( रुकते ) नहीं । नन्दनन्दनका सुन्दर मुख देखते-देखते वे तृप्त ही नहीं होते । ये रसके अत्यन्त लोभी, ( मोहनकी मुख- ) मधुरिमाके महान् लम्पट, एक भी बात समझते नहीं । क्या कहूँ उनके दर्शनके आनन्दसे ये मत्त हो गये हैं, ओटमें होते ही व्याकुल होने लगते हैं । मैं बार-बार रोककर हार गयी, फिर भी इनका स्वभाव छूटता नहीं; तनिक-सा ( ही सही, ) गिरिधरलालको देखे बिना ( इनका ) एक पल कल्पके समान बीतता है ।

राग धनाश्री

[ २८५ ]

नैना मानत नाहिन बरज्यौ ।
इन्ह के लऐं सखी री मेरौ बाहर रहै न घर ज्यौ ॥ १ ॥
जद्यपि जतन किऐं राखति ही, तदपि न मानत हरज्यौ ।
परवस भई गुड़ी ज्यौं डोलति पर्‌यौ पराए कर ज्यौ ॥ २ ॥
देखे विना चटपटी लागति, कछू मूँड़ पढ़ि परज्यौ ।
को बकि मरै सखी री मेरें, सूर स्याम के थर ज्यौ ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्र रोकना मानते नहीं; अरी सखी ! इनके लिये ( तो ) मेरा घर बाहर-जैसा भी नहीं रहा है । यद्यपि प्रयत्न करके मैं इन्हें रख रही थी, फिर भी ( वे ) कोई रोकना मानते ही नहीं; ( मैं तो ) परवश होकर इस प्रकार घूमती हूँ जैसे दूसरेके हाथमें पड़ी पतंग हो । ( मोहनको ) देखे बिना ऐसी चटपटी ( अकुलाहट ) लगी रहती है जैसे कुछ ( मन्त्र-सा ) पढ़कर ( उन्होंने मेरे ) सिरपर डाल दिया हो । सखी ! बकवाद करके कौन मरे, मेरे लिये तो श्यामसुन्दर ही-जैसे एक मात्र स्थान रह गये हैं ।

राग नटनारायन

[ २८६ ]

नैना कह्यौ मानत नाहिं ।
आपनें हठ जहाँ भावत, तहाँ कौं ये जाहिं ॥ १ ॥

लोक लज्जा वेद मारग, तजत नाहिं डराहिं।
स्याम रस मैं रहत पूरन, पुलकि अंगन माहिं ॥ २ ॥
पियै के गुन गुनत उर मैं, दरस देखि सिहाहिं।
बदत हम कौं नैक नाहीं, मरैं जौ पछिताहिं ॥ ३ ॥
धरनि मन बच धरी ऐसी, करमना करि ध्याँहिं।
सूर प्रभु पद कमल अलि ह्वै रैन दिन न भुलाहिं ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी, मेरे ) नेत्र कहना नहीं मानते हैं, जहाँ ( इन्हें ) प्रिय लगता है, अपने हठसे ( ये ) वहीं जाते हैं। समाजकी लज्जा और वेदका मार्ग छोड़ते डरते नहीं, श्यामके आनन्दमें ही पूर्ण ( तृप्त ) रहनेके कारण इनके शरीरमें रोमाञ्च हुआ रहता है। प्रियतमके गुणोंका ही हृदयमें चिन्तन करते रहते हैं और उनका दर्शन करके ( उन्हींको पानेके लिये ) ललचाये रहते हैं, हमको तो तनिक भी गिनते ( ही ) नहीं। यदि हम ( श्यामसे मिलनके लिये ) पश्चात्ताप करती हैं तो ये मरने ( व्याकुल होने ) लगते हैं। मन-वाणीसे ऐसी ही हठ पकड़ रखी है। कर्मसे भी उनका ही ध्यान करते हैं, हमारे स्वामीके चरण-कमलोंके ( ये ) भ्रमर होकर (उन्हें) रात-दिन भूलते नहीं।

राग आसावरी

[ २८७ ]

परी मेरे नैनन ऐसी बानि।
जब लगि मुख निरखत तब लगि सुख सुंदरता की खानि॥ १ ॥
ये गीधे बींधे न रहत सखि, तजी स्रवन की कानि।
सादर श्रीमुख चंद बिलोकत, ज्यौं चकोर रति मानि ॥ २ ॥
अतिहिं अधीर, नीर भरि आवत, सहत न दरसन हानि।
कीजै कहा बाँधि कै सौंपी सूर स्याम के पाँनि ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—(सखी !) मेरे नेत्रोंका ऐसा स्वभाव पड़ गया है कि जबतक ये (मोहनका) मुख देखते रहते हैं, तबतक ( ये

स्वयं भी ) आनन्द एवं सौन्दर्यकी खान बने रहते हैं। सखी ! ये ( उनसे मिलनेको ) इतने ललचाये रहते हैं कि बंद ( किसी प्रकारकी कैदमें ) नहीं रहते, सबका संकोच ( इन्होंने ) छोड़ दिया है। उस चन्द्र-मुखको बड़े आदरसे इस प्रकार देखते हैं जैसे चकोर प्रीतिपूर्वक ( चन्द्रको ) देखता हो। ( ये दर्शन बिना ) अत्यन्त अधीर हैं, जल ( अश्रु ) भर लाते हैं और दर्शनकी हानि ( रुकावट ) नहीं सह सकते, क्या किया जाय ( हमने ही तो ) इन्हें बाँधकर श्यामसुन्दरके हाथों सौंप दिया है।

राग जैतश्री

[ २८८ ]

**नैनन ऐसी बानि परी।**
**लुब्धे स्याम चरन पंकज कौं, मोकौं तजी खरी॥ १॥**
**घूँघट ओट किएँ राखति ही, अपनी सी जु करी।**
**गए पेरि, ताकौं नहिं मान्यौ, देखौ ज्यौं निदरी॥ २॥**
**गए सु गए फेरि नहिं बहुरे, कह धौं जियैं धरी।**
**सुनौ सूर मेरे प्रतिपाले, ते बस किए हरी॥ ३॥**

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्रोंका ऐसा स्वभाव हो गया है कि श्यामसुन्दरके चरणकमलपर ही लुब्ध होकर इन्होंने मुझे सर्वथा छोड़ दिया है। ( मैं इन्हें ) घूँघटकी ओट करके रखती थी; ( किंतु ) देखो, इन्होंने अपने अनुरूप ( ही ) व्यवहार किया, मुझे दुःख देकर चले गये। उस ( घूँघटकी ) आड़को माना नहीं, जैसे हमारी उपेक्षा ( इन्होंने ) कर दी हो। वे ( एक बार ) गये सो ( चले ही ) गये, फिर लौटे ( ही ) नहीं; पता नहीं चित्तमें क्या सोच लिया है। सुनो ! ( जो ) मेरे-द्वारा पाले-पोसे गये थे, उनको अब श्यामसुन्दरने अपने वशमें कर लिया है।

राग सारंग

[ २८९ ]

**नैनन हौं समुझाइ रही।**
**मानत नाहिं कह्यौ काहू कौ, कठिन कुटेव गही॥ १॥**

अनजानतहीं चितै बदन छबि सनमुख सूल सही।
मगन होत बपु स्याम सिंधु मैं, कहूँ न थाह लही॥ २॥
तन बिसर्‌यौ, कुल कानि गँवाई, जग उपहास दही।
एते पै संतोष न मानत, मरजादा न गही॥ ३॥
रोम रोम सुंदरता निरखत आनँद उमगि ढही।
सूरदास इन्ह लोभिन के सँग बन बन फिरति वही॥ ४॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—(सखी!) मैं नेत्रोंको समझाकर थक गयी, (परंतु ये) किसीका कहना नहीं मानते, बड़ी वेढब कुटेव (इन्होंने) पकड़ रखी है। अनजानमें ही (मोहनके) मुखकी शोभा देख सम्मुख होकर पीड़ा सहते हैं और उस श्यामसुन्दरके शरीररूप समुद्रमें मग्न होते (डूबते) हैं, जिसकी उन्होंने कहीं भी थाह नहीं पायी। अपने शरीरकी सुधि भूलकर मैंने कुलकी मर्यादा खो दी, और जगत्‌के उपहाससे (भी) जली; (किंतु) इतनेपर भी इन्होंने संतोष धारण नहीं किया, मर्यादाका आश्रय नहीं पकड़ा है। (उनके) रोम-रोमका सौन्दर्य देखते हुए आनन्दसे उल्लसित हो गिर पड़ी और इन लोभियोंके साथ वन-वन भटकती फिरती हूँ।

राग रामकली

[ २९० ]

नैना कहें न मानत मेरे।
हारि मानि कै रही मौन ह्वै, निकट सुनत नहिं टेरे॥ १॥
ऐसे भए मनौ नहिं मेरे, जबै स्याम मुख हेरे।
मैं पछिताति जबै सुधि आवति, ज्यौं दीन्हौ मोहि डेरे॥ २॥
एते पै कबहूँ जब आवत, झरपत लरत घनेरे।
मोहू बरबस उतै चलावत, दूत भए उन्ह केरे॥ ३॥
लोक बेद कुल कानि न मानत, अतिही रहत अनेरे।
सूर स्याम धौं कहा ठगोरी लाइ कियौ धरि चेरे॥ ४॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्र मेरे कहनेपर भी नहीं मानते, अतः मैं हार मानकर चुप हो रही हूँ; क्योंकि पाससे पुकारे जानेपर भी ये सुनते नहीं। जबसे ( इन्होंने ) श्यामका मुख देखा है तबसे ( ये ) ऐसे हो गये हैं जैसे मेरे हैं ही नहीं। जब मुझे यह स्मरण आता है तभी मैं पश्चात्ताप करती हूँ, जैसे मुझमें ( इन्होंने स्थायी निवास मान ) डेरा दिया हो। इतनेपर भी जब कभी ( ये ) आते हैं, तब बहुत अधिक लड़ते-झगड़ते और मुझे भी बलपूर्वक उधरको ही ले जाते हैं; ये उन ( मोहन ) के दूत हो गये हैं। लोक ( -लज्जा ), वेद ( -मर्यादा ) तथा कुलका संकोच नहीं मानते, अत्यन्त दुष्ट बने रहते हैं। पता नहीं कौन-सा जादू डालकर श्यामसुन्दरने ( इन्हें ) पकड़कर अपना दास बना लिया है।

राग कल्यान

[ २९१ ]

कबहुँ कबहुँ आवत ये, मोहि लेन माई !  
आवतहीं यहै कहत स्याम तोहि बुलाई ॥ १ ॥  
नैकहूँ न रहत विरमि, जात तहाँ धाई।  
मानौ पहचानि नाहिं, ऐसें बिसराई ॥ २ ॥  
उन्ह कौं सुख देत, मोहि दहिबे कौं पाई।  
सूर स्याम संगै सँग बासर निसि जाई ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी ! ये ( मेरे नेत्र ) कभी-कभी मुझे लेने आते हैं और आते ही यही कहते हैं—'श्यामने तुझे बुलाया है !' ( यहाँ ) तनिक भी स्थिर होकर नहीं रहते, वहीं दौड़ जाते हैं। मुझे ( इन्होंने ) ऐसे भुला दिया है, मानो ( मुझसे ) इनकी जान-पहचान ही न हो। उन्हें ( मोहनको ) आनन्द देते हैं और मुझे जलानेको पा लिया है। इनका ( तो ) श्यामसुन्दरके साथ-ही-साथ दिन-रात बीतता है।

राग विहागरौ

[ २९२ ]

मेरे नैननहीं सब दोष ।
बिनहीं काज और कौं सजनी ! कित कीजै मन रोष ॥ १ ॥
जद्यपि हौं अपनैं जिय जानति, औ बरजै सब घोष ।
तद्यपि वा जसुमति के सुत बिन कहूँ न सुख संतोष ॥ २ ॥
कहि पचि हारि रही निसि बासर, और कंठ करि सोष ।
सूरदास अब क्यौं बिसरत है मधु रिपु कौ परितोष ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! ) मेरे नेत्रोंका ही सब दोष है; सखी ! बिना काम ही दूसरेके प्रति मनमें क्रोध क्यों करना चाहिये । यद्यपि मैं अपने मनमें समझती हूँ और पूरा गाँव मना भी करता है, फिर भी उन श्रीयशोदाकुमारके बिना ( इन्हें ) कहीं भी सुख या संतोष नहीं मिलता । दिन-रात कहते-रहकर श्रम करके थक गयी और अपना गला सुखा दिया; किंतु अब ( इन नेत्रोंको ) श्रीमधुसूदनसे जो परम संतुष्टि मिली है, वह कैसे भुलायी जा सकती है !

राग सोरठ

[ २९३ ]

मेरे नैना दोष भरे ।
नंद नँदन सुंदर वर नागर देखत तिन्है खरे ॥ १ ॥
पलक कपाट तोरि कैं निकसे, घूँघट ओट न मानत ।
हाहा करि, पाइन परि हारी, नैकौ जो पहिचानत ॥ २ ॥
ऐसे भए रहत ये मोपै, जैसें लोग बटाऊ ।
सोऊ तौ बूझे तैं बोलत, इन्ह मैं यह निठुराऊ ॥ ३ ॥
ये मेरे अब होहिं नाहिं सखि ! हरि छबि बिगरि परे ।
सुनौ सूर ऐसेउ जन जग मैं, करता करन करे ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! ) मेरे नेत्र ही दोषपूर्ण हैं, नटनागर परमसुन्दर नन्दनन्दनको देखते हुए खड़े ( स्थिर ही ) रहते हैं। वे पलकरूपी किवाड़ तोड़कर निकल गये, घूँघटकी ओट ( रुकावट भी ) मानी नहीं। मैं 'हाय-हाय' करके उनके पैरों पड़ते-पड़ते थक गयी, पर मुझे ( उन्होंने ) तनिक भी नहीं पहचाना। मेरे प्रति ये ( नेत्र ) ऐसे बने रहते हैं, जैसे मार्ग चलनेवाले लोग हों। वे ( पथिक ) भी तो पूछनेपर बोलते हैं; पर इन ( नेत्रों ) में तो यह ( और भी ) निष्ठुरता है। सखी ! ये अब मेरे नहीं होंगे; क्योंकि श्यामकी शोभा देखकर ये बिगड़ गये हैं। सुनो, संसारमें ऐसे ( कृतघ्न ) लोगोंको भी सृष्टि-कर्ताने ही अपने हाथों उत्पन्न किया है।

राग रामकली

[ २९४ ]

नैना मोकौं नाहिं पत्याहिं।
जे लुब्धे हरि रूप माधुरी, और गनत वे नाहिं ॥ १ ॥
जिनि दुहि धेनु औंटि पै चाख्यौ, ते क्यों निरसे छाकैं।
क्यौं मधुकर मधु कमल कोस तजि रुचि मानत है आकै ॥ २ ॥
जे षटरस सुख भोग करत हैं, ते कैसें खर खात।
सूर सुनौ लोचन हरि रस तजि हम सौं क्यौं तृपितात ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्र मुझपर विश्वास नहीं करते; ये श्यामकी रूप-माधुरीपर लुब्ध हो गये हैं, दूसरे ( किसी ) को कुछ गिनते ( ही ) नहीं। जिन्होंने गायको दुह और ( उसके ) दूधको औटाकर ( खूब गरम करके ) पिया है, वे नीरस पदार्थसे कैसे तृप्त हो सकते हैं; भला, भौंरा कमल-कोष छोड़कर आक ( के फूल ) से कैसे रुचि ( प्रीति ) मान सकता है। जो षट्रस ( व्यञ्जन ) का सुख-पूर्वक उपभोग ( सेवन ) करते हैं, वे खली कैसे खा सकते हैं। ( अतः ) सुनो, ( उसी प्रकार ) ये नेत्र श्यामसुन्दर ( के रूप ) का आनन्द छोड़कर हमसे कैसे तृप्त हो सकते हैं।

राग देवगन्धार

[ २९५ ]

मेरे नैननही सब खोरि।
स्याम बदन छबि निरखि जु अटके, बहुरे नाहिं बहोरि ॥ १ ॥
जउ मैं कोटि जतन करि राखति घूँघट-ओट अगोरि।
तउ उड़ि मिले बधिक के खग ज्यौं पलक पींजरा तोरि ॥ २ ॥
बुधि बिवेक बल बचन चातुरी पहलेंहिं लई अँजोरि।
अति आधीन भई सँग डोलति, ज्यौंऽब गुड़ी बस डोरि ॥ ३ ॥
अब धौं कौन हेत हरि हम सौं बहुरि हँसत मुख मोरि।
सुनौ सूर दोउ सिंधु सुधा भरि उमगि मिले मिति फोरि ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! ) सब दोष मेरे नेत्रोंका ही है; श्यामसुन्दरके मुखकी शोभा देखकर जो वहाँ रुके सो फिर लौटे नहीं। यद्यपि मैं करोड़ों प्रयत्न करके घूँघटकी आड़में इन्हें रोक रखती थी, फिर भी ( ये ) पलकरूपी पिंजरेको तोड़ उड़कर व्याधके ( द्वारा कैद किये हुए ) पक्षीके समान ( श्यामसुन्दरसे जाकर ) मिल गये। ( इन्होंने मेरी ) बुद्धि, विचार-शक्ति तथा वचन ( बोलनेकी ) चतुरता पहले ही हर ली थी; अब मैं अत्यन्त अधीन हुई ( इनके ) साथ-साथ इस प्रकार घूमती हूँ जैसे धागेसे बँधी पतंग उसके साथ उड़ती है। पता नहीं श्याम अब किस कारणसे मुख घुमाकर—हमारी ओर देखकर हँसते हैं। सुनो, ये दोनों ( नेत्र ) तो ( पहले ही ) उनकी रूपसुधाका सागर अपनेमें भरकर उमड़ते हुए बाँध तोड़कर ( उनसे ) जा मिले।

राग गौरी

[ २९६ ]

यह सब नैननही कौ लागै।
अपनेहीं घर भेड़ि करी इन्ह, बरजतहीं उठि भागे ॥ १ ॥

ज्यौं बालक जननी सौं अटकत, भोजन कौं कछु माँगै।
त्यौंहीं ये अतिहीं हठ ठानत इकटक पलक न त्यागैं ॥ २ ॥
कहत देहु हरि रूप माधुरी, रोवत हैं अनुरागे।
सूर स्याम धौं कहा चखायौ, रूप माधुरी पागे ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! ) यह सब ( अनुचित कार्य मेरे ) नेत्रोंको ही ( प्रिय ) लगता है, इन्होंने अपने ही घरको कलङ्कित किया और रोकते-रोकते उठकर भाग गये। जैसे बालक मातासे भोजनके लिये कुछ माँगता हुआ झगड़ने लगता है, उसी प्रकार ये अत्यन्त हठ करते हुए, एकटक हो, पलकें ( भी ) नहीं गिराते। ( ये मुझसे ) कहते हैं, 'हमें श्यामसुन्दरकी रूप-माधुरी दो !' और ( इस प्रकार ) प्रेममग्न होकर रोते हैं। पता नहीं श्यामसुन्दरने इन्हें क्या खिला दिया है जो ये उनकी रूपमाधुरीमें ( ही ) निमग्न हो गये हैं।

राग धनाश्री

[ २९७ ]

लोचन टेक परे सिसु जैसें।
माँगत हैं हरि रूप माधुरी, खोज परे हैं नैसें ॥ १ ॥
बारंबार चलावत उतहीं, रहन न पाऊँ वैसें।
जात चले आपुनहीं अब लौं, राखे जैसें तैसें ॥ २ ॥
कोटि जतन करि करि परबोधति, कह्यौ न मानैं कैसें।
सूर कहूँ ठग मूरी खाई, ब्याकुल डोलत ऐसें ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्रोंने नन्हे बालकों-जैसी हठ पकड़ ली है; ये ( मुझसे ) श्यामकी रूप-माधुरी माँगते हैं, बुरी तरह ( उसके ) पीछे पड़े हैं। बार-बार मुझे उधर ही ले जाते हैं, बैठी ( स्थिर, शान्त ) नहीं रह पाती हूँ। अबतक स्वयं ( ये ) चले जाते; ( पर ) जैसे-तैसे ( प्रयत्न करके ) अभी ( उन्हें ) रोक रखा है।

करोड़ों उपाय करके बार-बार उपदेश देती हूँ; (परंतु) किसी प्रकार (भी) कहना नहीं मानते; (ये तो) ऐसे व्याकुल हुए घूमते हैं जैसे (इन्होंने) कहीं वशीकरणकी जड़ी खा ली हो।

राग जैतश्री

[ २९८ ]

इन्ह नैनन की टेव न जाइ।
कहा करौं बरजतहीं चंचल लागत हैं उठि धाइ॥ १॥
बाट घाट जहँ मिलत मनोहर, तहँ मुख चलति छिपाइ।
गीधे हेम चोर ज्यौं आतुर वह छबि लेत चुराइ॥ २॥
मनौ मधुप मधु कारन लोभी हरि मुख पंकज पाइ।
घूँघट बस जल हीन मीन ज्यौं अधिक उठत अकुलाइ॥ ३॥
निलज भए कुल कानि न मानत, तिन सौं कहा बसाइ।
सूर स्यामसुंदर मुख देखे बिनु री रह्यौ न जाइ॥ ४॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—(सखी ! मेरे) इन नेत्रोंका स्वभाव छूटता नहीं, क्या करूँ। ये चञ्चल रोकते-रोकते उठकर भागने लगते हैं। घाटपर या मार्गमें जहाँ-कहीं श्यामसुन्दर मिल जाते हैं, वहीं मैं मुख छिपाकर चल देती हूँ, (किंतु) ये नेत्र परके हुए स्वर्ण चुराने-वालेके समान बड़ी शीघ्रतासे वह छवि (इस प्रकार) चुरा लेते हैं, मानो श्याम-के मुख-कमलको पाकर (ये नेत्ररूपी) भौंरे मधुके लिये लोलुप हो गये हैं, और घूँघटके द्वारा रोके जानेपर जलसे रहित मछलीके समान अत्यन्त व्याकुल हो उठते हैं। जो निर्लज्ज होकर कुलकी मर्यादा मानते नहीं, उनसे क्या वश चल सकता है। सखी ! इनसे श्यामसुन्दरका मुख देखे बिना रहा (जो) नहीं जाता।

राग सोरठ

[ २९९ ]

जाकी जैसी टेव परी-री।
सो तौ टरै जीव के पाछें, जो-जो धरनि धरी-री॥ १॥

जैसें चोर तजै नहिं चोरी, बरजें वहै करी री।
बरु ज्यौ जाइ, हानि पुनि पावत, बकतै बकत मरी री ॥ २ ॥
जद्यपि ब्याध बधै मृग प्रगटै, मृगिनी रहै खरी री।
ताहूँ नाद बस्य ज्यौ दीन्हौ, संका नाहिं करी री ॥ ३ ॥
जद्यपि मैं समुझावति पुनि पुनि,यह कहि कहि जु लरी री।
सूर स्याम दरसन तैं इकटक टरत न निमिष घरी री ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—(सखी!) जिसका जैसा स्वभाव बन जाता है, (अथवा) जिसने जो भी हठ पकड़ रखा है, वह (तो) उसके प्राण जाने (मृत्यु) के पीछे (ही) छूटती है—ठीक उसी प्रकार जैसे चोर चोरी नहीं छोड़ता, रोकनेपर भी वही काम करता है, भले प्राण चला जाय; तथा हानि भी उठाता है। (इसी प्रकार यह नेत्रोंका हठ है, मैं तो उन्हें समझानेके लिये) बकते-बकते (डाँटते-डाँटते) तंग आ गयी। यद्यपि व्याध प्रकटरूपमें (सबके सामने) हिरनको मारता है, फिर भी हिरनी खड़ी रहती है; (इतना ही नहीं,) वह भी नादसे मोहित होकर प्राण दे डालती है, मनमें (व्याधके प्रति) शङ्का नहीं करती। यद्यपि मैं (इन्हें) बार-बार समझाती हूँ, यही (दृष्टान्त) बार-बार सुनाकर झगड़ती हूँ, फिर भी ये (नेत्र) दर्शनमें एकटक रहते हुए (एक) घड़ी—पलभरके लिये श्यामके दर्शनसे हटते नहीं।

राग सारंग

[ ३०० ]

ये नैना मेरे ढीठ भए री।
घूँघट ओट रहत नहिं रोकें,
हरि मुख देखत लोभि गए री ॥ १ ॥
जउ मैं कोटि जतन करि राखे,
पलक कपाटन मूदि लए री।
तउ ते उमगि चले दोउ हठ करि,
कहौं कहा मैं जान दए री ॥ २ ॥

अतिहिं चपल बरज्यौ नहिं मानत,
देखि बदन तन फेरि नए री।
सूर स्यामसुंदर रस अटके,
मानौ लोभी उहँइ छए री ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी! ये मेरे नेत्र ढीठ हो गये हैं। रोकनेपर भी घूँघटकी आड़में नहीं रहते। ये श्यामसुन्दर-का मुख देखते ही (उसपर) लुब्ध हो गये हैं। यद्यपि मैंने करोड़ों उपाय करके (इन्हें) रोका और पलकरूपी किवाड़ोंको बंद कर लिया, तब भी ये दोनों हठ करके उमड़ चले (आँसू गिराने लगे)। तब मैं क्या करती, मैंने (इन्हें) चले जाने दिया। ये अत्यन्त ही चञ्चल होनेके कारण हटक नहीं मानते, (उस) श्रीमुखको देखकर फिर इस ओर लौटे ही नहीं। (ये तो) श्यामसुन्दरके प्रेममें (इस भाँति) उलझ गये, मानो लोभवश इन्होंने डेरा डाल दिया हो।

राग नट

[ ३०१ ]

नैना, हिं ढीठ अतिहीं भए।
लाज लकुट दिखाइ त्रासी, नैकहूँ न नए ॥ १ ॥
तोरि पलक कपाट घूँघट ओट मेटि गए।
मिले हरि कौं जाइ आतुर, हैं जु गुननि मए ॥ २ ॥
मुकुट कुंडल, पीत पट कटि, ललित भेष ठए।
जाइ लुबधे निरखि वा छबि सूर नंद जए ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—(सखी! मेरे) नेत्र अत्यन्त ढीठ हो गये हैं। (इन्हें) (मैं) लज्जारूपी छड़ी दिखाकर हार गयी पर ये तनिक भी नहीं झुके, पलकोंके किवाड़ तोड़कर और घूँघटकी आड़ दूर करके चले गये। आतुरतापूर्वक जाकर उन श्यामसुन्दरसे जा मिले, जो गुणमय

( गुणोंके भण्डार ) हैं। ( मस्तकपर ) मुकुट, ( कानोंमें ) कुण्डल तथा कमरमें पीताम्बर बाँधे मनोहर वेश बनाये रहते हैं। नन्दनन्दनकी उस शोभाको भलीभाँति देखकर और जाकर ( उसीपर ) लुब्ध हो गये।

राग बिलावल

[ ३०२ ]

नैना झगरत आइ कैं मोसौं री माई!
खूँट धरत हैं धाइ कैं, चलि स्याम दुहाई ॥ १ ॥
मैं चकित ह्वै ठगि रहौं, कछु कहत न आवै।
आपुन जाइ मिले रहैं, अब मोहि बुलावैं ॥ २ ॥
गए दरस जौ देहिं वे, तहँ अपनी छाया।
और कछूवै हैं नहीं, री उन्ह की माया ॥ ३ ॥
कपटिन के ढँग ये सखी, लोचन हरि कैसे।
सूर भली जोरी बनीं, जैसे कौं तैसे ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी! ( मेरे ) नेत्र आकर मुझसे झगड़ा करते हैं और दौड़कर ( मेरी साड़ीका ) कोना पकड़ते ( और कहते ) हैं कि 'श्यामकी शपथ, चल!' मैं तो आश्चर्यमें पड़कर ठगी-सी ( विमूढ़ ) रह जाती हूँ, कुछ कहते नहीं बनता; स्वयं तो जाकर ( मोहनसे ) मिले ही रहते हैं, अब मुझे ( भी ) बुलाते हैं। ( वहाँ जानेसे लाभ क्या ? ) जानेपर यदि वे दर्शन देते ( तो जाना उचित भी था ); वहाँ तो अपनी ही छाया ( प्रतिबिम्ब ) दिखायी पड़ती है। ( वे ) दूसरे कुछ हैं ही नहीं, सखी! ( यही ) उनकी माया है। सखी! इन कपटियोंके ये ढंग हैं, नेत्र भी श्यामसुन्दरकी ही भाँति हैं। यह अच्छी जोड़ी मिली है; जैसे ये ( नेत्र ) हैं ( उन्हें ) वैसे ही ( श्यामसुन्दर ) मिल गये हैं।

राग सूही

[ ३०३ ]

नैनन कौ मत सुनौ सयानी।
निसि दिन तपत सिरात न कबहूँ,

जद्यपि उमगि चलत पल पानी ॥ १ ॥
हौं उपचार अमित उर आनति,
खल भइ लोक लाज कुल कानी ।
कछु न सुहाइ, दहत दरसन दौ,
बारिज बदन मंद मुसकानी ॥ २ ॥
रूप लकुट अभिमान निडर ह्वै,
जग उपहास न सुनत लजानी ।
बुधि बिबेक बल बचन चातुरी,
मनौ उलटि उन्ह माझ समानी ॥ ३ ॥
आरज पथ गुरु ग्यान गुप्त करि,
बिकल भई तन दसा हिरानी ।
जाँचत सूर स्याम अंजन कौं,
वह किसोर छबि जीव हितानी ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—चतुर सखी ! ( मेरे ) नेत्रोंकी बात सुनो; वे रात-दिन संतप्त रहते हैं, कभी शीतल होते ही नहीं, यद्यपि इनकी पलकोंसे उमड़कर जल ( अश्रु-प्रवाह ) बहता रहता है । मैं ( इसके लिये ) अनेक उपचार ( उपाय ) मनमें सोचती हूँ; किंतु लोककी लज्जा और कुलका संकोच इन्हें वैरी ( बाधक ) हो रहे हैं । कुछ अच्छा नहीं लगता, उस ( श्यामसुन्दरके ) कमल-मुखकी मंद मुसकानके दर्शनकी दावाग्निमें ( ये नेत्र ) जलते रहते हैं । ( श्यामसुन्दरके ) रूप ( सौन्दर्य ) की लाठीके अभिमानसे निर्भय होकर संसारका उपहास सुनते हुए भी ये लज्जित नहीं होते; बुद्धि, विचारशक्ति, वचन-चातुर्य आदि सब मानो उलटकर उनमें ही लीन हो गये हों । ( मैं इस कारण ) शिष्टोंका मार्ग ( पातिव्रत्य ) और गुरुजनोंका उपदेश आदि छिपाकर ( विस्मृत करके ) ऐसी व्याकुल हो गयी कि शरीरकी ( भी ) सुधि खो गयी । अब तो ये ( नेत्र ) जीवनके लिये हितकारी श्यामसुन्दरकी उस किशोर छविका अंजन ( अपनेमें बसा लेनेके लिये ) माँगते हैं ।

राग सारंग

[ ३०४ ]

नैनन भलौ मतौ ठहरायौ ।
जबहीं मैं बरजति हरि संगै, तबहीं तब बहरायौ ॥ १ ॥
जरत रहत एते पै निसि दिन, छिन बिनु जनम गँवायौ ।
ऐसी बुद्धि करन अब लागे, मोकौं बहुत सतायौ ॥ २ ॥
कहा करौं मैं हारि धरी जिय, कोटि जतन समझायौ ।
लुब्धे हेम चोर की नाईं, फिरि फिरि उतहीं धायौ ॥ ३ ॥
मोसौं कहत भेद कछु नाहीं, अपनौइ उदर भरायौ ।
सूरदास ऐसे कपटिन की बिधना साथ छुड़ायौ ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्रोंने अच्छा विचार स्थिर किया है; जभी मैं श्यामका साथ करनेको रोकती हूँ, तब-ही-तब मुझे भुलावेमें डाल दिया । इतनेपर भी ( ये ) रात-दिन जलते रहते हैं, एक क्षणके ( मोहनके दर्शन ) बिना जीवनको व्यर्थ गया समझते हैं । अब ऐसा विचार करने लगे हैं कि ( इन्होंने ) मुझे बहुत पीड़ा दी है । क्या करूँ, मैंने तो चित्तमें हार मान ली है । ( इन्हें ) करोड़ों उपाय करके समझाया; ( किंतु ये तो ) स्वर्ण-चोरकी भाँति ( उन्हींपर ) लुब्ध हो गये हैं और बार-बार उधर ही दौड़ते हैं । मुझसे कहते ( तो ) हैं—'हममें और तुझमें कोई भेद नहीं है'; परंतु ( वास्तवमें ) इन्होंने अपना ही पेट भरा ( स्वार्थ साधा ) है । ( अच्छा हुआ ) विधाताने ऐसे कपट करनेवालोंका साथ छुड़ा दिया ।

राग बिहागरौ

[ ३०५ ]

मेरे नैना अटकि परे ।
सुंदर स्याम अंग की सोभा निरखत भटकि परे ॥ १ ॥
मोर मुकुट लट घूँघरवारी तामैं लटकि परे ।
कुंडल तरनि किरनि तैं उज्ज्वल चमकनि चटकि परे ॥ २ ॥

चपल नैन मृग मीन कंज जित, अलि ज्यौं लुबधि परे।
सूर स्याम मृदु हँसन लुभाने, हम तैं दूरि परे॥ ३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—(सखी!) मेरे नेत्र उलझ गये हैं और (श्यामसुन्दरके) सुन्दर श्याम अङ्गोंकी शोभा देखकर उसीमें भटक गये हैं। (उनके) मयूरपिच्छका मुकुट और घुँघराली अलकें हैं, उनमें ही (ये नेत्र) लटक गये हैं। (उनके) कुण्डल-सूर्य-रश्मियोंसे भी अधिक उज्ज्वल हैं, (अतः) उनकी चमकसे (ये) खिल उठे हैं। (उनके) चञ्चल नेत्र मृग, मछली और कमल (की शोभा) को भी जीतनेवाले हैं; (अतः) ये (मेरे नेत्र) भौंरेके समान (उनपर) लुब्ध हो गये हैं। (ये) श्यामसुन्दरकी मंद हँसीपर लुब्ध होकर हमसे दूर हो गये हैं।

[ ३०६ ]

नैनन साधें ही जु रही।
निरखत बदन नंद नंदन कौ भूलि न तृपति गही॥ १॥
पचि हारे उन्ह की रुचि कारन, परमिति तौ न लही।
मगन होत अब स्याम सिंधु मैं, कतहुँ न थाह थही॥ २॥
रोम रोम सुंदरता निरखत आनद उमग बही।
दुख सुख सूर विचार एक करि कुल मरजाद ढही॥ ३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—(सखी! मेरे) नेत्रों-की लालसाएँ (अपूर्ण ही) रह गयीं, श्रीनन्दनन्दनका मुख देखते समय भूलकर भी ये तृप्त नहीं हुए। उनकी शोभा (देख लेने) के लिये श्रम करके हार गये, फिर भी उसका अन्त नहीं पा सके। अब उस श्यामसिन्धुमें डूब रहे हैं, जिसकी कहीं भी थाह नहीं प्राप्त हुई। (उनके) रोम-रोमका सौन्दर्य देखते हुए आनन्दसे उमड़कर बह चले हैं। (उन्होंने) दुःख और सुख दोनोंको विचारद्वारा एक समझकर कुलकी मर्यादाका लोप कर दिया है।

राग नट

[ ३०७ ]

नैनन साधैं नाहिं सिराइँ।
जदपि निसि दिन संग डोलत, तदपि नाहिं अघाइँ ॥ १ ॥
पलक नहिं कहुँ नैक लागति, रहत इकटक हेरि।
तऊ कहुँ तृपितात नाहीं, रूप रस की ढेरि ॥ २ ॥
ज्यौं अगिनि घृत तृपति नाहीं, तृषा नाहिं बुझाइ।
सूर प्रभु अति रूप दानी, नैन लोभ न जाइ ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्रों-की लालसाएँ शान्त नहीं हुईं; यद्यपि ये रात-दिन ( श्यामसुन्दरके ) साथ ही घूमते हैं, फिर भी तृप्त नहीं हुईं। कहीं तनिक ( भी ) पलक न गिराकर एकटक देखते रहते हैं; फिर भी ये ( नेत्र ) उस सौन्दर्य-रसकी राशिसे तृप्त नहीं होते । जैसे अग्निकी घीसे तृप्ति नहीं होती और न ( घी डालनेसे उसकी ) प्यास ( ही ) बुझती है, उसी प्रकार हमारे स्वामी ( तो ) रूपका दान करनेवाले ठहरे और ( इन मेरे ) नेत्रोंका लोभ जाता नहीं ।

राग कल्यान

[ ३०८ ]

स्याम अंग निरखि नैन कबहूँ न अघाहीं।
एकै टक रहे जोरि, पलक नाहिं सकत तोरि, जैसैं चंदा चकोर, तैसी इन्ह पाहीं ॥ १ ॥
छबि तरंग सरिता गन, लोचन ये सागर जनु, प्रेम धार लोभ गहनि नीकैं अवगाहीं।
सूरदास एते पै तृपति नाहिं मानत ये, इन्ह की सो दसा सखी ! बरनी नहिं जाहीं ॥ २ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! ) श्यामसुन्दर-के श्रीअङ्गको देखकर ( मेरे ) नेत्र कभी तृप्त नहीं होते, एकटक ही दृष्टि

जोड़े रहते हैं, पलक गिरा नहीं सकते; जैसे चन्द्रमाको चकोर देखता है, वैसी ही इनकी दशा हो गयी है। (मोहनकी) शोभा-तरंगें नदियाँ हैं और (उनके लिये) ये (नेत्र) मानो समुद्र हैं, प्रेम (उस नदीकी) धारा है और दर्शन-लोभरूपी अत्यन्त गहराई है, जिसकी थाह पाना असम्भव है। इतनेपर भी ये तृप्तिका अनुभव नहीं करते, इन (नेत्रों) की उस दशाका वर्णन सखी! नहीं किया जा सकता।

राग बिहागरौ

[ ३०९ ]

लोचन सपने के भ्रम भूले।
जो छबि निरखत सो पुनि नाहीं, भरम हिंडोरैं झूले ॥ १ ॥
इकटक रहत, तृपति नहिं कबहूँ, पते पै हैं फूले।
निदरे रहत मोहि, नहिं मानत, कहत कौन हम तूले ॥ २ ॥
मोतैं गए कुँभी के जर लौं, ऐसे वे निरमूले।
सूर स्याम जल रासि परे अब रूप रंग अनुकूले ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—(सखी! मेरे) नेत्र स्वप्नके-से भ्रममें भूल गये हैं; (क्योंकि श्यामसुन्दरकी) जिस शोभाको वे देखते हैं, वह फिर नहीं रह जाती (नयी ही हो जाती है)। इससे ये संदेहके झूलेमें झूलते रहते (संदेहमें पड़े रहते) हैं। एकटक (देखते) रहते हैं, कभी तृप्त नहीं होते। इतनेपर भी ये प्रफुल्लित हैं, (मेरी) उपेक्षा किये रहते हैं, मुझे मानते नहीं और कहते हैं—'हमारी तुलनामें कौन आ सकता है।' मुझसे वे इस भाँति निर्मूल होकर (सर्वथा) चले गये, जैसे जलकुम्भी (घास) जड़के साथ ही जाती है। अब श्यामसुन्दरके सौन्दर्यरूपी जलराशिमें रूप तथा रंगसे (उनके) अनुकूल होकर पड़ गये हैं।

राग गौरी

[ ३१० ]

मेरे नैना ये अति ढीठ।
मैं कुल कानि किएँ राखति हौं, ये हठि होत बसीठ ॥ १ ॥

जद्यपि वे उत कुसल समर बल, ये इत अबल अहीठ।
तदपि निदरि पठ जात पलक छिदि, जूझत देत न पीठ ॥ २ ॥
अंजन ओन तजत तमकत तकि, तानत दरसन डीठ।
हारेहूँ नहिं हठत, अमित बल बदन पयोधि पईठ ॥ ३ ॥
आतुर अरत उरझि अँग अंगन, अनुरागन नमि नीठ।
सूर स्याम सुंदर रस अटके, नहिं जानत कटु मीठ ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! ) मेरे ये नेत्र अत्यन्त ढीठ हैं; मैं कुलका संकोच करके इनको रोके रखती हूँ, ( परंतु ) ये हठपूर्वक ( श्यामसुन्दरके ) दूत बनते हैं। यद्यपि उधर वे ( श्यामसुन्दर ) युद्धमें निपुण तथा बलवान् हैं और इधर ये निर्बल हैं तथा उनतक पहुँचनेकी सामर्थ्य नहीं रखते; फिर भी ( घूँघटके ) वस्त्रकी उपेक्षा करके और पलकोंको भेदकर चले जाते हैं तथा युद्ध करते हुए पीठ नहीं देते ( पीछे नहीं मुड़ते )। अञ्जनरूप आवरणको छोड़कर ( वे ) देखते ही आवेशमें आ जाते हैं और दर्शन करनेके लिये दृष्टि फैलाये ( लगाये ) रहते हैं। हार जानेपर भी ( वहाँसे ) हटते नहीं, ( किंतु ) अत्यन्त बलपूर्वक (जबरदस्ती श्यामसुन्दरके) मुख-शोभारूप समुद्रमें प्रवेश करते हैं। आतुरता ( शीघ्रता )-पूर्वक ( उनके ) अङ्ग-प्रत्यङ्गमें उलझकर अड़े रहते हैं, कठिनाईसे ( केवल ) प्रेमके कारण झुकते हैं। ( ये नेत्र ) श्यामसुन्दरके प्रेम-रसमें ही उलझे हुए कड़वा-मीठा ( बुरा-भला ) कुछ जानते ( समझते ) नहीं।

राग बिलावल

[ ३११ ]

नाहिं ढीठ, नैनन तैं और।
कितनौ मैं बरजति समुझावति, उलटि करत हैं और ॥ १ ॥
मोसौं लरत भिरत हरि सनमुख, महा सुभट ज्यौं धावत।
भौंह धनुष सर सरस कटाच्छन मार करत नहिं आवत ॥ २ ॥

मानत नाहिं हार जौ हारत, अपनैं मन नहिं टूटत।
सूर स्याम अँग अँग की सोभा लोभ सैन सौं लूटत ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्रोंसे अधिक ढीठ ( कोई ) दूसरा नहीं है; कितना भी मैं ( इन्हें ) रोकती और समझाती हूँ, ये उलटा ( मुझसे ) झगड़ने लगते हैं। ( इस प्रकार ) लड़ाई-झगड़ा करते हुए ( वे ) श्यामसुन्दरके सम्मुख महान् योधाके समान दौड़ते हैं; परंतु भौंहोंके धनुष तथा रसमय कटाक्षोंके बाणोंसे इन्हें प्रहार करने नहीं आता। यदि ( ये ) हार जाते हैं, तो भी हार मानते नहीं और अपने मनमें कभी निरुत्साह ( भी ) नहीं होते; ( ये ) लोभरूपी सेनाके द्वारा श्यामसुन्दरके अङ्ग-प्रत्यङ्गकी शोभा लूटते हैं।

राग बिहागरौ

[ ३१२ ]

लोचन लालची भारी।
उन्ह के लएँ लाज या तन की सबै स्याम सौं हारी ॥ १ ॥
बरजत मात पिता पति बंधू, औ आवै कुल गारी।
तदपि न रहत नंदनंदन बिन, कठिन प्रकृति हठि धारी ॥ २ ॥
नख सिख सुभग स्यामसुंदर के अंग अंग सुखकारी।
सूर स्याम कौं जो न भजै, सो कौन कुमति है नारी ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्र बहुत बड़े लालची हैं, उनके लिये ( मैंने ) ( अपने ) इस शरीरकी सारी लज्जा श्यामसुन्दरके सामने हार दी। माता-पिता, पति तथा भाई रोकते हैं; कुलको गाली ( निन्दा ) मिलती है; फिर भी ये नन्दनन्दनके बिना रहते नहीं, इन्होंने हठपूर्वक ( बड़ी ) कठिन प्रकृति धारण कर रखी। नखोंसे लेकर चोटीतक श्यामसुन्दरके अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुखदायी हैं; ( ऐसे ) श्यामसुन्दरसे जो प्रेम न करे, वह दुर्बुद्धिवाली स्त्री कौन है।

राग कल्यान

[ ३१३ ]

अति रस लंपट नैन भए।
चाख्यौ रूप सुधा रस हरि कौ, लुबधे उतै गए ॥ १ ॥
ज्यौं बिठ नारि भवन नहिं भावत, औरैं पुरुष रई।
आवति कबहुँ होति अति ब्याकुल, जैसैं गवन नई ॥ २ ॥
फिरि उतही कौं धावति, जैसैं छुटत धनुष तैं तीर।
चुभे जाइ हरि रूप ओप मैं सुंदर स्याम सरीर ॥ ३ ॥
ऐसैं रहत उतै कौं आतुर, मोसौं रहत उदास।
सूर स्याम के मन बच क्रम भए, रीझे रूप प्रकास ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्र अत्यन्त रस-लम्पट हो गये हैं; इन्होंने श्यामसुन्दरकी सौन्दर्य-सुधाके रसका आस्वादन किया और लुब्ध होकर वहीं चले गये। जैसे कुलटा स्त्रीको अपना घर अच्छा नहीं लगता, पर पुरुषके प्रति ही वह अनुरक्त रहती है—यदि कभी ( घर ) आती भी है तो ( वह इस भाँति ) अत्यन्त व्याकुल होती है, जैसे द्विरागमन होकर नव-वधू आयी हो; और फिर उधरको ही उसी प्रकार दौड़ती है जैसे धनुषसे बाण छूटता है, उसी प्रकार ये ( मेरे नेत्र भी ) सुन्दर श्याम शरीरवाले, ( उन ) मोहनके रूपकी शोभामें जाकर धँस—गड़ गये। ( वे ) इस प्रकार वहीं जानेको आतुर रहते हुए मुझसे उदासीन बने रहते हैं। वे श्यामसुन्दरकी सौन्दर्य-छटापर रीझकर मन, वाणी एवं कर्मसे उनके ही हो गये हैं।

राग सूही

[ ३१४ ]

ये नैना अतिहीं चपल चोर।
सरबस मूसि देत आपौ कौं, सुधि बुधि सुधन बिबेकौ मोर ॥ १ ॥

अनजानत कल बेनु स्रवन सुनि, चितै रहत हैं उन्ह की ओर।
मोहन मुख मुसिकाइ चले, मन भेद भयौ, यह लयौ अँकोर॥
हरि कौं दोष कहा कहि दीजै, जो कीजै सो इन्ह कौं थोर।
सूर संग सोवत न परी सुधि, पायौ मरम वियोगिन भोर॥

एक गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) ये नेत्र अत्यन्त चपल ( फुर्तीले ) चोर हैं; ( ये ) मेरे शरीरकी सुध-बुध ( के साथ ) विवेकरूपी उत्तम धन आदि सर्वस्व चुराकर माधवको दे देते हैं, कानोंसे अनजानमें ही सुन्दर वंशी-ध्वनि सुनकर उनकी ओर देखते रहते हैं। ( जब ) मोहन मुखसे ( तनिक ) मुस्कराकर चलने लगे तब इन्होंने ( मेरे ) मनको ( अपनी ओर ) फोड़ लिया और इन ( नेत्रों ) को ( उसे ) उपहारमें ले लिया। ( अब ) श्यामसुन्दरको क्या कहकर दोष दिया जाय; ये ( नेत्र ) जो कुछ करें, ( वह ) इनके लिये थोड़ा ( ही ) है।' सूरदासजी कहते हैं—इन ( नेत्रों ) के साथ सोते हुए भी ( इस ) वियोगिनीको कुछ ज्ञात न हो सका, ( उसने तो ) सबेरे उठनेपर यह रहस्य समझा ( कि नेत्रोंने चुपचाप उसका सर्वस्व मोहनको दे डाला है )।

राग गौरी

[ ३१५ ]

नैन करत घरही की चोरी।
चोरन गए स्याम अँग सोभा, उत सिर परी ठगोरी॥ १॥
अपबस करि इन कौं हरि लीन्हौ, मो तन फेरि पठायौ।
जो कछु रही संपदा मेरैं, सुधि बुधि चोरि लिवायौ॥ २॥
ये धाए आए निधरक सौं, लै गए संग लगाइ।
सूर स्याम ऐसे हैं माई, उलटी चाल चलाइ॥ ३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्र घरकी ही चोरी करते हैं। ( पहिले ये ) श्यामसुन्दरका अङ्ग-सौन्दर्य चुराने गये थें, पर वहाँ ( उलटे ) इनके सिर जादू पड़ गया। श्यामसुन्दरने इनको अपने वशमें कर लिया, फिर मेरी ओर भेजा; (अतः) सुध-बुध आदि जो कुछ सम्पत्ति मेरे पास थी, उसे ( इनके द्वारा ) चोरवा मँगाया। ये बिना शंका-संदेहके दौड़े आये और वह सब सम्पत्ति साथ लेकर चले गये। सखी ! श्यामसुन्दर हैं ही ऐसे, उन्होंने उलटी चाल चलायी है।

राग सारंग

[ ३१६ ]

नैनन प्रान चोरि लै दीने।  
समझत नाहिं बहुरि समझाए, अति उतकंठ नबीने ॥ १ ॥  
अतिहीं चतुर, चातुरी जानत, सकल कला जु प्रबीने।  
लोभ लिए परबस भए माई, मीन ज्यौं बंसी भीने ॥ २ ॥  
कहा कहौं, कहिबे लायक नहिं, मते रहत नर हीने।  
आपु बँधाइ पूँजि लै सौंपी, हरि रस रति के लीने ॥ ३ ॥  
ज्यौं डोरें बस गुड़ी देखियत, डोलत संग अधीने।  
सूरदास प्रभु रूप सिंधु मैं मिले सलिल गुन कीने ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है —( सखी ! मेरे ) नेत्रोंने ( मेरे ) प्राणोंको चुराकर ( श्यामसुन्दरको ) दे दिया। ( मैंने ) नवीन एवं अत्यधिक उत्कण्ठावाले ( अपने ) इन नेत्रोंको फिर समझाया, पर ये समझे ( ही ) नहीं। ये अत्यन्त चतुर हैं, चतुराई ( करना ) जानते हैं और सभी कलाओं ( विद्याओं ) में निपुण हैं; परंतु सखी ! लोभके पीछे ये उसी प्रकार बन्धनमें पड़ गये, जैसे चारेके लोभसे मछली काँटेसे छिद जाती है। क्या कहूँ, कहने योग्य बात नहीं है, मनुष्य ओछे विचारोंके अधीन रहता है। ( इन्होंने ) श्यामसुन्दरके मिलन-सुखके लिये लोभसे

अपनेको बन्धनमें ही नहीं डलवाया; अपितु घरकी सभी पूँजी भी लेकर ( उन्हें ) सौंप दी । ( अब ) जैसे धागेके वशमें पतंग देखी जाती है, उसी प्रकार ये श्यामसुन्दरके साथ पराधीन हुए घूमते तथा मेरे स्वामीके रूप-सागरमें मिल गये हैं और उसके जलके समान ही अपने गुण भी कर लिये हैं ।

राग नट

[ ३१७ ]

ये लोचन लालची भए री ।
सारँग रिपु के रहत न रोकें, हरि सरूप गिधए री ॥ १ ॥
काजर कुलुफ मेलि मैं राखे, पलक कपाट दए री ।
मिलि मन दूत पैज करि निकसे, हरि पै दौरि गए री ॥ २ ॥
ह्वै आधीन पंच तैं न्यारे, कुल लज्जा न नए री ।
सूर स्यामसुंदर रस अटके, मानौ उहँइ छए री ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी ! ये ( मेरे ) नेत्र लालची हो गये हैं । श्यामसुन्दरके स्वरूपपर ये ऐसे लुब्ध हुए हैं कि घूँघटके द्वारा रोकनेपर ( भी ) रुकते नहीं । मैंने ( इन्हें ) पलकोंके किवाड़ बंदकर और उनमें काजल ( रूपी ) ताला डालकर रोका; परंतु ( ये ) मनरूपी दूतसे मिलकर प्रतिज्ञा करके निकले और दौड़कर श्यामसुन्दरके पास चले गये । अतः श्यामसुन्दरके वशमें होकर समाजसे पृथक् हो गये, तथा कुलकी लज्जा ( के भय ) से भी झुके नहीं । ये श्यामसुन्दरके रस ( प्रेम ) में ऐसे उलझ गये, मानो उन्होंने वहीं डेरा डाल दिया हो ।

राग बिहागरौ

[ ३१८ ]

लोचन लोभ ही मैं रहत ।
फिरत अपने काजही कौं, धीर नाहीं गहत ॥ १ ॥
देखि मृषनि कुरंग धावत, तृप्त नाहीं होत ।

ये लहत लै हृदै धारत, तऊ नाहीं ओत ॥ २ ॥
हठी लोभी लालची इन तैं नहीं कोउ और ।
सूर ऐसे कुटिल कौं छबि स्याम दीन्ही ठौर ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्र लोभमें ही ( पड़े ) रहते हैं; ये अपने ही कामके लिये घूमते रहते हैं, ( फिर भी ) धैर्य नहीं रखते । ( जैसे ) मृग ( मरुस्थलकी धूपमें ) झूठे जलको देखकर दौड़ता है, पर उससे तृप्त नहीं होता, वैसे ही ये उस रूपको पाते हैं और लेकर हृदयमें धारण करते हैं; फिर भी ( इन्हें कोई ) चैन नहीं होता । इनसे बड़ा हठी, लोभी और लालची और कोई नहीं है । ऐसे कुटिलोंको श्यामसुन्दरने अपनी शोभामें स्थान दिया है ।

राग रामकली

[ ३१९ ]

लोचन मानत नाहिन बोल ।
ऐसे रहत स्याम के आगैं, मनु हैं लीन्हे मोल ॥ १ ॥
इत आवत दै जात दिखाई, ज्यौं भौंरा चकडोर ।
उत तैं सूत्र न टारत कतहूँ, मोसौं मानत कोर ॥ २ ॥
नीके रहे सदाँ मेरे बस, जाइ भए ह्वाँ जोर ।
मोहन सिर मोहिनी लगाई, जब चितए उन्ह ओर ॥ ३ ॥
अब मिलि गए स्याम मनमाने, निसि बासर इक ठौर ।
सूर स्याम के चोर कहावत, राखे हैं करि गौर ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्र ( मेरी कोई ) बात नहीं मानते, ( वे ) श्यामसुन्दरके सम्मुख ऐसे रहते हैं मानो ( उनके द्वारा ) मोल लिये हुए हों । ( वे ) इधर ( इस प्रकार कभी ) आकर दिखायी पड़ जाते हैं जैसे रस्सीके द्वारा नचाया जानेवाला लट्टू चक्कर काटता हो; ( किंतु ) उधर ( श्यामसुन्दरके पास ) से एक सूत भी नहीं हटते और मुझसे द्वेष मानते हैं । मेरे आधीन ( हो वे ) सदा भली

प्रकार ( सीधे-सादे ) रहे, परंतु ( अब ) वहाँ जाकर वे बलवान् हो गये हैं । मोहनने जब उन ( नेत्रों ) की ओर देखा, तभी उनके सिर जादू डाल दिया । अब तो श्यामसुन्दरको मनमाने ( अनुकूल ) मिल गये हैं, अतः रात-दिन एक साथ रहते हैं । श्यामसुन्दरके ( ये ) चोर कहे जाते हैं, अतः ( उन्होंने इन्हें ) सोच-विचारकर रखा है ।

[ ३२० ]

नैना उनही देखें जीवत ।
सुंदर बदन तड़ाग रूप जल, निरखन पुट भरि पीवत ॥ १ ॥
राखें रहत, और नहिं पावै, उन्ह मानी परतीति ।
सूर स्याम इन सौं सुख मानत, देखैं इन्ह की प्रीति ॥ २ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्र उन ( मोहन ) को देखकर ही जीते हैं; वे ( उनके ) सुन्दर मुख ( रूपी ) सरोवरके सौन्दर्य ( रूपी ) जलको देखनेकी क्रिया ( रूपी ) दोनेमें भरकर पीते हैं । ( अपने पास ही ) रखे रहते हैं, दूसरा कोई नहीं पाता; उन ( श्याम ) ने भी इनका विश्वास मान लिया है । ( मेरे ) इन नेत्रोंकी प्रीति देखकर श्यामसुन्दर इनसे सुख मानते ( प्रसन्न रहते ) हैं ।

राग गूजरी

[ ३२१ ]

नैना नाहिन कछू विचारत ।
सनमुख समर करत मोहन सौं,
जद्यपि हैं हठि हारत ॥ १ ॥
अवलोकत अलसात नवल छबि,
अमित तोष अति आरत ।
तमकि तमकि तरकत मृगपति ज्यौं,
घूँघट पटै विदारत ॥ २ ॥

बुधि बल कुल अभिमान रोष रस
जोवत भँवैं निवारत ।
निदरें ब्यूह समूह स्याम अँग,
पेखि पलक नहिं पारत ॥ ३ ॥
स्रमित सुभट सकुचत साहस करि,
पुनि पुनि सुखै सम्हारत ।
सूर सरूप मगन झुकि ब्याकुल,
टरत न इकटक टारत ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्र कुछ विचार नहीं करते; यद्यपि ( वे ) हठपूर्वक ( विवश होकर ) हार जाते हैं, फिर भी वे मोहनसे आमने-सामने युद्ध करते हैं । वे श्यामसुन्दरकी ( नित्य ) नवीन शोभाको अत्यन्त आकुलतापूर्वक देखते हुए शिथिल ( मग्न ) हो जाते हैं और अपार तुष्टि पाते हैं । बार-बार आवेशमें आकर सिंहके समान कूदते हुए घूँघटके वस्त्रको फाड़ते ( हटा देते ) हैं । रोषके आवेशमें भरकर देखते हुए बुद्धिके बल एवं कुलके अभिमानको भौंहोंद्वारा निवारण करते हैं और व्यूहोंके समूहरूप श्यामसुन्दरके अङ्गोंको अवज्ञापूर्वक देखते हुए पलकें नहीं गिराते हैं । ये ( मेरे नेत्ररूपी ) सुन्दर योधा थके होनेके कारण संकोच करते हैं, फिर भी साहस करके बार-बार ( श्यामसुन्दरको देखनेके ) आनन्दको सम्हालते ( उसका स्मरण करते ) हैं । वे उस स्वरूपमें मग्न होकर ( उसी ओर ) व्याकुल होकर झुके, वहाँसे हटाये हटते नहीं, एकटक ( निमेषशून्य ) बने रहते हैं ।

राग बिहागरौ

[ १२२ ]

स्याम रंग नैना राँचे री
सारँग रिपु तैं निकसि निलज भए, ह्वै परगट नाचे-री ॥ १ ॥
मुरली नाद मृदंग, मृदंगी अधर बजावनहारे ।
गायन घर घर घैर चलावन, लोभ नचावनहारे ॥ २ ॥
चंचलता निरतनि कटाच्छ रस भाव बतावत नीके ।
सूरदास रिझए गिरिधारी, मन माने उनही के ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्र श्यामके रंग ( प्रेम ) में ही रँग गये हैं; वे घूँघटसे निकलकर निर्लज्ज हो गये और प्रत्यक्ष ( खुलकर ) नाचने लगे। वंशी-ध्वनि ही मृदङ्ग है और उसे बजानेवाले ( श्यामसुन्दरके ) ओठ पखावजी हैं। घर-घरमें चलनेवाली निन्दा ही गायन है और ( दर्शनका ) लोभ ( इन्हें ) नचानेवाला है। ( मेरे नेत्रोंकी ) चञ्चलता ही नृत्य है, ( जो ) कटाक्षके द्वारा भली प्रकार सरस भाव बतलाते हैं। श्रीगिरधारीलालने ( इन्हें ) रिझा लिया है, अतः ( ये ) उन्हींके मन-माने ( अनुकूल चलनेवाले ) हैं।

राग रामकली

[ ३२३ ]

नाचत नैन, नचावत लोभ।  
यह करनी इन्ह नई चलाई, मेटि सकुच कुल छोभ ॥ १ ॥  
घूँघट घर त्याग्यौ इन्ह मन क्रम, नाचै पर मन मान्यौ।  
घर घर घैर मृदंग सब्द करि निलज काछनी बान्यौ ॥ २ ॥  
इंद्री मन समाज, गायन ये ताल धरैं रहैं पाछें।  
सूर प्रेम भावन सौं रीझे, स्याम चतुर बर आछें ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्र नाचते हैं और ( उन श्यामसुन्दरके दर्शनका ) लोभ ( इन्हें ) नचाता है; संकोच तथा कुलके लोगोंके असंतोषकी उपेक्षा करके इन्होंने यह नया कार्य प्रारम्भ किया है। मन तथा कर्मसे इन्होंने घूँघटरूपी घर छोड़ दिया है और नाच ही इन्हें अच्छा लगता है। घर-घर होनेवाली निन्दाको मृदङ्गका शब्द मानकर निर्लज्जताकी कछनी कस ली है। इन्द्रियाँ और मन इनका समाज ( सहायक ) है, ये सब इनके गायनके पीछे ताल देते रहते हैं। श्रेष्ठ और चतुर श्यामसुन्दर इनके प्रेमपूर्ण भावोंसे ( इनपर ) भली प्रकार प्रसन्न हो गये हैं।

राग धनाश्री

[ ३२४ ]

नैनन सिखवत हारि परी।
कमल नैन मुख बिन अवलोकें रहत न एक घरी ॥ १ ॥
हौं कुल कानि मानि सुनि सजनी! घूँघट ओट करी।
वे अकुलाइ मिले हरि लै मन, तन की सुधि बिसरी ॥ २ ॥
तब तैं अंग अंग छबि निरखत, सो चित तैं न टरी।
सूर स्याम मिलि लोक वेद की मरजादा निदरी ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—(सखी! अपने) नेत्रोंको (मैं) समझाते-समझाते हार गयी; किंतु ये कमल-लोचन (मोहन) का मुख देखे बिना एक घड़ी भी नहीं रहते। सखी! सुनो, मैंने (तो) कुलकी मर्यादा मानकर घूँघटकी आड़ (ओट) ली और वे (नेत्र) व्याकुल होकर मनको (भी) साथ ले श्यामसुन्दरसे (जा) मिले; उन्हें शरीरकी सुधि भी भूल गयी। तभीसे (मैं उनके) अङ्ग-प्रत्यङ्गकी शोभा देखती हूँ, अतः वह छवि चित्तसे हटती नहीं। श्यामसुन्दरसे मिलकर इन नेत्रोंने लोक और वेद की मर्यादाका निरादर कर दिया।

राग बिलावल

[ ३२५ ]

इन्ह नैनन सौं री सखी! मैं मानी हारि।
साँट सकुच नहिं मानहीं, बहु बारन मारि ॥ १ ॥
डरत नाहिं फिरि फिरि अरैं, हरि दरसन काज।
आपु गए मोहू कहैं, चलि मिलि व्रजराज ॥ २ ॥
घूँघट घर मैं नहिं रहैं, करि रही बुझाइ।
पलक कपाट बिदारि कैं उठि चले पराइ ॥ ३ ॥
तब तैं मौन भई रहौं, देखत ये रंग।
सूरज प्रभु जहँ जहँ रहैं, तहँ तहँ ये संग ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है— अरी सखी ! मैंने ( अपने ) इन नेत्रोंसे हार मान ली है। ( यद्यपि ) मैंने इन्हें अनेक बार संकोचरूपी छड़ीसे मारा, पर ये ( उसे ) मानते नहीं। श्यामसुन्दरका दर्शन करनेके लिये ( ये ) बार-बार हठ करते हैं, डरते नहीं। स्वयं तो गये ही, ( अब ) मुझसे भी कहते हैं— 'चल, व्रजराजसे मिल !' मैं इन्हें घूँघट-रूपी घरमें रहनेके लिये बहुत समझाती रहती हूँ, पर ये ( वहाँ ) रहते ( ही ) नहीं; पलकरूपी किवाड़ोंको तोड़कर उठकर भाग जाते हैं। तभीसे ( मैं ) चुप हुई ( इनका ) यह रंग-ढंग देखती रहती हूँ। हमारे स्वामी जहाँ-जहाँ रहते ( जाते ) हैं, वहाँ-वहाँ ये भी साथ रहते हैं।

[ ३२६ ]

इन्ह नैनन सौं मानी हारि।  
अनुदिनहीं उपराँत आन रुचि,  
बाढ़ी सब लोगन सौं रारि ॥ १ ॥  
तदपि निडर चलि जात चपल दोउ,  
घूँघट सघन कपाट उघारि।  
निगम ग्यान प्रतिहार महाबल,  
लाज लकुट कर करत निवारि ॥ २ ॥  
श्रीगुपाल कौतुक मन अरुयौ,  
तब तैं चतुरन भई चिन्हारि।  
सूरदास लोभिन के लीनें,  
सिर पै सही जगत की गारि ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! ) इन ( अपने ) नेत्रोंसे ( मैंने ) हार मान ली है। दिनोंदिन ( इनकी ) अन्य-विषयक रुचि उपरत होती ( हटती ) जाती है, अतः सब लोगोंसे शत्रुता बढ़ गयी है। फिर भी ये दोनों निर्भय ( नेत्र ) चपलतापूर्वक घूँघटरूपी सुदृढ़ किवाड़ोंको खोलकर चले जाते हैं। शास्त्रोंका ज्ञानरूपी महाबली द्वारपाल लज्जारूपी लाठी हाथमें लेकर रोक लगाता है। ( किंतु ये उसे भी

नहीं मानते। ) इन्होंने ( तो ) श्रीगोपालकी क्रीड़ाको मन सौंप दिया है और तभीसे इन परम चतुरोंकी ( आपसमें ) जान-पहिचान हो गयी है। इन लोभियोंके पीछे ( ही ) मैंने अपने सिरपर संसारभरकी गालियाँ सही हैं।

राग गूजरी

[ ३२७ ]

नैना बहुत भाँति हटके ।
बुधि बल छल उपाइ करि थाकी, नैक नाहिं मटके ॥ १ ॥
इत चितवत, उतहीं फिरि लागत, रहत नाहिं अटके ।
देखतहीं उड़ि गए हाथ तैं, भए बटा नट के ॥ २ ॥
एकै परनि परे खग ज्यौं हरि रूप माझ लटके ।
मिले जाइ हरदी चूना ज्यौं, फिरि न सूर फटके ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! मैंने अपने ) नेत्रोंको अनेक प्रकारसे रोका। बुद्धि, बल, छल तथा और भी उपाय करके मैं थक गयी; परंतु ये तनिक भी ( अपने निश्चयसे ) नहीं हिले। इधर ( कभी-कभी ) ये देख लेते हैं और फिर उधर ही लग जाते हैं; रोकनेसे रुकते नहीं। ये देखते-देखते ही अपने हाथसे उड़ गये और ( अब तो ) बाजीगरके गोलेके समान हो गये हैं। पक्षीकी भाँति एक ही हठ पकड़े श्यामसुन्दरके रूपमें ही उलझे हैं; वे हल्दी-चूनेके समान ( उनसे जाकर ) मिल गये और फिर लौटकर आये ( ही ) नहीं।

राग जैतश्री

[ ३२८ ]

बहुत भाँति नैना समझाए ।
लंपट तदपि सँकोच न मानत,
जद्यपि घूँघट ओट दुराए ॥ १ ॥
निरखि नवल इतराहिं जाहिं मिलि,

जनु बिवि खंजन अंजन पाए।
स्याम कुमर के कमल बदन कौं,
महामत्त मधुकर ह्वै धाए ॥ २ ॥
घूँघट ओट तजी सरिता ज्यौं,
स्याम-सिंधु के सनमुख आए।
सूर स्याम मिलि कढ़ि पलकनि सौं,
बिन मोलै हठि भए पराए ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! ) मैंने नेत्रोंको अनेक प्रकारसे समझाया। यद्यपि उन्हें मैंने घूँघटकी आड़में छिपाया, वे लम्पट ( लालची ) मानते नहीं। उन नवल किशोरको देखकर गर्वसे फूल जाते हैं और उनसे ऐसे मिल जाते हैं जैसे दो खंजनोंने अञ्जन पा लिया हो। श्यामसुन्दरके कमल-मुखके लिये महामतवाले भौंरे होकर ( ये ) दौड़ पड़े। घूँघटकी ओट छोड़ दी और नदीकी भाँति श्यामसुन्दर-रूपी समुद्रके सम्मुख चल पड़े। पलकोंसे निकलकर एवं श्यामसुन्दरसे मिलकर विना मूल्यके ही हठपूर्वक दूसरेके ( दास ) हो गये।

राग सोरठी

[ ३२९ ]

नट के बटा भए ये नैन।
देखति हौं पुनि जात कहाँ धौं, पलक रहत नहिं ऐन ॥ १ ॥
स्वाँगी से ये भए रहत हैं, छिनै और, छिन और।
ऐसे जात, रहत नहिं रोके, हमहू तैं अति दौर ॥ २ ॥
गए सु गए, गए अब आए, जात लगी नहिं बार।
सूर स्याम सुंदरता चाहत, जाकौ वार न पार ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! ) ये ( मेरे ) नेत्र बाजीगरका बट्टा ( गोला ) हो गये हैं। पलकोंके भवनमें ( तो ये ) रहते नहीं; अतः देखती हूँ कि फिर ये कहाँ जाते हैं। बहुरूपियेके समान ये इस क्षणमें और और दूसरे क्षण दूसरे ( नित्य नवीन प्रेमवाले ) बने रहते हैं तथा हमारी

अपेक्षा भी वेगसे दौड़कर इस प्रकार जाते हैं कि रोकनेसे रुकते नहीं । जाते तो इन्हें देर नहीं लगी; पर जो गये सो चले ही गये, अब ( इतनी देरमें ) लौटे हैं । ये श्यामसुन्दरकी ( वह ) सुन्दरता ( लेना ) चाहते हैं, जिसका कोई वारापार ( आदि-अन्त ) नहीं है ।

राग बिहागरौ

[ ३३० ]

मोतैं नैन गए री ऐसें ।
जैसे बधिक पींजरा तैं खग छूटि भजत हैं, तैसें ॥ १ ॥
सकुच फंद मैं फँदे रहत हैं, ते धौं तोरैं कैसें ।
मैं भूली इहिं लाज भरोसें, राखति ही ये वैसें ॥ २ ॥
स्याम रूप बन माझ समाने, मोपै रहैं अनैसें ।
सूर मिले हरि कौं आतुर ह्वै, ज्यौं सुरभी सुत तैसें ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है— सखी ! मुझसे ( मेरे पाससे ) नेत्र उसी प्रकार चले गये, जैसे व्याधके पिंजरेमेंसे छूटकर पक्षी भागते हैं । संकोचरूपी फंदेमें ये बँधे रहते थे, सो पता नहीं उसे कैसे तोड़ दिया । मैं तो इसी लज्जाके भरोसे भूली हुई ( असावधान ) थी और इनकी वैसे ( पहिलेके समान ) ही रक्षा करती थी; किंतु ( अब तो ये ) श्यामके सौन्दर्य-रूपी वनमें प्रविष्ट हुए मुझसे रुष्ट रहते हैं । जैसे गायका बछड़ा मातासे मिलता है, वैसे ही आतुर होकर ये श्यामसुन्दरसे जाकर मिल गये ।

राग जैतश्री

[ ३३१ ]

लोचन भए पराए जाइ ।
सनमुख रहत, टरत नहिं कबहूँ, सदाँ करत सिवकाइ ॥ १ ॥
ह्वाँ तौ भए गुलाम रहत हैं, मोसौं करत ढिठाइ ।
देखत रहत चरित इन्ह के सब, हरिहि कहौंगी जाइ ॥ २ ॥
जिन कौं मैं प्रतिपालि बड़े किए, ये तुम्ह बस करि पाइ ।
सूर स्याम सौं यह कहि लैहौं अपनें बल पकराइ ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! मेरे ) नेत्र जाकर दूसरेके हो गये; ( मोहनके ) सम्मुख रहते हैं, वहाँसे कभी हटते नहीं और सदा उनकी ही सेवा करते रहते हैं। वहाँ तो ये दास बने रहते हैं और मुझसे धृष्टता करते हैं; मैं इनके सब चरित देखती रहती हूँ। ( अब ) श्यामसुन्दरसे जाकर कहूँगी कि 'जिनको पाल-पोसकर मैंने ( इतना ) बड़ा किया, उन्हें तुम अपने वश कर पाये हो।' श्यामसुन्दरसे यह कहकर मैं इन्हें अपने बलसे पकड़वा लूँगी।

राग टोड़ी

[ ३३२ ]

अब मैंहूँ इहिं टेक परी।
राखौं अटकि, जान नहिं पावैं, क्यौं मोकौं निदरी ॥ १ ॥
मौन भई मैं रही आज लौं, अपनौइ मन समझाऊँ।
येऊ मिले नैनहीं ढरि कैं, देखति इन्है भगाऊँ ॥ २ ॥
सुनि री सखी ! मिले ये कब के, इनही कौ यह भेद।
सूरदास नहिं जानी अब लौं, वृथाँ करति तन खेद ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! ) अब मैंने भी यह हठ पकड़ लिया है कि ( अब ) इन ( नेत्रों )को रोककर रखूँगी, ये जाने नहीं पायेंगे, इन्होंने क्यों मेरी उपेक्षा की। आजतक ( तो ) मैं मौन बनी रही, अपने मनको ही समझा लेती थी; किंतु यह ( मन ) भी नेत्रोंके ही अनुकूल होकर ( मोहनसे ) मिल गया और ( मैं ) इन्हें भाग जाते देखती रही। अरी सखी ! सुन, ये कभीके मिले हैं, यह इनका ही षड्यन्त्र है। मैंने अबतक यह बात नहीं समझी थी, इसलिये व्यर्थ ही चित्तमें खेद करती थी।

राग धनाश्री

[ ३३३ ]

नैना भए पराए चेरे।
नंदलाल के रंग गए रँगि, अब नाहिन बस मेरे ॥ १ ॥

जद्यपि जतन किएँ जुगवति ही, स्यामल सोभा घेरे।
त्यौं मिलि गए दूध पानी ज्यौं, निबरत नाहिं निबेरे ॥ २ ॥
कुल अंकुस आरज पथ तजि कैं लाज सकुच दिए डेरे।
सूर स्याम कें रूप लुभाने, कैसेहुँ फिरत न फेरे ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—(सखी! मेरे) नेत्र जाकर दूसरे (नन्दनन्दन) के सेवक हो गये; ये नन्दलालके अनुरागमें ऐसे रँग गये हैं कि अब मेरे वशके नहीं रहे। यद्यपि प्रयत्नपूर्वक मैं इनकी रक्षा कर रही थी, (तथापि) श्यामसुन्दरकी शोभाने (इन्हें) घेर लिया। (फिर क्या था,) जैसे दूधमें पानी मिल जाय, वैसे ही (ये उनसे) मिल गये और अब पृथक् करनेसे (भी) पृथक् नहीं होते। कुलका नियन्त्रण और आर्य-पथ छोड़कर (इन्होंने) लज्जा एवं संकोचको त्याग दिया; ये श्यामसुन्दरके रूपपर ऐसे लुब्ध हो गये कि किसी प्रकार लौटानेसे लौटते नहीं।

राग रामकली

[ ३३४ ]

जाकी जैसी बानि परी री।
कोऊ कोटि करै, नहिं छूटै, जो जिहिं धरनि धरी री ॥ १ ॥
बारेही तैं इन्ह के ये ढंग, चंचल चपल अनेरे।
बरजतहीं बरजत उठि दौरे, भए स्याम के चेरे ॥ २ ॥
ये उपजे ओछे नछत्र के, लंपट भए बजाइ।
सूर कहा तिन्ह की संगति, जे रहे पराएँ जाइ ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी! जिसका जैसा स्वभाव पड़ गया है, (अथवा) जिसने जो हठ पकड़ ली है, कोई करोड़ों उपाय करे तो भी वह छूटती नहीं। बचपनसे ही इन (नेत्रों) के ये ढंग रहे हैं कि ये नटखट, अस्थिर और अन्यायी हैं, मेरे रोकते-रोकते भी उठकर दौड़ पड़े और जाकर श्यामके सेवक बन गये। ये हीन नक्षत्रमें उत्पन्न हुए हैं, अतः डंकेकी चोट लम्पट हो गये। भला, उनका साथ करनेसे क्या लाभ, जो दूसरेके यहाँ जाकर बस गये हैं।

राग आसावरी

[ ३३५ ]

नैनन कौं री यहै सुहाइ।
लुवधे जाइ रूप मोहन कें चेरे भए बजाइ ॥ १ ॥
फूले फिरत, गनत नहिं काहू, आनँद उर न समाइ।
यहै बात कहि सबन सुनावत, नैकौ नाहिं लजाइ ॥ २ ॥
निसि दिन सेवा करि प्रतिपाले, बड़े भए जब आइ।
तब हम कौं ये छाँड़ि भगाने, देखौ सूर सुभाइ ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी ! ( मेरे ) नेत्रोंको यही अच्छा लगता है; अतः ये जाकर मोहनके रूपपर लुब्ध हो गये और डंकेकी चोट उनके दास बन गये। अब ( गर्वसे ) फूले घूमते हैं, किसीको कुछ गिनते नहीं तथा इनके हृदयमें आनन्द समाता नहीं और यही बात सबसे सुनाकर कहते हुए तनिक भी लज्जित नहीं होते। रात-दिन इनकी सेवा करके मैंने इनका पालन-पोषण किया; ( किंतु ) जब आकर बड़े हुए, तब ये हमको छोड़कर भाग गये। इनका ( यह ) स्वभाव तो देखो।

राग कान्हरौ

[ ३३६ ]

देखत हरि के रूपै नैना हारें हार न मानत।
भए भटकि बल हीन छीन तन, तउ अपनी जै जानत ॥ १ ॥
ढुरत न पट की ओट, प्रगट ह्वै, बीच पलक नहिं आनत।
छुटि गए कुटिल कटाच्छ अलक मनु टूटि गए गुन तानत॥ २ ॥
भाल तिलक भ्रुव चाप आप लै सोइ संधान सँधानत।
मन क्रम बचन समेत सूर प्रभु नहिं अपबल पहिचानत ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—(सखी ! मेरे) नेत्र श्यामके रूपको देखते हुए हार जानेपर भी हार नहीं मानते। (इधर-उधर भटकने) से ( ये ) दुर्बल और शरीरसे कृश हो गये; तब भी अपनी ही जीत समझते

हैं। वस्त्र ( घूँघट ) की ओटमें छिपे नहीं रहते, प्रकट हो जाते हैं और पलकोंको भी बीचमें पड़ने नहीं देते। कुटिल ( तिरछे ) कटाक्ष ( बाणोंकी तरह ) छूट गये हैं। अलकें क्या हैं मानो तानते समय टूटी हुई रस्सी हो। ( मोहनके ललाटका ) तिलक ( रूपी ) बाण और भौहोंका धनुष स्वयं लेकर उनका संधान करते हैं; किंतु ( वे ) मन, कर्म तथा वाणीके सहित अपने बलसे स्वामीको नहीं पहचान पाते।

राग सूही

[ ३३७ ]

हारि जीति दोऊ सम इन कें।
लाभ हानि काकौं कहियतु है, लोभ सदा जिय मैं जिन कें॥ १॥
ऐसी परनि परी री जिन कैं, लाज कहा ह्वैहै तिन कें।
सुंदर स्याम रूप मैं भूले, कहा बस्य इन्ह नैनन कें॥ २॥
ऐसे लोगन कौं सब मानत, जिन्ह की घर घर हैं भनकैं।
लुबधे जाइ सूर के प्रभु कौं, सुनत नाहिं स्रवनन झनकैं॥ ३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी! मेरे ) इन ( नेत्रों ) के लिये हारना-जीतना दोनों बराबर हैं। जिनके चित्तमें सदा लोभ बसता है, वे जान ही नहीं पाते कि लाभ-हानि किसे कहा जाता है। जिन्होंने ऐसी हठ पकड़ ली है, उन्हें लज्जा क्या होगी। ये ( तो ) श्यामसुन्दरके रूपमें भूले हैं, अब इन नेत्रोंके वशकी क्या बात है! ऐसे लोगोंको ही सब मानते हैं, जिनकी घर-घरमें निन्दा होती है। ये हमारे स्वामीपर जाकर लुब्ध हो गये, अब कानोंसे किसीकी पुकार नहीं सुनते।

राग धनाश्री

[ ३३८ ]

अँखियन यहई टेव परी।
कहा करौं, बारिज मुख ऊपर लागति ज्यौं भ्रमरी॥ १॥
चितवति रहति चकोर चंद ज्यौं, बिसरति नाहिं घरी।

जद्यपि हटकि हटकि राखति हौं, तद्यपि होति खरी ॥ २ ॥
गड़ि जु रहीं वा रूप-जलधि मैं, प्रेम-पियूष भरी।
सूर तहाँ नग अंग परस रस लूटति हैं सिगरी ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है--( सखी ! मेरी ) आँखोंको यही स्वभाव पड़ गया है। क्या करूँ, ( ये मोहनके ) कमल-मुखपर ( जाकर ) इस प्रकार लग ( चिपक ) जाती हैं, जैसे दो भ्रमरियाँ हों। उस मुखको ऐसे देखती रहती हैं, जैसे चकोर चन्द्रमाको देखता है और एक घड़ीके लिये भी भूलता नहीं। यद्यपि मैं बार-बार रोककर रखती हूँ, फिर भी ये ( जानेको ) खड़ी ( उद्यत ) हो जाती हैं। ये प्रेमके अमृतसे परिपूर्ण हो उस ( मोहनके ) रूप-सागरमें गड़ ( स्थिर हो ) रही हैं। ये वहाँ ( श्यामसुन्दरके ) मणि ( सदृश ) अङ्गोंके स्पर्शका सम्पूर्ण आनन्द लूटती हैं।

[ ३३९ ]

अँखियाँ निरखि स्याम मुख भूलीं।
चकित भईं मृदु हँसनि चमक पै, इंदु कुमुद ज्यौं फूलीं ॥ १ ॥
कुल लज्जा, कुल धरम, नाम कुल, मानति नाहिंन एकौ।
ऐसें ह्वै ये भजीं स्याम कौं, बरजत सुनति न नैकौ ॥ २ ॥
ये लुबधीं हरि अंग माधुरी, तन की दसा बिसारी।
सूर स्याम मोहिनी लगाई, कछु पढ़ि कैं सिर डारी ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! मेरी ) आँखें श्यामसुन्दरका मुख देखकर ( अपने आपको ) भूल गयी हैं; ( उनकी ) कोमल हँसीकी ज्योत्स्नासे ( ये ) ऐसी चकित हो गयी हैं, जैसे चन्द्रमाको देखकर कुमुदिनी उत्फुल्ल होती है। कुलकी लज्जा, कुलका धर्म, कुलका नाम आदि एक भी मानतीं नहीं; ऐसी बनकर इन्होंने श्यामसुन्दरसे प्रेम किया है कि ( किसीका ) रोकना भी तनिक सुनतीं नहीं। ये अपने शरीरकी अवस्था भूलकर श्यामसुन्दरकी अङ्ग-माधुरीपर लुब्ध हो गयी हैं, ( इनके ) मस्तकपर श्यामसुन्दरने कुछ ( मन्त्र ) पढ़कर डाल दिया है और ( इस प्रकार ) इन्हें वशमें कर लिया है।

राग जैतश्री

[ ३४० ]

अँखियाँ हरि के हाथ बिकानीं।
मृदु मुसिकानि मोल इन्ह लीन्हीं, यह सुनि सुनि पछितानीं ॥ १ ॥
कैसें रहति रहीं मेरें बस, अब कछु औरै भाँति।
अब वे लाज मरतिं मोहि देखत, बैठीं मिलि हरि पाँति ॥ २ ॥
सपने की सी मिलन करति हैं, कब आवति कब जातिं।
सूर मिलीं ढरि नंद नँदन कौं, अनत नाहिं पतियातिं ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! ये मेरी ) आँखें श्यामसुन्दरके हाथ बिक गयी हैं; उन्होंने ( अपनी ) मन्द मुस्कराहटसे इनको मोल ले लिया, यह सुन-सुनकर मैं पश्चात्ताप करती हूँ। मेरी अधीनतामें ये कैसे ( सुखसे ) रहती थीं। ( किंतु ) अब कुछ दूसरे ही प्रकारसे रहती हैं। अब मुझे देखनेपर वे श्यामसुन्दरकी पंक्तिमें मिलकर बैठी लज्जासे मरी जाती हैं, ( मुझसे ) स्वप्नके समान भेंट करती हैं ( पता ही नहीं लगता कि ) कब आती हैं और कब चली जाती हैं। ये ( तो ) श्रीनन्दनन्दनके अनुकूल होकर ( उनसे ) मिली हैं और दूसरे ( किसी ) का विश्वास नहीं करतीं।

राग बिहागरौ

[ ३४१ ]

अँखियन ऐसी धरनि धरी।
नंद नँदन देखें सुख पावैं, मोसौं रहति डरी ॥ १ ॥
कबहूँ रहति निरखि मुख-सोभा, कबहुँ देह सुधि नाहीं।
कबहूँ कहति कौन हरि, को हम, यौं तनमय ह्वै जाहीं ॥ २ ॥
अँखियाँ ऐसें भजीं स्याम कौं, नाहिं रह्यौ कछु भेद।
सूर स्याम कें परम भावती, पलक न होत बिछेद ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! मेरी ) आँखोंने ऐसी हठ पकड़ ली है कि श्रीनन्दनन्दनको देखकर ही सुखी होती हैं

और मुझसे भयभीत रहती हैं। कभी ( उनके ) मुखकी शोभा निरखती रह जाती हैं, कभी इन्हें अपने शरीरकी ही सुधि नहीं रहती और कभी 'श्यामसुन्दर कौन हैं ? और हम कौन हैं ?' इस प्रकार कहती तन्मय हो जाती हैं। आँखोंने श्यामसुन्दरसे ऐसा प्रेम किया कि ( उनमें और मोहनमें ) कुछ अन्तर ही नहीं रह गया है। ( ये ) श्यामसुन्दरकी परम प्रियतमा हैं, उनके साथ इनका एक पलको भी अलगाव नहीं होता !

राग रामकली

[ ३४२ ]

अँखियन स्याम अपनी करीं ।
जैसेहीं उन्हि मुँह लगाईं, तैसेहीं ये ढरीं ॥ १ ॥
इन्ह किए हरि हाथ अपनें, दूरि हम तैं परीं ।
रहति बासर रैनि इकटक घाम छाहँन खरी ॥ २ ॥
लोक लज्जा निकसि निदरी, नाहिं काहूँ डरीं ।
ये महा अति चतुर नागरि, चतुर नागर हरीं ॥ ३ ॥
रहति डोलति संग लागीं, छाहँ ज्यौं नहिं टरीं ।
सूर जब हम हटकि हटकतिं, बहुत हम पै लरीं ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—( सखी ! मेरी ) आँखों-को श्यामसुन्दरने अपना बना लिया है; जैसे ही उन्होंने ( इनको ) मुँह लगाया, वैसे ही ये भी अनुकूल होती गयीं। ( अन्तमें ) श्यामने इन्हें अपने वशमें कर लिया, ( इसलिये ) ये हमसे दूर पड़ गयीं ( वियुक्त हो गयीं )। रात-दिन धूप तथा छायामें खड़ी ये एकटक ( मोहनको देखती ) रहती हैं। ये लोक-लाजकी उपेक्षा करके निकल गयीं (चली गयीं), किसीसे ( भी ) डरीं नहीं। ये ( आँखें ) अत्यन्त चतुर एवं महान् नागरी हैं, ( अतः ) चतुर नागर ( श्यामसुन्दर ) ने ( इनका ) हरण कर लिया। ( अब ) ये छायाके समान उनके साथ-ही-साथ घूमती रहती हैं और कहीं हटतीं नहीं और जब हम इन्हें दृढ़तापूर्वक रोकती हैं, तब ये हमसे बहुत झगड़ती हैं।

राग बिहागरौ

[ ३४३ ]

अँखियन तब तैं बैर धरयौ।
जब हम हटकीं हरि दरसन कौं, सो रिस नहिं बिसरयौ ॥ १ ॥
तबही तैं उन्हि हमैं भुलायौ, गईं उतैं कौं धाइ।
अब तौ तरकि तरकि ऐंठति हैं, लेनी लेतिं बनाइ ॥ २ ॥
भईं जाइ वे स्याम सुहागिन, बड़भागिन कहवावैं।
सूरदास वैसी प्रभुता तजि हम पै कब वे आवैं ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—(सखी! हमारी) आँखोंने तभीसे (हमारे साथ) शत्रुता ठान ली है, जबसे हमने श्यामसुन्दरके दर्शनोंसे इन्हें रोका; (अतः) वह क्रोध इन्हें भूला नहीं। तभीसे इन्होंने हमें भुला दिया और उधर (श्यामसुन्दरके समीप) को ही दौड़ गयीं। अब तो वे (बात-बातमें) क्रोध करके अकड़ती हैं और व्यर्थकी बात बना लेती हैं। वे जाकर श्यामसुन्दरकी सुहागिनी हो गयी हैं तथा बड़े भाग्यवाली (भाग्यवान्) कही जाती हैं। सूरदासजी! अब भला, वैसी प्रभुता (अधिकार) छोड़कर वे (आँखें) हमारे पास कब आने लगीं।

राग जैतश्री

[ ३४४ ]

धन्य धन्य अँखियाँ बड़भागिन।
जिन्ह बिन स्याम रहत नहिं नेकहुँ, कीन्हीं बिनैं सुहागिन ॥ १ ॥
जिन्ह कौं नाहिं अंग तैं टारत, निसि दिन दरसन पावैं।
तिन्ह की सरि कहि कैसैं कोऊ जे हरि के मन भावैं ॥ २ ॥
हमही तैं ये भईं उजागर, अब हम पै रिस मानैं।
सूर स्याम अति बिबस भए हैं, कैसैं रहत लुभाने ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—(सखी!) ये (मेरी) महान् भाग्यशालिनी आँखें धन्य हैं, धन्य हैं, जिनके बिना श्याम तनिक भी नहीं रहते और जिन्हें उन्होंने सुहागिनी बना दिया है। जिनको (मोहन)

अपने शरीरपरसे ( कभी ) हटाते नहीं, जो रात-दिन उनका दर्शन पाती हैं और जो श्यामसुन्दरके चित्तको प्रिय लगती हैं, बताओ तो, उनकी समानता कोई कैसे कर सकता है । ( किंतु ) हमसे ( हमारे कारण ) ही तो ये उजागर ( प्रसिद्ध ) हुईं और अब हमींपर रुष्ट रहती हैं। श्यामसुन्दर इनके अत्यन्त वशमें हो गये हैं, वे क्योंकर इनपर लुब्ध रहते हैं ( कुछ कहा नहीं जा सकता ) ।

राग बिलावल

[ ३४५ ]

ये अँखियाँ बड़भागिनी, जिन्हि रीझे स्याम ।
अँग तैं नैक न टारहीं बासर औ जाम ॥ १ ॥
ये कैसी हैं लोभिनी, छबि धरति चुराइ ।
और न ऐसी करि सकै, मरजादा जाइ ॥ २ ॥
ये पहिलैं मनहीं करी, अब तौ पछितात ।
उन्ह के गुन गुनि गुनि झुरै, याहू न पत्यात ॥ ३ ॥
इंद्रीं सब न्यारी परीं, सुख लूटति आँखि ।
सूरदास जे सँग रहैं, तेऊ मरैं झाँखि ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—( सखी ! मेरी ) ये आँखें भाग्यशालिनी हैं, जिनपर श्यामसुन्दर रीझे हैं; ( वे ) अपने शरीरपरसे ( इन्हें ) दिन या रातमें तनिक ( भी ) नहीं हटाते । किंतु ये कैसी लोभभरी हैं कि उनकी शोभाको चुराकर रखती हैं, दूसरा ( कोई ) ऐसी ( बात ) नहीं कर सकता; ( क्योंकि ) इससे ( उसकी ) प्रतिष्ठा जाती है । यह काम ( आँखोंका मोहनसे परिचय कराना ) तो पहिले मनने ही किया था; ( पर ) अब तो वह ( भी ) पश्चात्ताप करता है। उन (नेत्रों) के गुण ( करतब ) सोच-सोचकर वह सूखता रहता है । वे इस ( मन ) पर ( भी ) विश्वास नहीं करतीं। (और) सब इन्द्रियाँ तो अलग छूट गयीं, ( केवल ) आँखें ही ( दर्शनका) आनन्द लूटती हैं । ( इन आँखों ) के साथ जो ( इन्द्रियाँ ) रहती हैं, वे भी पश्चात्ताप करके कष्ट ही पाती हैं ।

[ ३४६ ]

अँखियन तैं री स्याम कौं प्यारी नहिं और।
जिन्ह कौं हरि अँग-अंग मैं, करि दीन्हौ ठौर॥ १॥
जो सुख पूरन इन्ह लह्यौ, का जानैं और।
अंबुज हरि मुख चारु कौ दोउ भौंरी जोर॥ २॥
इहिं अंतर स्रवनन परी मुरली की रोर।
सूर चकित भइ सुंदरीं, सिर परी ठगोर॥ ३॥

(एक गोपी कह रही है—) सखी! श्यामसुन्दरको (मेरी) आँखोंसे प्यारी और कोई (वस्तु) नहीं है, जिनके लिये (उन) हरिने (अपने) अङ्ग-प्रत्यङ्गमें निवास बना दिया है। जो पूर्ण सुख उन्होंने पाया है, उसे दूसरा कोई कैसे जान (पा) सकता है। ये दोनों (आँखें) तो श्यामसुन्दरके सुन्दर मुख-कमलके लिये भ्रमरियोंकी जोड़ी हैं। इस (बातचीत) के बीचमें ही (गोपियोंके) कानोंमें वंशीकी ध्वनि पड़ी; सूरदासजी कहते हैं कि इससे वे सुन्दरियाँ ऐसी विमुग्ध हो गयीं मानो (उनके) सिर जादू पड़ गया हो।

राग बिहागरौ

[ ३४७ ]

अँखियन की सुधि भूलि गईं।
स्याम अधर मृदु सुनत मुरलिका चकित नारि भईं॥ १॥
जो जैसैं सो तैसैं रहि गइ, सुख दुख कह्यौ न जाइ।
लिखी चित्र की सी सब ह्वै गईं, इकटक पल बिसराइ॥ २॥
काहू सुधि काहू सुधि नाहीं, सहज मुरलिका गान।
भवन रवन की सुधि न रही तनु, सुनत सब्द वह कान॥ ३॥
अँखियन तैं मुरली अति प्यारी, वे बैरिन यह सौति।
सूर परसपर कहति गोपिका, यह उपजी उदभौति॥ ४॥

सूरदासजी कहते हैं—व्रजनारियाँ श्यामसुन्दरके ओठों (के संयोग) से

बजी कोमल वंशी-ध्वनि सुनते ही ऐसी चकित हो गयीं कि ( उन्हें ) आँखोंकी बात भूल गयी। जो जैसे ( जिस दशामें ) थीं, वह वैसे ही रह गयीं; ( उन्हें ) सुख या दुःख जो भी हुआ, उसका वर्णन नहीं हो सकता। पलकें गिराना भूलकर ( वे ) सब-की-सब एकटक चित्रमें लिखी-सी रह गयीं; मुरलीका स्वाभाविक गान सुनकर किसीको ( अपनी कुछ ) सुधि रही, किसीको कुछ भी सुधि न रही; उस शब्दको कानसे सुननेपर उन्हें घरकी तथा पतिकी भी सुधि नहीं रही। वे परस्पर कहने लगीं—( मोहनको हमारी ) आँखोंसे भी ( अपनी ) वंशी अत्यधिक प्यारी है; वे ( आँखें ) तो शत्रु ही थीं, पर यह ( वंशी तो हमारी ) सौत है; यह तो अद्भुत ही विपत्ति उत्पन्न हो गयी।

राग सारंग

[ ३४८ ]

आवतहीं याके ये ढंग।
मनमोहन बस भए तुरतहीं, ह्वै गए अंग त्रिभंग ॥ १ ॥
मैं जानी यह टोना जानति, करिहै नाना रंग।
देखौ चरित भए हरि कैसे, या मुरली के संग ॥ २ ॥
बातन मैं कह धुनि उपजावति, सिरजति तान तरंग।
सूरदास इंदूर सदन मैं, पैठ्यौ बड़ौ भुजंग ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपियाँ कह रही हैं—( सखियो ! ) आते ही इस ( वंशी ) के ये ढंग हैं; मनमोहन तुरंत ही इसके वश हो गये और ( इससे उनके ) अङ्ग त्रिभङ्ग ( तीन स्थानोंसे टेढ़े ) हो गये। मैं समझ गयी कि यह ( वंशी ) जादू-टोना जानती है, अब यह अनेक रंग दिखायेगी; ( इसके ) चरित तो देखो कि इस वंशीके प्रति ( से ) श्यामसुन्दर कैसे ( निरपेक्ष ) हो गये हैं। बातोंमें ( यह ) कैसी ( मीठी ) ध्वनि उत्पन्न करती हुई अनेक तानोंकी तरङ्गें उत्पन्न करती है; किंतु यह तो चूहोंके बिलमें बड़ा भारी सर्प आ घुसा है।
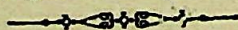
# श्रीमद्भागवतसम्बन्धी प्रकाशन

१–**श्रीमद्भागवतमहापुराण**–( दो खण्डोंमें ), सटीक, पृष्ठ २०३२, चित्र तिरंगे २५, सुनहरा १, सजिल्द, मूल्य ... १५)

२–**श्रीशुक-सुधा-सागर**–आकार बहुत बड़ा, टाइप ब[illegible] पृष्ठ १३६०, चित्र रंगीन २०, सजिल्द, मूल्य ... [illegible]

३–**श्रीभागवत-सुधा-सागर**–सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतका भाषानुवाद, पृष्ठ १०१६, चित्र तिरंगे २५, सुनहरा १, सजिल्द, मूल्य ... [illegible])

४–**श्रीप्रेम-सुधा-सागर**–श्रीमद्भागवतके केवल दशमस्क[illegible] भाषानुवाद, पृष्ठ ३१६, चित्र तिरंगे १४, सुनहरा १, सजिल्द, मूल्य ३।

५–**श्रीभागवतामृत**–( सटीक ) श्रीमद्भागवतके चुने हुए प्रसङ्ग, डिमाई आठपेजी, पृष्ठ ३०४, तिरंगे चित्र ८, सजिल्द, मूल्य ... १।।)

# सूरदासजीके पद-संग्रह

१–**श्रीकृष्ण-माधुरी ( सूर-रचित )**–सरल भावार्थसहित, पृष्ठ-संख्या २८८, सुन्दर तिरंगा चित्र, मूल्य १) सजिल्द ... १।=)

२–**सूर-विनय-पत्रिका**–सरल भावार्थसहित, सचित्र, पृष्ठ ३२४, मूल्य ।।।=), सजिल्द ... ... १)

३–**श्रीकृष्ण-बाल-माधुरी ( सूर-रचित )**–सरल भावार्थसहित, पृष्ठ-संख्या २९६, सुन्दर तिरंगा चित्र, मूल्य ।।।=), सजिल्द ... १)

४–**अनुरागपदावली**–( आपके हाथमें है )–मूल्य १) सजिल्द ... १।=)

५–**सूर-रामचरितावली**–सरल भावार्थसहित पृष्ठ-संख्या २५४, सुन्दर तिरंगा चित्र, मूल्य ।।≋) सजिल्द ... १-)

पता–गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस ( गोरखपुर )

# गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीके कुछ ग्रन्थ

**श्रीरामचरितमानस [ बड़ा ]**—सटीक, टीकाकार—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, मोटा टाइप, पृष्ठ-संख्या १२००, आठ बहुरंगे [illegible] कपड़ेकी जिल्द, मूल्य ... ... ७॥)

गयीं; [illegible]तमानस—बड़े अक्षरोंमें, केवल मूल पाठ, रंगीन चित्र रही, [illegible] ५१६, मूल्य ... ... ४)

घरकी [illegible]तमानस—मझला साइज, भाषा-टीकासहित, रंगीन प्यारी [illegible], पृष्ठ १००८, सजिल्द, मूल्य ... ... ३॥)

[illegible]रामचरितमानस—पाठभेदसहित मूल पाठ, पृष्ठ ८००, मूल्य ... ३)

**श्रीरामचरितमानस**—मूल, मझला साइज, सचित्र, पृष्ठ ६०८, मूल्य २)

**श्रीरामचरितमानस मूल-गुटका**—आकार सुपररायल बत्तीसपेजी, पृष्ठ-संख्या ६८८, रंगीन चित्र २, सजिल्द, मूल्य ॥)

**विनय-पत्रिका**—सरल हिंदी-टीकासहित, पृष्ठ ४७२, मूल्य १), सजिल्द १।=)

**गीतावली**—हिंदी-अनुवादसहित, पृष्ठ ४४४, सचित्र, मू० १), स० १।=)

**कवितावली**—हिंदी-अनुवादसहित, पृष्ठ २२४, सचित्र, मूल्य ... ॥-)

**दोहावली**—भाषानुवादसहित, रंगीन चित्र १, पृष्ठ १९६, मूल्य ... ॥)

**[illegible]-प्रश्न**—भाषानुवादसहित, पृष्ठ १०४, मूल्य ... ।=)

**श्रीकृष्ण-गीतावली**—भाषानुवादसहित, पृष्ठ ८०, मूल्य ... ।-)

**श्रीजानकीमङ्गल**—भाषानुवादसहित, पृष्ठ ५२, मूल्य ... ≡)

**श्रीपार्वतीमङ्गल**—भाषानुवादसहित, पृष्ठ ४०, मूल्य ... =)

**बरवै रामायण**—सरल भावार्थसहित, पृष्ठ २४, मूल्य ... =)

**वैराग्य संदीपनी**—हिंदी-अनुवादसहित, पृष्ठ २४, सचित्र, मूल्य =)

**हनुमानबाहुक**—भाषानुवादसहित, पृष्ठ ४०, सचित्र, मूल्य ... -)॥